देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
January 2025
Vol.-21, Issue-1

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 21 **ISSUE-1(1)** **(जनवरी 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

अनुक्रमाणिका – जनवरी 2025

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	9–9
2.	'भया कबीर उदास' में व्यक्त नारी समस्याएँ	डॉ. गायत्री एन	10–14
3.	प्रकृति और जलवायु के सांगोपांग में, राहुल सांकृत्यायन का यात्रा साहित्य	सुबाष कुमार चौबे, डॉ. विनोद कुमार शर्मा	15–19
4.	बोहल की कविताएँ : भारतीय सनातन संस्कृति और समाजिक सुधार की ओर एक साहित्यिक दृष्टि	डॉ. महावीर प्रसाद पूनियां	20–22
5.	प्रवासी हिंदी साहित्य : रचनात्मक दृष्टि का दस्तावेज	डॉ. रमेश चन्द सैनी	23–28
6.	'हमीदाबानो बेगम' का मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय योगदान	डॉ. शंहशाह	29–33
7.	बाल-मनोविज्ञान के कुशल चितेरे : जैनेंद्र कुमार (संदर्भ 'खेल' कहानी)	राजेन्द्र कुमार माली	34–38
8.	नामवर सिंह की वाचिकता पर आरोप-प्रत्यारोप : एक मूल्यांकन	लाभ चन्द्र धाकड़, प्रो. रमेश चन्द मीणा	39–44
9.	कला, शिल्प, संस्कृति एवं लोक पंरपराओं का विश्लेषण : वैशाली, बिहार के सन्दर्भ में	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	45–51
10.	चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु : जीवन दर्शन एवं आलोचनात्मक दृष्टि	प्रदीप कुमार यादव	52–55
11.	**Innovative learning and its relevance in Education**	**Dr. Suparna Sharma**	56-61
12.	वैदिक दृष्टिकोण में सत्ता और नेतृत्व : ऐतिहासिक आधार एवं आधुनिक प्रासंगिकता	प्रभात कुमार ओझा	62–66
13.	डॉ. नरेश सिहाग के बाल काव्य में प्रकृति के विविध रूप	डॉ. लता एस. पाटिल	67–71
14.	डॉ० नरेश सिहाग की लेखन यात्रा : सर्वभौमिकता एवं प्रासंगिकता	डॉ० रीना अग्रवाल	72–75
15.	जीवदया प्राणी कल्याण परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म की महत्ता : सिरोही जिले के विशेष संदर्भ में	सुरेश कुमार	76–80
16.	डॉ. नरेश कुमार सिहाग के बालकाव्य का अनुशीलन	डॉ. अलका	81–84
17.	उषा प्रियवंदा के उपन्यासों में कामकाजी महिला	प्रो० रश्मि कुमारी, रीना नागर	85–88

18.	भारतेंदु हरिश्चन्द्र का हिंदी साहित्य में योगदान	वेदप्रकाश	89–94
19.	हनुमानगढ का नगरीय स्तरीकरण और पर्यावरण का बदलता स्वरूप	कल्पना	95–99
20.	समकालीन महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में दांपत्य संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन	नयना जैन, डॉ० सुमन कौशिक	100–103
21.	कोरोना महामारी और उसका शिक्षा पर प्रभाव	डॉ. चमन सिंह	104–111
22.	हिंदी उपन्यासों का विकासक्रम और समाज	उमाकान्त	112–116
23.	शोध समालोचन : 'अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका'	डॉ. सरला जांगिड़	117–120
24.	The Role of the Femme Fatale in Shaping Guru Dutt's Noir Narratives	Chinmoyee Das, Dr. Pankaj Kumar	121-127
25.	राजस्थान में नदी पारिस्थितिकी प्रणालियों पर रेत खनन का प्रभाव	Gumana Ram Jakhar	128-134
26.	जैन धर्म की नैतिक शिक्षाएँ और उनका बीकानेर के समाज पर प्रभाव	Bhagwan Dass Suthar	135-141
27.	जयनंदन की कहानियों में जनजातीय चेतना की अभिव्यक्ति	हरेन्द्र पंडित	142–146
28.	Green Entrepreneurship : Fostering Sustainability in Business	Dr. Anita	147-154
29.	हरियाणावी लोक साहित्यकार लहणा सिंह अत्री के साहित्य में राजनीतिक बोध : एक अनुशीलन	बबली मोरवाल, डॉ. पूरन चंद टंडन	155–159
30.	सरोज दहिया के साहित्य की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता	डॉ. आशा सहारण, अनीता	160–163
31.	डॉ. नरेश सिहाग की 'बोध कथाएँ' और कर्म	डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी	164–169
32.	Historic Architecture of Jodhpur जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापत्य कला	Bharat Bhoosan Chouhan	170-183
33.	शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास की भूमिका (The Role of Self - Confidence in Academic Achievement and Research)	Dr. Kamlesh	184-192
34.	श्रेष्ठ बोध कथा से श्रेष्ठ बोध	डॉ. शिंदे मालती धौंडोपन्त	193–195
35.	काव्य में यथार्थ और संवेदना : डॉ नरेश सिहाग की काव्य दृष्टि	पूजा	196–202

36.	ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਦੀ ਰੂਪ ਰਚਨਾ	ਸਰਜੀਤ ਸਿੰਘ	203–208
37.	भारत का स्वर्ण युग : गुप्त साम्राज्य में समाज में कला, साहित्य और विज्ञान की उपलब्धियाँ	शशांक शर्मा	209–217
38.	मुगलकालीन स्थापत्य कला की विशेषताएँ	डॉ. नितेश रिणवा	218–220
39.	छायावाद में शैव दर्शन : एक अध्ययन	नेक प्रवीन, डॉ. शक्ति द्विवेदी	221–227
40.	हिंदी और मलयालम साहित्य में स्त्रीवादी लेखन : मैत्रेयी पुष्पा और सारा जोसफ के विशेष सन्दर्भ में	गोपिका. पी, डॉ. श्रीविद्या एन.टी.,	228–231
41.	मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में मध्यवर्गीय नारी का बदलता स्वरूप	शमीम. पी,	232–236
42.	**HISTORICAL ASPECT REVEALED IN *ŚRĪNĀRĀYAṆAVIJAYAM* MAHAKAVYAM**	**Dr. Kiran A.U.**	237-244
43.	भारतीय संस्कृति पर यूरोपीय प्रभाव	ओटाराम सैन	245–247
44.	भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी साहित्य विमर्श	डॉ0 अनीता बंसल	248–250
45.	झारखंड में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उनके उद्यमशीलता का स्तर के बीच संबंध	कविता कुमारी, डॉ० आलोक कुमार	251–262

संपादकीय.....

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 10-14

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'भया कबीर उदास' में व्यक्त नारी समस्याएँ

डॉ. गायत्री एन

असोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं अनुसन्धान केन्द्र

महात्मा गान्धी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम, केरल।

समकालीन प्रवासी महिला कथाकारों में बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध उषा प्रियंवदा जी का सफल उपन्यास है 'भया कबीर उदास'। अपनी श्रेष्ठ वाणी के जरिए उन्होंने इस उपन्यास को पाठकों के सामने अत्यंत सफल तरीके रखा है। 2007 में प्रकाशित 'भया कबीर उदास' उषा प्रियंवदा का पाँचवाँ उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने सहज ढंग से मानव–मन की चिरन्तन लालसाओं, कामनाओं, निराशाओं और उदासियों का अत्यन्त कुशल और समग्र अंकन किया है।

कथा नायिका लिली एक उच्च कुल की अविवाहित युवती है। अपने माता–पिता की इकलौती संतान लिली को जीवन में किसी भी चीज का अभाव नहीं होता। उसके पिता कुलपति थे। माँ अत्याधुनिक थी जो सौंदर्य तथा सिर्फ नाम–झाम में लिप्ता उच्चवर्गीय माहौल में ही रहती थी, उसे अपने बेटी के साथ बिताने के लिए समय ही नहीं था। मगर पति की मृत्यु के बाद विकट परिस्थितियों से उसका सामना होता है। उसके पति द्वारा अर्जित हर सुख–आराम उससे छीन लिया जाता है। जिससे उबरने केलिए वह अध्यात्म की शरण में चली जाती है।

लिली को इतिहास में रुचि है। वह पी.एच.डी करने के लिए न्यूयार्क चली जाती है तथा वापस लौटकर एक नामी इतिहासकार बनकर अपने पापा के विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनना चाहती है। लिली जब न्यूयार्क चली जाती है तो वह वहाँ पर कॉलेज में पढ़ाना और कक्षाएँ लेना तथा नए–नए कोष, नए विद्यार्थी तथा नई रिसर्च से ही अपने जीवन को परिपूर्ण समझने लगती है। सारा दिन क्लासों में रहना तथा कक्षाएँ खत्म हो जाने के बाद जब थकी थकाई घर लौटती है तो देर सारा संतोष होता है। एक दिन पूरी ईमानदारी और मेहनत से बिताती है। लिली को अपने अकेलेपन तथा तन्हाई का भी एहसास नहीं होता है। उनकी साथी पैमला का कहना है कि ... जीवन में किसी का साथ, साहचर्य बहुत अनिवार्य है। अगर मैं तुम्हारी जगह होती तो अवश्य एक साथी की खोज में रहती..'।[1] तथा वह कहती है कि '.... तीस तक आते–आते सिर्फ वही पुरुष उपलब्द होते हैं जिनका एक तलाक हो चुका होता है, पर पूर्वपत्नी, बच्चों और बने–बनाए परिवार में अपने को जमाना उसे ग्राहा नहीं.'?[2] यह सोचनी है कि '....क्या में एब्नार्मल हैं? कभी–कभी वह है।.....' सोचती है, क्या शरीर सुख के प्रति विरक्त हो चुकी हूँ। मेरे मन में कोई हिलोर, कोई तरंग क्यों नहीं? समवयस्क पुरुषों से बतरस नहीं, न कृपा– कटाक्ष, न उन्हें उलझनें में कोई रुचि..''।[3]

लिली का व्यवहार एकदम उदार व दयालु है। वह सबके लिए कुछ न कुछ मदद करती है। वसुंधरा,

अपर्णा, यूचिका जो कैसर ग्रस्त थी सबके लिए वह खाना बनाकर ले जाती है। इस प्रकार वह सबकी सेवा करती है। लिली स्वतंत्र स्त्री का जीवन जी रही थी। तब उसे पता चलता है कि उसे खुद को भी भयानक वक्ष कैसर हो गया है। तथा कैंसर उसकी बगल के कुछ भागों में तथा दोनों ब्रैस्टॉ में फैल गया है। डॉ. जैकरी उसे बताते हैं दोनों स्तन निकालना पड़ेगा।

यही से शुरु होता है जीवन–मृत्यु के बीच झूलती लिली के मन में उठती प्रश्नों का अंतहीन सिलसिला। अपने शरीर से सभी को प्रेम होता है। लिली को भी है। अंग–विच्छेद की कल्पना से ही वो कांप जाती है। इस बात को लेकर यह टूट जाती है।

मृत्यु का भय उसे क्षण में जीने को प्रेरित करता है। जो आज हैं बस वही जीवन है। इसे सरपूर जी लेना है। यही भय उसे प्रदेश में अपने शिष्य के पिता शेषेन्द्र के करीब ले आता है। रोषेन्द्र ही पहले पुरुष हैं जो लिली के जीवन में आते हैं। वह शेषेन्द्र से सुख भोगना चाहती है।

शेषेन्द्र ने जब लिली को साथ रहने की बात की तो वह कहती है, "नहीं सब कुछ ऐसे रहने दो शेषेन्द्र। इस दोनों देश के दो छोरों पर, दो सागरों के तट पर रहते रहेंगे रूमैं यहाँ, अटलांटिक के पास, तुम उधर प्रशान्त महासागर की ओर....."[4]

कैंसर का पता चलने के बाद नायिका लिली को हर छोटी–मोटी चीजों से मोह होता है। उसका मन घायल पक्षी की तरह फड़फड़ा रहा है। प्रदेश में अकेले ही कैंसर के इलाज के सारे प्रक्रियाओं से वह गुजरती है। साथ में अध्यापन के कार्य भी करती है। ताकि ईलाज का खर्च उठा सके कभी उसक स्टूडेंट तो कभी पड़ोसी उसक खान–पीने का ध्यान रखता है।

लिली कैसर के उपचार के बाद घूमने के लिए गोवा आती है। जहाँ वनमाली से मुलाकात होती है तो उसका स्त्रीत्व फिर से जागता है। वनमाली का साथ उसे अच्छा लगता है। वह वनमाली का बता देती है कि उसे कैसर था। फिर भी वनमाली उसे उसके क्षत–विक्षत शरीर के साथ पूर्ण रूप से स्वीकारने के लिए तैयार होता है। वह उससे शादी करना चाहता है। लेकिन भ्रमित लिली शादी नहीं करना चाहता। वनमाली कहता है कि 'मैं क्या करूँ, मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ, विश्वास दिलाई कि तुम मेरे लिए सुन्दर हो, सम्पूर्ण होय कि चौदह साल की उम्र से ही छिप–छिपकर तुम्हें देखा करता था, तुम मेरे लिए आकाश के तारों की तरह अलभ्य थी, पर फिर भी कभी लान में पानी लगाने, कभी झाड़ियों को सजाने–सवारने के बहाने मैं तुम्हारे घर के सामने हो मँडराया करता था।..'[5] वह लिली का दुःख का साथी बन जाना चाहता है। लिली बनारस में अकेले ही हरिश्चन्द्र घाट की ओर चल देती है। घोर मानसिक तनावों से संतप्त लिली को उस घाट पर चिताएँ जलती हुई दिखायी देती है।

वह अपने आप से प्रश्न करती है। "क्यों भाग रही हो? इतना भय क्यों? यदि मृत्यु का बोध स्वीकार कर लिया जाए, तब तो कोई समस्या ही नहीं रहेंगी।..."[6] निकट ही नवविवाहिता को देखती है जिससे कुछ स्त्रियाँ गंगा पूजन करवा रही है। साथ आई स्त्रियाँ गीत भी गा रही है। उसे संत कबीर की यह पंक्ति याद आती है।

'सब तन जलता देखकर, भया कबीर उदास।'[7]

संत कबीर की यह पंक्ति उसके निराश जीवन में आशा और उमंग भर देते हैं। वह नीचे से एक पत्थर उठाती है और उसे गंगा में फेंकती हुई कहती है।

'..इसके साथ बिसारती हूँ, रोग, क्षोभ और पराजय...'[8] फिर अंजुलि भर गंगा में जल प्रवाहित कर वनमाली के पास वापस लौट जाती है और वैवाहिक बंधन में बंध जाती है। अंतत लिली अपने भयजनिता और मृत्युबोध से निकलकार अपने अस्तित्व को पा लेती है।

इस उपन्यास में अनेक समस्याओं का उद्‌घाटन हुआ है। कैंसर एक ऐसी बीमारी है जिससे शारीरिक रूप तो आहुति पर चढ़ ही आता है। बल्कि अन्य लोगों की मानसिकता भी बदल जाती है। तथा इस भयानक बीमारी को सुनते ही लोग अपनी समभावना व्यक्त करते हैं।

(1) 'फोन पर आवाज डॉ. जैकरी की है :

'मुझे दुःख है यह कहते हुए कि बयोप्सी में कैंसर के सेल निकले हैं'।[8]

जब सामान्य जीवन जी रही स्वी को अचानक ही इस जानलेवा बीमारी का पता चलता है तो उसकी मानसिकता ही बदल जाती है।

(2) 'मैं उसी मरने के लिए उच्चत नहीं हूँ।' मेरे मुँह से बिना सोचे समझे शब्द फूट पड़े हैं।

"मौत के लिए कभी कोई तैयार नहीं रहता''

डॉ जैकरी सहसा मुस्कुराकर कहते हैं, 'हम तुम्हें मरने भी नहीं....'

'मैं डरती नहीं, मरने से, मगर रगड़–रगड़कर घिसटने से डरती हूँ।'[9]

इस बीमारी ने लिली को इस तरह से आघात कर दिया कि उसे अब कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करे और क्या न करे। निरंतर मानसिक संघर्ष झेल रही लिली अपने को विलास देती हुई संघर्ष के लिए तैयार करती हुई कहती है।

'तुम्हें वह लड़ाई लड़नी ही पड़ेगी। जैसे जिन्दगी के हर अहम निश्चय से तुम भागती रही हो, वह अब नहीं चलेगा, तुम्हें कितने सारे निर्णय लेने पड़ेंगे, कोई दूसरा नहीं है जो मदद करे। यदि अपनी माँ आम माँओं की तरह होती तो उनसे कुछ अपेक्षा की जा सकती थी, पर यह तो संन्यास लेकर कभी कनखल, कभी ऋषिकेश रहने लगी हैं।"[10]

आज के बदलते हुए युग में व्यक्ति में अकेलेपन का बोध गहराने लगा है। यह विशेषकर नगरों तथा महानगरों में ज्यादातर दिखाई देता है। 'भया कधीर उदास' में उषा प्रियंवदा ने एकाकीपन की अनुभूति को भी व्यक्त किया है। शेषेन्द्र से वियुक्ति होकर उसकी यादों के सहारे जीति फिर कैंसर ने उसे मानसिक और शारीरिक दंड दिए फिर भी शेषेन्द्र की यादें आती थी।

ऑपरेशन के बाद उसे किसी के साथ की जरूरत महसूस होने लगी है। अपने दिल की बात बनाने केलिए तरस रही है। यह सोचती है कि :–

'क्या में हतनी अकेली और जरूरतमन्द हो गई हूँ कि मानव सम्पर्क के लिए ऐसे तरसती रहती हैं कि कभी भी किसी का भी....."[11]

वक्ष कैसंर की समस्या महिलाओं में तेजी से बढ़ रही है और इसके उपचार के दौरान महिलाओं के शरीर में अवंक्षित बदलाव होते हैं। अनेक मामलों में उनको अपनी सुन्दरता के प्रतीक जैसे कि उरोज, बाल इत्यादि को खोना पड़ता है। शरीर में आये बदलाव उनकी आत्म छवि को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं, क्योंकि

उनका शरीर सौंदर्य के समाजिक मानदंडों के अनुरूप नहीं रह जाता है, जो उनके अन्दर अपूर्णता का भाव पैदा करता है।

यमन सोचती है 'स्वर्ण कटोरों की तरह मेरे उरोज, नागिन कि तरह काले, लम्बे बाल–सब कुछ अब इस कैसर की आहूति।'[12]

उसका सौंदर्य तथा जीवन का अर्थ सब स्वाहा हो चुका है। अब कुछ बचा है तो अधूरा शरीर।

आजादी के बाद आधुनिकपन और भागदौड़ के जीवन में स्त्री को ऐसा महसूस होने लगा है कि कोई तो ऐसा हो जो उसका ख्याल रखे, उसके साथ समय व्यतीत करे, उसके मन की इच्छाओं को समझे। एक इस कारण भी स्वी, पुरष का सामीप्य पसंद करती है। 'भया कचीर उदास' में उषा प्रियंम्वदा ने इसे भी दर्शाया है। लिली के जीवन में आज तक कोई पुरुष नहीं आया। ऐसा नहीं कि वह सुन्दर नहीं है बल्कि अपनी काम की व्यस्तता के कारण यह किसी का भी अपनी जिंदगी में प्रवेश न कर पाई।

'..... पैमला मृदू स्वर में कह रही हैं, 'जीवन में किसी का साथ, साहचर्य बहुत अनिवार्य है। अगर में तुम्हारी जगह होती तो अवश्य एक साथी की खोज में रहती।'[13]

कैसर के दौरान ही लिली के जीवन में अपने छात्र रघु के पिता शेषेन्द्र का प्रवेश होता है। यह रोषेन्द्र से शारीरिक सुख भोगने चाहते हैं। दूसरी तरफ कैंसर को अलविदा कहती हुई वे गोवा के वनमाली के रिजोर्ट में एक कॉटेज बुक करा लेती है। वह वनमाली के प्रति आकर्षित है। उसे वनमाली का साथ अच्छे लगाना लगती है।

'भया कबीर उदास में उषा प्रियम्वदा ने लिली (यमन) का मनोवैज्ञानिकता भी हमें दर्शाते हैं। जब लिली को पता चलता है कि उसे भयावह बक्ष कैसर है तो उसे हर चीजों से मोह होने लगता है। लिली मनोवैज्ञानिक अन्ना टोमस से कहती है–

'मैं मरने से नहीं डरती , मैने कहा.....

'क्या तुम्हें कोई डर है? किसी बात का? मनोवैज्ञनिक से यदि सच बात नहीं कहें तो बेकार समय और पैसा व्यय करने से क्या लाभ?

'अपनी ब्रेस्टों को खो देने का बालों के झड़ जाने का आल्टीमेटली मरने का नहीं। डर है, घिसट घिसटकर, बेहद पीड़ा से मरने का?'[14]

इस कथन में लिली के मन में पैदा हुए मनोवैज्ञानिक संघर्ष व्यक्त हुआ है।

उषा प्रियमयदा के उपन्यासों में अधिकतर पात्र पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित दिखाई देते हैं। 'भया कबीर उदास' में लेखिका ने लिली (यमन) के माध्यम से बखूबी दर्शाया है। लिली इतिहास में पी.एच.डी कराने के लिए न्यूयॉर्क चली गई थी। वापस लौटकर अपने पापा के विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनना चाहती थी। यहाँ पाश्चात्य सभ्यता का चित्रण मिलता है।

उषा प्रियंवदा ने 'भया कबीर उदास' में नारी के शारीरिक रोग ग्रस्त जीवन का वर्णन करते हुए कहा है कि नारी की सुंदरता उसके शरीर से नहीं बल्कि उसके मन के अंदर होती है। यदि शरीर के किसी एक अंग का रोग ग्रस्त हो जाना या काटकर निकाल देने से जीवन समाप्त नहीं हो जाता बल्कि हमें जीने की एक नई

राह दिखाती है। एक विस्तृत कथानक को काम शब्दों में करने वाली या प्रियंवदा की रचना कौशल इस उपन्याम का महत्वपूर्ण बात है।

सन्दर्भ :–

1. भया कबीर उदास – उषा प्रियंवदा, पृ. सं. 47
2. वही, पृ. 48
3. वही, पृ. 48
4. वही, पृ. 59
5. वही, पृ. 181
6. वही, पृ. 179
7. वही, पृ. 181
8. वही, पृ. 180
9. वही, पृ. 30
10. वही, पृ. 33
11. वही, पृ. 101
12. वही, पृ. 144
13. वही, पृ. 47
14. वही, पृ. 40

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 15-19

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रकृति और जलवायु के सांगोपांग में, राहुल सांकृत्यायन का यात्रा साहित्य

सुबाष कुमार चौबे, शोध छात्र
डॉ. विनोद कुमार शर्मा, शोध निर्देशक
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, डॉ0 सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

शोध सारांश :-

राहुल सांकृत्यायन अपनी यात्रा में प्रकृति और जलवायु से कही अनुकूल तथा संघर्ष करते हुए अपनी यात्रा को जारी रखे कहीं विषम प्रकृति दशाएं तथा विषम जलवायु के साथ अपनी यात्रा में निरंतर संघर्ष और समानता के साथ आगे बढ़ते रहें और प्रकृति के सौन्दर्य की छटा को अपनी लेखनी से लिखते रहे तथा प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य में खोते रमते आगे बढ़ते रहे। जलवायु की विषमताएं जैसे, आंधी, वर्षा, तूफान, ओला, तेज गर्मी, प्रचंड ठंडी आदि को सहन करते हुए अपनी यात्रा में आगे बढ़ते रहें।

प्रस्तावना :-

प्रकृति ने नीलगिरि को अपार प्राकृतिक सौन्दर्य और बहुमूल्य संसाधनों से नवाजा है।

नीलगिरि में विविध रूपों में विद्यमान कुदरत के इन अनमोल खजानों का इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके ऊँचे पहाड़ी क्षेत्र तथा प्रसिद्ध पर्यटक स्थल बर्फ की सफेद चादर ओढ़े मानों आगंतुकों को विशेषकर सैलानियों को नीलगिरि आगमन का निमंत्रण दे रहे हो। यहां पर दिसम्बर और जनवरी महीनों की ठिकुरन भरी ठंड के बाद फरवरी महीने में मौसम सुहाना सा होने लगता है और पहाड़ों में खिली–खिली धूप का आनंद लिया जा सकता है। वसंत पंचमी से वसंत ऋतु का आगाज इस पर्व को मौसम परिवर्तन का प्रतीक भी माना जाता है। नीलगिरि में वंसत ऋतु का एक अलग ही रूप देखने को मिलता है। पहाड़ियों की तलहटियों में स्थित मैदानी इलाकों में हरी–हरी गेहूँ की फसल और सरसों के फूल से लहलहाते खेत जहां खुशहाली और समृद्धि का पैगाम देते हैं, वहीं सुंदर वादियों में कल–कल बहते नदी–नाले व झरने, निर्मल जलप्रपातों के स्वच्छ फुहारे और हरे–भरे वनों में खिले लाल बुरांस के फूलों का खिलना किसी कलाकार की नायाब कलाकृति–सा लगता है।

इसी अनुपम छटा से सराबोर होकर शायद साहित्यकार का मन भी कल्पना की ऊँची उड़ानों का सवार होकर साहित्य सृजन के लिए विवश हो जाता है। प्रकृति के चितेरे ऐसे अनेकों प्रसिद्ध कवियों ने अपने साहित्य में वसंत ऋतु के सौन्दर्य की इसी पराकाष्ठा का खूब गुणगान और बखान किया है। भारतीय साहित्य विशेषकर

हिंदी साहित्य जगत के ऐसे कवियों एवं साहित्यकारों ने प्रकृति के रूप को पाठकों तक पहुँचाते रहे हैं।

इसी प्राकृतिक सौन्दर्य का आकर्षण राहुल सांकृत्यायन को अपनी ओर बार–बार आकर्षित करता रहा और वह बार–बार नीलगिरि की यात्रा करने को विवश हुए। यहाँ के सघन हरे–भरे जंगल, कल–कल बहती नदियाँ, सुरम्य झरने, शांत व सुंदर झीलें, गगनचुम्बी पहाड़ अनायास ही मन मोह लेते हैं। अपनी नीलगिरि परक यात्रावृत्तांतों को इन्होंने प्रकृति के स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया है। इन्होंने नीलगिरि क्षेत्र की परम्पराओं, रीति–रिवाज, धर्म, संस्कृति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का यथार्थ चित्रण किया है। राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृंतातों की विशेषता यह है कि उनमें समग्र नीलगिरि के प्रान्तों के इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, धर्म, संस्कृति तथा वहाँ के सामाजिक–आर्थिक परिवेश, लोकजीवन और प्रकृति के विभिन्न अंगो जैसे वनों, पहाड़ों, वन्य प्राणियों का ऐसा प्रामाणिक और सघन वर्णन है जो, निःसन्देह, अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रकृति परिचय :–

प्रकृति सामान्यतः दो शब्दों के मेल से बनी है 'प्र' और 'कृति'। ''प्र का अर्थ हैं 'प्रकृष्ट'और 'कृति' से सृष्टि के अर्थ का बोध होता है। प्रकृति का मूल अर्थ यह ब्रह्माण्ड है।'' स्पष्ट है ब्रह्माण्ड को प्रकृति के अर्थ में लिया जा सकता है। क्योंकि प्रकृति के द्वारा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना होती है। अतः ब्रह्माण्ड और प्रकृति एक दूसरे के पूरक शब्द हैं। विकिपीडिया में प्रकृति को व्यापक अर्थ में लिया गया है ''प्रकृति व्यापक अर्थ में, प्राकृतिक, भौतिक या पदार्थिक जगत या ब्रह्माण्ड हैं। 'प्रकृति' की सन्दर्भ भौतिक जगत के दृग्विषय से हो सकता है और सामान्यतः जीवन से भी हो सकता हैं।'' अतः कहा जा सकता है कि समस्त विश्व ही प्रकृति है। साधारण शब्दों में कहे तो प्रकृति, ब्रह्मांड में स्थित समस्त पेड़–पौधे, जीव–जंतु आदि और उसमें होने वाली सब क्रिया है जो मानव द्वारा निर्मित या मानव द्वारा प्रेरित नहीं है। प्रकृति स्वयं एक ऐसी शक्ति है जो अपना अस्तित्व इस भौतिक जगत में बनाए रखती हैं। अपने स्वयं ही उसने नियम बना रखे हैं जिसके कारण वे सदैव क्रियाशील रहती है। मानव भी इसी प्रकृति जगत का एक हिस्सा है। मानवी क्रिया को प्रायः प्राकृतिक विषय से अलग रूप में देखा जाता है।

प्रकृति तथा मानव जीवन :–

मनुष्य सदियों से प्रकृति की गोद में फलता–फूलता रहा है। इसी से ऋषि–मुनियों ने आध्यात्मिक चेतना ग्रहण की और इसी ही के सौन्दर्य से मुग्ध होकर न जाने कितने कवियों की आत्मा से कविताएं फूट पड़ी। वस्तुतः मानव और प्रकृति के बीच गहरा सम्बन्ध है। दोनों एक–दूसरे के पूरक है। मानव अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति की ओर देखता है और उसकी सौन्दर्यमयी बलवती जिज्ञासा प्रकृति सौन्दर्य से विमुग्ध होकर प्रकृति में भी सचेत सत्ता का अनुभव करने लगती है। मनुष्य के लिए प्रकृति से अच्छा कोई गुरु नहीं है। आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया वह सब प्रकृति से सीखकर ही किया है।

मनुष्य के लिए धरती उसके घर का आंगन, आसमान छत, सूर्य–चांद–तारे, सागर–नदी और पेड़–पौधे आहार के साधन मात्र नहीं है बल्कि आम आदमी ने प्रकृति के तमाम गुणों को समझकर अपने जीवन में सकारात्मक बदलाव किए। न्यूटन जैसे महान वैज्ञानिकों को गुरूत्वाकर्षण समेत कई पाठ प्रकृति ने सिखाए हैं। दरअसल प्रकृति ने मानव को कई महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ाए जैसे–पतझड़ का मतलब पेड़ का अंत नहीं है। इस पाठ को जिस व्यक्ति ने आत्मसात् कर लिया वह अपने जीवन में कभी निराश नहीं हो सकता। प्रकृति की सबसे बड़ी

खासियत यह है कि वह अपनी चीजों का उपभोग स्वयं नहीं करती। जैसे–नदी अपना पानी स्वयं नहीं पीती, पेड़ अपने फल खुद नहीं खाते, फूल अपनी खुशबू पूरे वातावरण में फैला देते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रकृति किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नहीं करती।

जलवायु :–

भौतिक पर्यावरण का अभिन्न अंग जलवायु, सांस्कृतिक पर्यावरण पर भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रभावकारी होकर एक अमिट छाप छोड़ता है। मानव का भोजन, वस्त्र और आवास तो जलवायु द्वारा प्रभवित होते ही हैं पर उसकी परंपराएं, रीति–रिवाज, आशाएं, अभिलाषाएं आदि भी जलवायु द्वारा प्रभावित होती है। ऊँचे दुर्गम पर्वतीय भागों में तो मानव जलवायु दशाओं के अनुसार अपने आप को ढालता है। भले ही आधुनिक युग में कई भागों में मनुष्य ने जलवायु के कुछ प्रहारों का सफलतापूर्वक सामना करने के उपाय जुटा लिए हैं। परन्तु नीलगिरि जैसे अति पर्वतीय, अधिक ऊँचे और अति ठंडे प्रदेश में यह असंभव है। स्थिति के अनुसार नीलगिरि की जलवायु शीतोष्ण प्रकार की है। यहां के अधिकतर भाग पर जलवायु शीत प्रधान एवं शुष्क है। लेखक ने हिमाचल में चलने वाली मुख्य ऋतुओं का वर्णन किया है। हालांकि कि ये ऋतुएं भिन्न–भिन्न प्रान्तों की ऊँचाई के अुनसार अपना प्रभाव छोड़ती है। 'हिमाचल भाग–1' में अंकित है ''हिमाचल प्रदेश में तीन ऋतुएं मानी जाती है, यद्यपि वह सभी ऊँचाईयों पर एक–सा प्रभाव नहीं रखती : 1. ग्रीष्म : 13 फरवरी–12 जून, 2. वर्षा : 13 जून–12 अक्तूबर, 3. शीतकाल : 13 अक्तूबर–12 फरवरी। नौ–दस हजार फुट से ऊपर के स्थानों में जून और जुलाई के महीने ग्रीष्म के हैं।'' स्पष्ट है कि हिमाचल में मुख्यतः तीन ऋतुएं ही चलती है परन्तु किन्हीं स्थानों में गर्मी लम्बी हो जाती है। किन्नौर का उत्तरी क्षेत्र जो अपेक्षतया शुष्क है वहां जुलाई–अगस्त के मास सर्वाधिक गरम होते है। वहीं लेखक सिरमौर जिले की सबसे ऊँची पर्वत चोटी चूड़धार की जलवायु से अवगत करवाते हैं ''चूड़धार की सबसे ऊँची चोटी लिंग का बट्टा (11982) फुट पर अप्रैल तक बर्फ बनी रहती है। पहाड़ बान और केलू के वृक्षों से ढका है, लेकिन चोटी पर केवल घास ही उगती है।'' कहा जा सकता है कि चूड़धार काफी ऊँचाई पर होने के कारण यह भी शीत प्रदेश है जिस कारण इसके पर्वतों में नीचे बान और केलू की वनस्पति उगी है और चोटी के ऊपर सिर्फ घास ही उगी होती है। बाकी वृक्ष यहां न के बराबर होते है।

प्रकृति और जलवायु :–

प्रकृति सौन्दर्य के नाम से प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में पहले हिमाच्छादित पर्वत, नदियां, झरने, हरे जंगल एवं घास के मैदान आदि जैसे विचार कौंधते हैं। मनुष्य एक वनस्पति विहीन या सूबे बंजर क्षेत्र के प्राकृतिक सौन्दर्य की कल्पना भी नहीं कर सकता। परन्तु राहुल सांकृत्यायन ने नीलगिरि की प्राकृतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के साथ प्रकृति के निर्जन स्थानों का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन्होंने सम्पूर्ण नीलगिरि को अपनी खुली आँखों से देखा और इन प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभवों का अपने यात्रावृत्त में विवरण दिया। उन्होंने न केवल यहां के नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्यों को बल्कि चारों ओर से ऊँचे पर्वतों से घिरा जो वनस्पति विहीन है परन्तु हिम भण्डारों से परिपूर्ण प्रकृति का भी वर्णन किया है। स्पष्ट है कि नेपाल का चीसापानी नामक स्थान काफी ऊँचाई पर है जिस कारण वहां की जलवायु हरियाली एवं वनस्पति के उगने के अनुकूल नहीं है। चक्सुम गाँव का भी ऐसा ही दृश्यांकन मिलता है ''दोपहर के बाद देवदारू के वृक्ष छोटे होने लगे। वनस्पति भी कम दिखलाई पड़ने लगी। अन्त में नदी की धार को रोके विशाल पर्वत भुजा दिखाई पड़ी। इसके पार होते ही

हरियाली का साम्राज्य विलुप्त सा हो गया। अब बहुत ही छोटे–छोटे देवदारू रह गये थे। ..... मालूम हुआ, यह वनस्पतियों का अन्तिम दर्शन है।'' कहा जा सकता है कि नेपाल के वनस्पति विहीन स्थानों का प्राकृतिक चित्रण किया है। तिब्बत पर नेपाल के कई क्षेत्रों में प्रकृति शुष्क एवं हरियाली शून्य है, जिसका वर्णन कर लेखक ने पाठकों को नीलगिरि की प्रकृति के विविध रूपों से अवगत करवाने का प्रयास किया है। इस प्रकार ग्याची में काफी समय बाद सामने पर्वत पर भारत के हिमाच्दाछित सफेद पर्वतों को देख प्रसन्नता भाव का वर्णन किया गया है। स्पष्ट है कि लेखक ने शुष्क एवं वनस्पति विहीन नंगे पर्वतों में काफी समय बिताया। ऐसे सूखे बंजर दृश्य को देखते–देखते जब सामने उन्होंने भारत के दर्शन किए तो उनको खुशी का ठिकाना न रहा।

लद्दाख अपने प्रकृति सौन्दर्य के लिए काफी प्रसिद्ध है ही भले ही वहां पेड़–पौधे न हो परन्तु बर्फीले पर्वत एवं वहां की झीलें इसके सौन्दर्य को बढ़ाती है वहीं लद्दाख का मुजफ्फरगढ़ की जलवायु शुष्क एवं सिन्धु नदी के कारण मिट्टी रेतीली होने पर यहां की वनस्पति कंटीली झाड़ियां मात्र होती है। राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है ''गर्मी–सर्दी दोनों ही कड़ाके की पड़ती है। सिन्धु के किनारे की तरफ मीलों तक बालू के ऊँचे–नीचे टीले तथा कंटीली झाड़ियां मिलती है, जिनमें जगह–जगह ऊँट चरते हुए दिखाई पड़ते है।'' स्पष्ट है कि लद्दाख के मरूस्थलीय भूमि का वर्णन किया गया है। हिमाचल के किन्नौर जिले के भी कुछ क्षेत्र काफी ऊँचाई पर स्थित है जहां पर पेड़–पौधे नहीं के बराबर है।

अतः नीलगिरि विश्व का एक अनूठा भू–भाग है। यह हिमाच्छादित ऊँचे पर्वतों, गहरी घाटियों, सीमित कृषि क्षेत्रों, तीव्रगामिनी नदियों तथा कठोर जलवायु का क्षेत्र है। नीलगिरि का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो आकर्षक न हो, सैलानियों के लिए यह स्वर्ग है। यहां के चारों ओर से ऊँचे पर्वतों से घिरा वनस्पतिविहीन व शुष्क क्षेत्र है, परन्तु हिम भण्डारों से परिपूर्ण यह हमेशा आकर्षण का केन्द्र बना रहेगा।

महत्व :–

प्रारम्भिक समय में मानवीय इतिहास के भ्रमणों या यात्राओं को पर्यटन के रूप में देखा जाता है। अलग–अलग भाषाओं में इस शब्द का अध्ययन करने से इसके भिन्न–भिन्न अर्थ निकलते हैं। जैसे यहूदिया भाषा में इसे ''तोरह'' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है अध्ययन करना या खोज करना ''टफअर'' उसमें निकला प्रतीत होता है, जो लैटिन में मूल शब्द ''टोरनोस'' के समीप है। 'टोरनोस' एक प्रकार के गोल पहिये जैसा उपकरण था जो भ्रमण परिधि या पैकेज टुअर के विचार की ओर अंकित करता है। वही संस्कृत में ''पर्यटन'' की अर्थ आराम के लिए और ज्ञान पाने के लिए यात्रा करने के उद्देश्य से अपने निवास स्थान को छोड़ने से लिया गया है। परन्तु आधुनिक रूप में पर्यटन इन भ्रमणों एवं यात्राओं के समान नहीं है। पर्यटन एक ऐसी यात्रा है जो मनोरंजन या फुरसत के क्षणों का आनंद उठाने के उद्देश्य से की जाती है। आमतौर पर पर्यटन, देशाटन और तीर्थाटन इन तीनों शब्दों को समतुल्य समझा जाता है परन्तु देशाटन का अर्थ आर्थिक लाभों के लिए किया गया भ्रमण और तीर्थाटन का अर्थ धार्मिक उद्देश्य के लिए यात्रा करने से है। इस प्रकार ये तीनों शब्द पर्यटन के अर्थ एवं अवधारणा को अच्छे ढंग से प्रेषित करते है। आधुनिक युग में पर्यटन के अर्थ एवं अवधारणा को अच्छे ढंग से प्रेषित करते हैं। आधुनिक युग में पर्यटन न केवल अवकाश और मजेदार गतिविधि है इसके बजाए, यह उद्योग भी है जो पर्यटकों को रहने और मनोरंजन के लिए आकर्षित करता है और देश के लिए आय को उत्पन्न करने में मदद करता है। पर्यटन ने हमें नई संस्कृति का पता लगाने, नए लोगों से मिलना और विभिन्न स्थानों पर

मजेदार और साहसिक कार्य करने का अवसर प्रदान किया है। लेखक ने अपनी तिब्बत की यात्रा कन्नौज (उत्तर प्रदेश) से आरंभ की थी। अतः कन्नौज भारत की उन प्राचीन जगहों में से है जो कि अपने समृद्ध पुरातात्विक और सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है।

यहां पर कई पर्यटन स्थल है जो अपनी प्राचीन संस्कृति को संजोए है। स्पष्ट है कि यहां कन्नौज के विभिन्न पर्यटन स्थलों का वर्णन किया गया है जो कि रामायण, महाभारत के काम से लेकर, कांस्य युग तक की प्राचीन संस्कृति से अवगत करवाने का प्रयास करते है। एशिया का सबसे प्रसिद्ध पर्यटन स्थल जम्मू–कश्मीर अपनी प्राकृतिक विशिष्टताओं के कारण देशी–विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है।

निष्कर्ष :–

नीलगिरि का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम और विविध है। यहां प्राकृतिक वैभव बिखरा पड़ा है। राहुल सांकृत्यायन ने अपने हिमालयपरक यात्रा–साहित्य में नीलगिरि की प्रकि्त का प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार होता है। नीलगिरि के हरे भरे मैदान, हिमाच्छादित पर्वत की हसीन वादियों में प्रकृति की अद्‌भुत चित्रकारी अपनी अनुपम छटा बिखेरती हैं, यही वजह थी कि नीलगिरि लेखक को बार–बार आकर्षित करता था। धरती पर अगर स्वर्ग है तो वह नीलगिरि है, यहां की खूबसूरत वादियां, ऊँचे–ऊँचे बर्फ से ढके पर्वत, चिनार व देवदारों से ढके जंगल, घाटियों की बीच बहती झीलें, फूलों से घिरी पगडंडियां, ऐसा प्रतीत करवाती है जैसे यह काल्पनिक जगत हो। नीलगिरि कई अमूल्य निधि का खजाना है जिनका उल्लेख लेखक ने अपने यात्रावृत्तों में किया है। उन्होंने प्रकृति चित्रण में मुक्त प्रकृति एवं मानव द्वारा अलंकृत प्रकृति दोनों स्वरूपों का वर्णन किया है। वनस्पति विज्ञान में कई ऐसे पेड़–पौधों से अवगत करवाने का प्रयास किया जो कि मानव जीवन में आयुर्वेद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपयोगिता रखते है। उन्होंने नीलगिरि के विभिन्न दर्रों का परिचय करवाया। नीलगिरि का अपना प्राकृतिक वैभव है जिसमें देवदार एवं चिनार के जंगल, सुन्दर हरी मैदानी घास से घिरी उपत्यकाएं एवं खनिज सम्पदाओं का समावेश है। नीलगिरि की जलवायु जिसमें विभिन्न रंग बदलती ऋतुएं आदि सब के साथ लेखक ने परिचय करवाने का प्रयास किया है। उन्होंने मनुष्य द्वारा विकास के नाम पर पर्यावरण के साथ की जा रही छेड़छाड़ जैसे :– खनिजों का अवैध खनन और वृक्षों के कटान से होने वाली समस्याएं का वर्णन कर आगामी चुनौतियों से निबटने की ओर इशारा किया है। अतः कहा जा सकता है कि उनके ये यात्रावृत्त न केवल तत्कालीन प्रकृति के दर्शन करवाते है बल्कि आधुनिक नीलगिरि के प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रतिपादित करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरग्रेटेड, हिमालय स्टडी, पृ० 398
2. तिब्बत में सवा वर्ष, सांकृत्यायन राहुल, पृ० 260
3. किन्नर देश में, सांकृत्यायन राहुल, पृ० 266
4. हिमाचल भाग 1, सांकृत्यायन राहुल, पृ० 13
5. हिमाचल भाग 2, सांकृत्यायन राहुल, पृ० 31
6. मेरी लद्दाख यात्रा, सांकृत्यायन राहुल, पृ० 52

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 20-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बोहल की कविताएँ : भारतीय सनातन संस्कृति और समाजिक सुधार की ओर एक साहित्यिक दृष्टि

डॉ. महावीर प्रसाद पूनियां (शिक्षाविद्)
अध्यक्ष, अखिल भारतीय साहित्य परिषद् राजस्थान इकाई– टिब्बी (हनुमानगढ़)

सारांश (Abstract) :-

डॉ. नरेश सिहाग द्वारा रचित 'बोहल की कविताएँ' एक उत्कृष्ट काव्य–संग्रह है, जिसमें जीवन के विविध पहलुओं को शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह संग्रह न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि समाज को सही दिशा देने और भारतीय सनातन संस्कृति को पुनर्जीवित करने का प्रयास भी करता है। इस शोध–पत्र में संग्रह की कविताओं का विश्लेषण करते हुए, उनमें व्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक, और आध्यात्मिक संदेशों को समझने का प्रयास किया गया है। एक अद्वितीय साहित्यिक कृति है, जो पाठकों को न केवल भावनात्मक रूप से जोड़ती है बल्कि समाज को शिक्षाप्रद संदेश भी देती है। इस संग्रह में मानव जीवन के विविध पहलुओं, मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक चुनौतियों, और भारतीय संस्कृति की गहराई को बेहद मार्मिकता और कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

1. **पुस्तक का परिचय :-** 'बोहल की कविताएँ' में कुल 70 से अधिक कविताएं शामिल हैं।
कविताएं विभिन्न विषयों जैसे समाज, संस्कृति, शिक्षा, आध्यात्म, और व्यक्तिगत विकास पर आधारित हैं।

2. **साहित्यिक संरचना और शैली :-**

कविताओं में सरल, सहज और प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग। प्रतीकात्मकता और रूपकों का उपयोग जो पाठकों के मन में गहरे प्रभाव छोड़ता है। भारतीय काव्य परंपरा का समावेश, जैसे छंदबद्ध शैली और मुक्त काव्य। यह शिक्षाप्रद और विचारशील कृति है। हर कविता के माध्यम से डॉ. नरेश सिहाग समाज में व्याप्त कुरीतियों, दोहरे चरित्र, और पर्यावरणीय समस्याओं जैसे मुद्दों को उठाते हैं। साथ ही, वे समाधान की ओर भी संकेत करते हैं। पुस्तक भारतीय सनातन संस्कृति को पुनर्जीवित करने और पाठकों को सकारात्मक दिशा देने का उत्कृष्ट प्रयास करती है।

3. **मुख्य विषय वस्तु :-**

भारतीय संस्कृति और परंपरा–कविताएं जैसे 'संस्कार और संस्कृति', 'परमपिता से चाह', और 'अच्छा करके दिखलाएं' भारतीय मूल्यों को संजोने और प्रचारित करने का कार्य करती हैं।

सामाजिक सुधार :–

इस काव्य–संग्रह की कविताएं समाज में नैतिकता, ईमानदारी, और सकारात्मक सोच को बढ़ावा देती हैं। 'मानव से महामानव' जैसी कविताएं मानवीय जीवन को उत्कृष्टता की ओर प्रेरित करती हैं, जबकि 'त्याग आवश्यक है' जैसे शीर्षक समाज के प्रति त्याग और सेवा की भावना को प्रबल बनाते हैं।

'पराली और पटाखे', 'क्योंकि तुम ईश्वर हो', और 'भूलना मना है' जैसी कविताएं पर्यावरण और सामाजिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं।

व्यक्तिगत विकास और प्रेरणा :–

'रुकना मना है', 'सकारात्मक सोच', और 'अविनाशी है' जैसे शीर्षक आत्म–विकास और मानसिक सुदृढ़ता पर प्रकाश डालते हैं।

4. समाज के प्रति योगदान :–

कविताओं का उद्देश्य पाठकों को सही दिशा में प्रेरित करना और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाना है।

कवि की रचनाएं युवा पीढ़ी को नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की ओर प्रेरित करती हैं।

5. आधुनिकता और सनातन संस्कृति का समन्वय :–

'बोहल की कविताएँ' आधुनिक समस्याओं को सनातन दृष्टिकोण से सुलझाने की पहल करती हैं। संग्रह में दिखाया गया है कि कैसे प्राचीन मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं।

6. महत्वपूर्ण कविताओं का विश्लेषण :–

'मन की पुकार' : आत्मा और परमात्मा के संवाद का सार।

'असंभव से संभव' : असंभव को संभव बनाने की प्रेरणा।

'छोटी–छोटी खुशियां' : जीवन में संतोष और प्रसन्नता का महत्व।

'कर्म प्रधान' : कर्म के महत्व और उसके परिणामों पर गहन चिंतन।

प्रमुख विषय–वस्तु :–

इस काव्य–संग्रह में जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने वाली कविताओं को स्थान दिया गया है। हर कविता में विचारों की गहराई, भावनाओं की तीव्रता और शब्दों का चमत्कारिक संयोजन देखा जा सकता है। कुछ प्रमुख कविताओं और उनके संदेश पर प्रकाश डालते हैं।

1. **घर और पुस्तकालय :–** यह कविता घर और पुस्तकालय की महत्ता को रेखांकित करती है। यह बताती है कि एक आदर्श घर वही है जहां ज्ञान का प्रकाश फैले और पुस्तकालय की उपस्थिति हो।
2. **पराली और पटाखे :–** पर्यावरणीय समस्याओं और उनके समाधान की ओर ध्यान आकर्षित करती है। यह कविता पाठकों को प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व की याद दिलाती है।
3. **पता नहीं क्यों :–** मानवीय जीवन में उठने वाले अनगिनत सवालों और उनके उत्तरों की खोज को इस कविता में दर्शाया गया है।
4. **अच्छा करके दिखलाएं :–** यह कविता प्रेरणादायक है, जो हर व्यक्ति को अच्छे कर्मों की ओर प्रेरित करती है।

5. **संस्कार और संस्कृति :–** भारतीय संस्कृति और मूल्यों की रक्षा और उनके पुनर्जीवन का संदेश देती यह कविता पाठकों को अपनी जड़ों से जुड़े रहने की प्रेरणा देती है।

6. **मन की पुकार :–** यह कविता व्यक्ति के आंतरिक संघर्षों और शांति की खोज का मार्मिक चित्रण करती है।

7. **रूकना मना है :–** जीवन के हर कठिन मोड़ पर संघर्ष करते रहने और लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती यह कविता पाठकों को उत्साह और ऊर्जा से भर देती है।

निष्कर्ष (Conclusion) :–

'बोहल की कविताएँ' केवल कविताओं का संग्रह नहीं, बल्कि एक मार्गदर्शक ग्रंथ है। इसमें समाज और व्यक्तित्व को उन्नति की ओर प्रेरित करने की अद्‌भुत क्षमता है। डॉ. नरेश सिहाग की यह कृति भारतीय साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाती है। यह एक दर्पण है जो समाज, संस्कृति, और व्यक्तिगत जीवन को स्पष्ट रूप से दिखाता है। यह कृति हर उम्र और हर वर्ग के पाठकों को विचारशील और प्रेरित करती है। डॉ. नरेश सिहाग की यह रचना भारतीय साहित्य को समृद्धि प्रदान करती है और एक ऐसा अमूल्य योगदान है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहेगी।

संदर्भ (References) :–

1 सिहाग, नरेश। बोहल की कविताएँ।

2. अन्य साहित्यिक और सांस्कृतिक स्रोत।

drmahaveerpoonia@yahoo.com

Contact 7891809345

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 23-28

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रवासी हिंदी साहित्य : रचनात्मक दृष्टि का दस्तावेज

डॉ. रमेश चन्द सैनी

स

सार :-

साहित्य के विशाल वटवृक्ष की अनेक समृद्ध और सशक्त शाखाओं में से एक शाखा प्रवासी हिंदी साहित्य की भी है, जो दिन–प्रतिदिन अपनी रचनाधर्मिता से हिन्दी साहित्य को सघन बनाने के साथ–साथ पाठक–वर्ग को प्रवास की संस्कृति, संस्कार एवं उस भू–भाग से जुड़े लोगों की स्थिति से अवगत कराने का कार्य कर रही है। 'प्रवासी साहित्य– हिन्दी–साहित्य की एक नवीन विधा एवं चेतना है, जो प्रवासियों के मनोविज्ञान से जुड़ी है, यह न केवल एक नई विचारधारा है, बल्कि एक नई अन्तर्दृष्टि भी है। यद्यपि प्रवासी साहित्य की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है, किन्तु फिर भी प्रवासी–साहित्य अपनी संवेदनात्मक रचनाधर्मिता से साहित्य के क्षेत्र में गहरी जड़ें जमा चुका है। भारत से दूर अन्य देशों में बसे भारतीयों के अथक प्रयासों से ही आज प्रवासी साहित्य समृद्ध और सशक्त बन पाया हैं। प्रवासी साहित्य जो पहले उपलब्ध था, उससे आज का प्रवासी साहित्य एकदम भिन्न हैं। जैसे–जैसे प्रौद्योगिकी चरम सीमा लाँघती गई, वैसे–वैसे यह साहित्य भी अधिकाधिक जनप्रिय होता गया तथा जन–जन तक इसकी पहुँच बढ़ती गयी। प्रवासी भारतीय, मातृभूमि से कोसों दूर होते हुए भी इस माध्यम से बहुत सन्निकट होते गए हैं।

मूल शब्द :- प्रवासी, साहित्य, रचनात्मकता, संवेदना, दस्तावेज।

प्रस्तावना :-

साहित्य अन्तर्मन व सामान्य भाव–भूमि पर लोकमानस की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। उसी की एक शाखा 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' हिन्दी जगत् में एक नया वाक्यांश व चेतना है। 'प्रवासी' शब्द 'प्रवास' शब्द का विशेषण है। जो अपने भौगोलिक–परिवेश और साँस्कृतिक–परिदृश्य से परिचित कराता है। प्रवासी–साहित्य एक मनोविज्ञान है, एक नयी–अर्न्तदृष्टि है, जिसे स्वतः स्पष्ट होने में पर्याप्त समय लगा है। एक तरह से प्रवासी वे कलमें हैं – "जो अपने पेड़ से कटी हुयी टहनियाँ होने के बावजूद वर्षों किसी अन्य मिट्टी–खाद–पानी में अपनी जड़ें रोपती हुयी अपना बहुत कुछ खोने और नया बहुत कुछ उस 'नयी–भूमि' से लेने–पाने के साथ अपने भीतर की गहराईयों में नई–उर्जा सृजित करती हुयी नई–चेतना की कोपलें विकसित करती हैं।"[1]

प्रवासी लेखक की संवेदना, संस्कार के रूप में अपने नये परिवेश को ग्रहण करती है। वह अपने जन्म–स्थान, देश और मिट्टी से अलग होकर एक अन्य देशकाल तथा परिवेश में विचरण करता हुआ उसी में जीवन–यापन करता है। एक नये परिवेश में जाने से प्रवासी के जीवन में विषमताएँ और जटिलताएँ आती हैं।

जिस कारण उसके मन–मष्तिष्क में नये संस्कार, नये विचार, नया दृष्टिकोण, नई सोच और नई मान्यताएँ बनने लगती हैं। वह पुराने मूल्यों को नये दृष्टिकोण से देखने लगता है। इन स्थानों में बसे हिन्दी लेखक विभिन्न सामाजिक परिवेशों से प्रभावित होते हैं और इन परिवेशों और परिस्थितियों को अपनी रचना का विषय बनाते हैं। इनके द्वारा रचित साहित्य 'प्रवासी साहित्य' कहलाता है। आज के संदर्भ में 'प्रवासी' शब्द उन लोगों को मुखातिब हुआ हैं जिन्होंने रोजगार की तलाश या आर्थिक उच्चता के लिए अपने देश से बाहर विदेशी भूमि को जीविकोपार्जन का माध्यम बनाया।"[2]

शोध विस्तार :-

भारत के लोग अपने ज्ञान और व्यापार आभा को विश्व के अधिकांश देशों में फैलाने का कार्य युगों से करते रहे हैं। परन्तु ब्रिटिश उपनिवेश बनने के बाद भारत से अनेक देशों में बंधुआ मजदूर के रूप में भारतवंशी 19वीं शताब्दी के मध्य से पर्याप्त संख्या में भेजे गए हैं। इसके बाद भारत की स्वतंत्रता के उपरांत एक भिन्न प्रकार का वर्ग विदेशों में अल्पकालिक या पूर्णकालिक के रूप में बस गया। यह वर्ग व्यवसाय, नौकरी, शिक्षा, राष्ट्र–प्रचार आदि अनेक दृष्टियों से विदेश गया था। उक्त दोनों प्रवासों में निश्चित ही अंतर था और यह अंतर उनके द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। बंधुआ मजदूर के रूप में मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गुयना, त्रिनिदाद जैसे कैरेबियन तथा अन्यदेशों में बसे हुये भारतवंशी लोगों ने अपनी जड़ों (इतिहास और संस्कृति) से जुड़े रहने के लिए साहित्य–सृजन को एकमात्र साधन रूप में अपनाया। यह साहित्य प्रवासी भारतवंशियों की संवेदना और गौरव का जीवंत परिचायक है।

दूसरी ओर स्वतंत्रता के बाद विकसित देशों में जाने वाले भारतवंशियों ने अपने पूर्ण या आंशिक प्रवास में भी साहित्य के माध्यम से अपनी अस्मिता की रक्षा और बोध कराने के लिए विपुल मात्रा में साहित्य सृजन किया। ये दोनों वर्ग भारतीय संस्कृति के प्रचारक, प्रस्तावक और संरक्षक के रूप में विदेशों में भारतीय संस्कृति का लोहा मनवा चुके हैं। वहाँ पर विभिन्न पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन, कवि सम्मेलन, साहित्यिक गोष्ठियाँ, कार्यशालायें इसका अन्यतम उदाहरण हैं। मॉरीशस जैसे देश में तो अनेकों गलियाँ, मुहल्ले, तालाब, और पर्वत भारतीय नामों से विभूषित है।

प्रवासी साहित्य का परिदृश्य आज वैश्विक बनता जा रहा है। वर्तमान में रचे जा रहे प्रवासी साहित्य का अपना वैशिष्ट्य है जो उसकी संवेदना, परिवेश, जीवन दृष्टि तथा सरोकारों में दिखाई देता है। विदेशों में प्रवासी साहित्य सृजन के परिवेश, स्वरूप, विषय–वस्तु, महत्वाकांक्षाओं और चुनौतियों पर प्रकाश डालते हुये, उषा राजे सक्सेना ने लिखा है– "प्रवासी भारतीय रचनाकारों की लेखन–शैली, शब्द–संस्कृति, संवेदना, सरोकार और स्तर मुख्यधारा के लेखन से भिन्न रही है। इसी भिन्नता के कारण प्रवासी लेखन ने साहित्य की मुख्यधारा के पाठकों को एक नई–दृष्टि, एक नई–चेतना, एक नयी–संवेदना और एक नई–उत्तेजना भी दी है।"[3] विदेशों में लिखे जा रहे सृजनात्मक प्रवासी साहित्य पर पुनः विचार प्रकट करते हुये, उषा राजे सक्सेना का यह कथन भी सर्वथा उचित है कि–"प्रवासी रचनाकारों को अपने साहित्य व सरोकार को बनाये रखने के लिए अपने कैनवस को ओर अधिक विशाल बनाना होगा।"[4]

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है जिसमें समाज में रहने वाले प्राणियों की जीवन्त छवि झलकती प्रतीत होती है। साहित्य समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति ही नहीं करता, अपितु उसे दिशा–निर्देश एवं मार्गदर्शन भी

देता है। वहीं हमें हँसकर और संघर्षो में जीने की कला सिखाता है साहित्य, समाज के नवनिर्माण के मध्य साहित्यकार एक कड़ी का काम करता है, उस कड़ी में साहित्यिक लेखन सामग्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह लेखन–सामग्री लेखक की चेतना से सम्बद्ध होती है और लेखक की चेतना परिवेश से आक्रांतित होकर मन के अन्तर्द्वन्द्व से व्यथित, प्रेरित, उन्मुक्त होकर साहित्य में प्रकट होती है। परिणामतः परिवेश, लेखन व लेखक एक दूसरे से सम्बद्ध होते जाते है, जिससे समाज प्रेरणा प्राप्त करता है। लेखक अपने परिवेश के अनुसार अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हेतु साहित्य का आश्रय ग्रहण करता है और साहित्य लेखक की मनःस्थिति से प्रभावित, पल्लवित और पुष्पित होकर पुनरू समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे वह मानव के अन्तर्द्वन्द्व को सहेजने–संवारने का प्रयास करता है।''[5] आज का मानव मन अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित होकर सदैव संघर्षरत होता हुआ सुखद जीवन यापन करने का प्रयास करता है। यह अन्तर्द्वन्द्व केवल मन का ही नहीं होता अपितु उसके परिवेश, परिवार और व्यवहार का भी होता है। फलतः साहित्यकार भी ऐसा ही संवेदनशील व्यक्ति होता है, क्योंकि वह निरंतर अपनी समस्त इन्द्रियों से इस प्रकार के परिवेश व परिस्थितियों को देख रहा होता है। प्रवासी साहित्यकारों में कईं ऐसे प्रसिद्ध नाम हैं, जिनकी रचनाओं को पढ़कर आप बखूबी अनुमान लगा सकेंगे कि दूर देश में रहते हुये भी वे दुनिया को भारतीय चश्में से देखते हैं, इसलिए उनका लेखन नयेपन के बावजूद पाठक के मन को छूलेता है।'[6]

प्रवासी साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में हिन्दीतर–भाषी अनेक कवियों, उपन्यासकारों, कहानीकारों, ने अपना योगदान देकर माँ शारदा के साहित्य भण्डार को समृद्ध किया है। प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों में श्री अभिमन्यु अनत का नाम सर्वप्रमुख है। श्री अनत जी बड़े ही समर्पित भाव से प्रवासी हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे है। भारत में भी इन्हें एक मौलिक रचनाकार के रुप में किसी भी अन्य हिन्दी लेखक के समान ही पाठकों का प्रेम एवं सम्मान प्राप्त है। अनत जी भारतवंशी है और उनके साहित्य का मूलाधार भी मॉरिशस का भारतवंशी समाज है, इस कारण भारत के हिन्दी पाठक उनके साहित्य से 'दो शरीर एक आत्मा' वाले सम्बन्ध का अनुभव करते है। श्री अनत जी मॉरिशस की धरती के लेखक है। वे अपने देश की पीड़ा एवं जनमुक्ति के साहित्यकार हैं। इन्हें इस अर्थ में 'मॉरीशस का प्रेमचंद' कहा जा सकता है। उनकी यह जनपीड़ा जितनी पूर्वजों के रक्त की लालिमा लिए हुये हैं उतनी ही अपने समय के मॉरिशस के समाज के अंधकारपूर्ण भविष्य की कालिमा को भी ओढे हुये है। इनका साहित्य, अतीत–वर्तमान और भविष्य तीनों कालों की मानवीय पीड़ा, शोषण, अत्याचार, नियति, विवशता आदि को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करता है। इन्हीं के शब्दों में– "आनन्द आदमी और देश का विशेष हो सकता है। डिस्को डांस से आनन्द पाने वाला भांगड़ा नाचकर बड़ा आनन्द नहीं पा सकता, लेकिन भूख चाहें रुस की हो, चाहें अमेरिका की, चाहें इंग्लैंड की हो या फिर किसी अन्य देश की, उसकी पीड़ा एक–सी होती है।"[7] महात्मा गाँधी का जन्म एक परिवार का आनन्द था, पर उनकी मृत्यु पूरे विश्व की पीड़ा थी। यही कारण है कि ये अपने छोटे से देश की लघु सीमाओं से निकलकर विश्व में फैली मानव–जाति के लेखक बन गये है।

यह स्मरणीय है कि श्री अनत केवल शोषण, पीड़ा, हिंसा और अत्याचार के यथार्थ चित्रण तक ही सीमित नहीं रहे, अपितु उन्होंने प्रेमचंद के समान मानव मुक्ति का शंखनाद भी किया। वे अपने उपन्यासों, कहानियों, कविताओं, नाटकों आदि में निर्धन एवं अशिक्षित वर्ग के शोषण की कथा कहते है। अमानवीय परिस्थितियों एवं असामाजिक चरित्रों का उद्घाटन करते है। इसके साथ ही अपने चरित्रों एवं उनके विचारों में मानसिक,

सांस्कृतिक, आर्थिक, दासत्व की परिस्थितियों एवं स्थितियों को समूल नष्ट करने के लिए क्रान्तिकारी बैचेनी तथा सक्रियता भी उत्पन्न करते है। यह विशेषता उन्हें जनपीड़ा के साथ जनमुक्ति का लेखक भी बना देती है। इसी सशक्त विशेषता के कारण इनका साहित्य, इन्हें प्रेमचंद के समकक्ष रखता है।'[8]

'एक बीघा प्यार' का चरित्र 'हीरा', 'गोदान' के होरी की याद दिला देता है। इनमें अन्तर यही है कि होरी अनपढ़ हैं और हीरा साक्षर है पर विशेष पढ़ा लिखा नहीं..! किन्तु दोनों का शोषण एक–सा होता है। हीरा में होरी के समान ही धरती के प्रति प्यार है– एक ललक है, समर्पण है। धरती के प्रति अगाध प्रेम का दिग्दर्शन श्री अनत के साहित्य में सर्वत्र विद्यमान है। 'अपनी–अपनी सीमा' का चरित्र 'आलोक' धरती के छोटे से टुकड़े को पाने के लिए क्या नहीं करता? मानसिक रुप से विक्षिप्त होकर अपनी भरी पूरी गृहस्थी को तबाह कर लेता है। 'कुहासे का दायरा' का धनेश भी खेती के लिए थोड़ी–सी भूमि हो यह उसका सुनहरा सपना है– इसके लिए वह खूब प्रयास भी करता है। यही मनःस्थिति 'पगडंडी नहीं मरती' उपन्यास के मुख्य पात्र विक्रम की है। श्री अभिमन्यु अनत के लेखन की यह महत्वपूर्ण विशेषता है।'[9]

सुधा ओम ढींगरा एक प्रसिद्ध प्रवासी महिला लेखिका है। सुधा जी का लेखन एक साँस्कृतिक सेतु की तरह है। अमेरिका में मस्त और व्यस्त भारतीय पीढ़ी के बीच त्रस्त पीढ़ी के भी चित्र उनकी कहानियों में दिखाई देते हैं। इनकी 'सूरज क्यों निकलता है' कहानी को पढ़ते हुये पाठक को सहसा ही प्रेमचन्द के घीसू और माधव याद आने लगें, तो कोई आश्चर्य नहीं। घीसू और माधव की तुलना में जेम्स और पीटर ज्यादा निर्लज्ज और अराजक हैं। इसी प्रकार 'टारनेडो' कहानी भारत की याद और उसकी खुशबू की कहानी है, वहीं 'क्षितिज से परे' कहानी में एक प्रताड़ित स्त्री के विद्रोह को दर्शाया गया है।

रचना श्रीवास्तव, अमेरिका में प्रसिद्ध हिन्दी लेखिका है। उन्हें मातृभूमि से इतर विदेशी–भूमिका जो वातावरण दिखायी पड़ा, उसमें वो कहती हैं कि "हम स्त्रियों की दशा कष्टप्रद होती है। उन्होंने 'पार्किंग' कहानी में नारी के माध्यम से रिश्तों के प्रति सोच और त्याग को एक जैसा ही दर्शाया है और पुरुष की स्वार्थी मानसिकता का भी चित्रण किया।"[10] सुषम बेदी का 'हवन' और 'मैने नाता तोड़ा' उपन्यास काफी चर्चा में रहा। इसमें अमेरिका के परिवेश में एक विधवा स्त्री के जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। वहीं उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में छठे और सातवें दशक के शहरी परिवारों का संवेदनापूर्ण चित्रण मिलता है।

उषाराजे सक्सेना प्रख्यात महिला प्रवासी हिन्दी लेखिका है। इंग्लैण्ड को कर्मभूमि बनाकर लिखने वाले प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों में इन्होंने काफी सक्रियता और लोकप्रियता प्राप्त की है। इनके साहित्य में भारत, भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा के प्रति प्रत्येक तरह के अनुभव तथा विचार प्रकट होते दिखाई देते है। इनकी 'वह रात' बेहद चर्चित कहानी है। एक माँ और उसके छोटे–छोटे बच्चों के साथ कल्याणकारी राज्य की भूमिका पर केन्द्रित इस कहानी की मर्मस्पर्शी संवेदना हृदय को झकझोर देती है।'[11]

शैल अग्रवाल के लेखन का कैनवस अत्यंत विस्तृत है। उनकी कहानियाँ मानव मन की सूक्ष्म अभिव्यंजना प्रस्तुत करती हैं तो कविताएँ अपनी एक विशेष छाप छोड़ती हैं। उनके लेखन में 'बनारस की ताजगी और ब्रिटेन की समझ' दोनों की झलक देखी जा सकती है। इनकी प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' में परम्परा तथा आधुनिकता के अन्तर्द्वन्द्व में फँसी नायिका 'पम्मी' अपने घर–परिवार की मान–मर्यादा के लिए अपनी खुशियों तथा आकांक्षाओं को दबा लेतीहै, उसीतरहडॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के साहित्य एवं नाटकों में 'मानवीय मन की उस अन्तर पीडा

की संवेदना प्रकट होती है जिसे प्रवासी–जन अपनी मातृभूमि से, अपनी मूल–जड़ों से कटकर एकांत में प्रवास के दौरान भोगता है।'[12]

प्रवासी हिन्दी साहित्यकार ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, रूस, गुयाना, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, श्रीलंका, (वेस्टइण्डीज), ऑस्ट्रेलिया आदि स्थानों को अपनी कार्यभूमि स्वीकार कर साहित्य सृजन करते आये हैं। प्रवासी हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत कविताएँ, उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, एकांकी, महाकाव्य, खण्डकाव्य, अनूदित साहित्य, यात्रा वर्णन, आत्मकथा आदि का सृजन हुआ है। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा नैतिक मूल्य, मिथक, इतिहास, संस्कृति, और सभ्यता के माध्यम से 'भारतीयता' को सुरक्षित रखा है।

अपनी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा करते हुये, प्रवासी भारतीय जिस प्रकार से उपनिवेशों की एवं स्वयं अपनी उन्नति कर सके और उपनिवेशों की आजादी के बाद राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं साँस्कृतिक क्षेत्रों में प्रतिमान स्थापित किये उन्हीं प्रवासी भारतीयों की संताने आज अनेक देशों में वहाँ के भाग्य–विधाता है। इन भारतीय मूल के लोगों ने अत्यंत विषम परिस्थितियों में अनेक अत्याचार और यातनाएँ सहकर भी अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा की। आज सूर, कबीर, तुलसी, नानक के शब्द प्रवासी साहित्यकारों के परिश्रम से विदेशी भूमि पर गुंजायमान हो रहे है।'[13]

निष्कर्ष :–

भारतीय संस्कृति, जीवन–मूल्यों, कला, साहित्य व संगीत की पहचान बनाये रखने में प्रवासी रचनाकारों का जो योगदान रहा अभूतपूर्व है। प्रवासी साहित्य ने, हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नये साहित्य संसार से समृद्ध किया है। इस प्रवासी साहित्य की बुनियाद भारत–प्रेम तथा स्वदेश–परदेश के द्वन्द्व पर टिकी है तथा बार–बार हिन्दू जीवन मूल्यों, साँस्कृतिक उपलब्धियों तथा उनके प्रति श्रेष्ठता के भाव की अभिव्यक्ति प्रकट की है। प्रवासी हिन्दी लेखक भारतीय होने के कारण एक तरफ हिन्दी का प्रचार–प्रसार विदेशों में कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से भी वहाँ के लोगों का परिचय करवा रहे हैं। प्रवासी भारतीय दुनिया में जहाँ भी गये सदैव अपनी बहुरंगी संस्कृति का पुष्प साथ लेकर गये हैं। अतः यह कहना सार्थक ही होगा कि प्रवासी साहित्य भारतवंशियों की रचनात्मक दृष्टि का दस्तावेज है। इसी रचनात्मक दृष्टि के बलबूते प्रवासी साहित्यकारों ने, न सिर्फ सृजनात्मक यश प्राप्त किया बल्कि विश्व में फैले हिंदी–भाषा–भाषियों को भी अपना सिर गर्व से ऊँचा करने का अवसर प्रदान किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. उषा राजे सक्सेना, (2006) 'प्रवासी हिंदी लेखन तथा भारतीय हिंदी', 'वर्तमान साहित्य', कुंवरपाल सिंह, नमिता सिंह (संपादक), जनवरी–फरवरी अंक, पृष्ठ 62
2. अनिल जोशी, (2018) प्रवासी लेखन (नई जमीन, नया आसमान), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 37
3. नवनीत कौर, (2017) प्रवासी हिन्दी साहित्य वैश्विक परिदृश्य, हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, पृष्ठ 31–33
4. वही, पृष्ठ 71
5. सूर्य प्रसाद दाधीच, (2013) विश्वपटल पर हिंदी, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 21

6. उषा राजे सक्सेना, (2006) 'प्रवासी हिंदी लेखन तथा भारतीय हिंदी', 'वर्तमान साहित्य', कुंवरपाल सिंह, नमिता सिंह (संपादक), जनवरी–फरवरी अंक, पृष्ठ 64
7. कमल किशोर गोयनका, (2009), 'भूमिका शब्द योग', अप्रैल–मई, पृष्ठ 7–8
8. कमल किशोर गोयनका, (2003), विश्व हिंदी रचना, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली, पृष्ठ 25
9. पुष्पिता अवस्थी : सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, पृष्ठ 27
10. विमलेश कांति, भावना सक्सेना : सूरीनाम का सृजना. हिंदी साहित्य, पृ. 18
11. अनिल जोशी, (2018) प्रवासी लेखन (नई जमीन, नया आसमान), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 52
12. वही, पृष्ठ 112
13. विमलेश कांति वर्मा, (2016) प्रवासी भारतीय साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 312

संपर्क / पता :
ग्राम / पोस्ट, रजलावता तहसील नैनवाँ, जिला बून्दी (राजस्थान)–323801
दूरभाष 9001166242
ईमेल rameshsaini11211@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 29-33

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'हमीदाबानो बेगम' का मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय योगदान

डॉ. शंहशाह

सहायक प्राध्यापक (गेस्टफैकल्टी), इतिहास एवं एच.टी. एम.ए. विभाग, कोटा विश्वविद्यालय कोटा (राज.)

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगलकाल में काफी मात्रा में स्त्रियाँ इतिहास के पन्नों पर दृष्टिगोचर होती हैं। मध्य एशिया की परम्पराओं का पालन करते हुए मुगल शासकों ने अपनी स्त्रियों को काफी स्वतंत्रता दी थी और उनके साथ मिलते–जुलते थे। वैसे तो महल की सभी बेगमों और शाहजादियों का आदर एवं सत्कार होता था, परंतु उनमें से कुछ का सम्मान विशेष रूप से था। उन्हीं में से एक मरियम मकानी भी थीं जिनका वास्तविक नाम हमीदाबानू बेगम था। हमीदाबानो बेगम मुगल काल की एक अत्यधिक प्रतिभाशाली और अद्वितीय सुंदरी थी। उनका मुगल हरम में अपना एक विशेष स्थान था। हमीदा बानो बेगम ने अपने प्रभावशाली व्यक्ति के आधार पर मुगल सामाज्य की राजनीति, प्रशासनिक व्यवस्था, कला एवं संस्कृति, हस्तलिखित शैली को प्रभावित किया जो मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय है। हमीदा बानो बेगम ने मुगल राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था में सक्रिय भूमिका अदा की। सन् 1541 ई (918 हिजरी सवत) में हमीदाबानों बेगम का विवाह पत्र नामक स्थान पर मुगल सम्राट हुमायूँ से हुआ। उस समय हमीदाबानों बेगम की आयु 14 वर्ष और मुगल सम्राट हुमायूँ की आयु 33 वर्ष थी।'[1] हमीदाबानो बेगम शिया मत की अनुयायी थी। जबकि मुगल सम्राट हुमायूँ सुन्नी मत को मानने वाला था। यह विवाह उस समय हुआ जब मुगल सम्राट हुमायूँ शेरशाह सूरी से चौसा नामक स्थान पर पराजित होकर निर्वासन की अवस्था में था। अकबर की माँ हमीदा बानो बेगम को भारतीय इतिहास में 'मरियम मकानी– कहा जाता है।[2]

हिन्दू मुस्लिम संस्कृति का उदय :–

हमीदा बानो बेगम के समय मुगल हरम में एक नवीन हिन्दु मुस्लिम संस्कृति का उदय हुआ। हमीदा बानो बेगम के समय राजपूत स्त्रियों का प्रवेश मुगल हरम में हुआ। राजपूत स्त्रियाँ हरम में प्रवेश के साथ–साथ अपनी विशेष रीति–रिवाज परम्पराएँ भी साथ लायी। हमीदाबानो बेगम स्वंय शिया मत की अनुयायी थी वह फारसी रीति–रिवाज को मुगल हरम में लायी। जिससे मुगल हरम में एक नवीन हिन्दु–मुस्लिम संस्कृति का उदय हुआ जो भारतीय संस्कृति का संगम कहलायी।'[3] हमीदा बानो बेगम के समय नवीन वेश–भूषा, श्रृंगार, आभूषणों और रीति–रिवाजों का जन्म हुआ जिसे सामाजिक तौर पर हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों ने अपनाया। अकबरनामा में चित्रकार साँवला ने एक चित्र में हमीदाबानो बेगम को उसकी धायियों के साथ अकबर को हाथों

में लेते हुए बतलाया है। इस चित्र से यह प्रमाणित होता है कि अकबर के समय हमीदाबानो बेगम धायियों के साथ स्नेह पूर्वक व्यवहार किया करती थी।

(शिशु अकबर को धायियों की गोद में सौंपते हुए, हमीदाबानो, चित्रकार, सांवला (अकबरनामा)

15 अक्टूबर 1542 ई को अमरकोट (सिन्ध प्रान्त पाकिस्तान) में राजा वीरसाल के महल में हमीदा बानो बेगम की कोख से अकबर का जन्म हुआ। उस समय महल में राजपूत हिन्दु स्त्रियाँ थी जिन्होने हुमायूँ के पुत्र अकबर को जन्म देने के समय हमीदा बानो बेगम की सहायता की थी। इससे हुमायूँ के शासन काल में राजपूत मुगलों के मध्य सम्बन्ध अत्यधिक घनिष्ट हो गये थे। हुमायूँ की मृत्यु पश्चात जब अकबर मुगल वंश का सम्राट बना तो उसने भी राजपूतों का अत्यधिक मान–सम्मान करते हुए स्नेह पूर्वक व्यवहार किया। उसने न केवल राजपूत शासकों विशेषकर आमेर के राजपूत शासक राजा मानसिंह को 7000 हजारी मनसब वजात दिये बल्कि राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्धभी स्थापित किये जो भारत में मुगल साम्राज्य के प्रमुख स्तम्भ बने।'[5] राजपूतो के प्रति इसी स्नेक व श्रद्धा के कारण अकबर ने सन् 1563 में जजिया व 1564 में हिंदुओं पर से तीर्थ यात्रा नामक कर समाप्त कर दिए।

युद्ध कला एवं अस्त्र–शस्त्र चलाने में निपुण :–

मुगल सम्राट हुमायूँ की 7वीं बेगम हमीदा बानो बेगम हथियार चलाने में निपुण और चतुर महिला थी। बाल्यकाल से ही युद्धकला एवं हथियार चलाने में निपुण थी। 'मरियम मकानी वीर एवं साहसी थीं। वह ऊँट, धोड़े इत्यादि पर भली–भाँति सवार हो सकती थीं।'[6] विवाह पश्चात भी वह युद्ध क्षेत्र में बादशाह के साथ जंग के मैदान में जाया करती थी। उसने अपनी वीरता व पराक्रम का समय–समय पर प्रदर्शन भी किया। सन् 1535 ई. में मुगल सम्राट हुमायूँ व गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के मध्य युद्ध हुआ तो हमीदा बानो बेगम युद्ध के मैदान में हुमायूँ की सहायता हेतु पहुँच गई और अपनी वीरता का परिचय देते हुए उसने हुमायूँ की सहायता की। तलवार चलाने की कला में सिद्धहस्त हमीदाबानो बेगम ने युद्ध क्षेत्र में अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है।

सूक्ष्म चित्र : हमीदाबानो बेगम युद्ध क्षेत्र में रणकौशल दिखाते हुये, (रूमर गार्डन)

मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में भूमिका :-

मरियम मकानी को शासन प्रबंध में भी दिलचस्पी थी। जब 1545 में कांधार विजय के बाद हुमायूँ काबुल की ओर रवाना हुआ। तो हमीदाबानू वहाँ बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में सुरक्षा एवं देखभाल के लिये रह गई। हमीदाबानों बेगम ने मुगल साम्राज्य की राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया था इसका प्रमाण हमें अभिलेखागार में स्थित उसके फारसी भाषा मे लिखित 'निशान' (हुकुमनामा) से मिलता है।[7] यह हुकुमनामा उसने महावन सरकार के परगना के अधिकारी बिथलेश्वर जुन नरदार को लिखा था। हमीदाबानो बेगम का हुकुमनामा जो महावन सरकार के परगना के अधिकारी के नाम है, जो मुगल सम्राज्य की राजधानी आगरा में था। यह हुकुमनामा खालसा भूमि (सरकारी भूमि) पर पशुओं को चराने की आज्ञा हेतु बिथलेश्वर जुन नरदार के नाम है। खालसा भूमिका का कोई भी व्यक्ति और जागीरदार इसे बदल नही सकता है और न ही गायों, पशुओं को चराने से रोक सकता है। यह हुकुमनामा हमीदाबानो बेगम का मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने का स्पष्ट प्रमाण है।

मुगल साम्राज्य की राजनीति में भूमिका :-

इतिहासकार गॉडनरूमर के अनुसार अकबर पर उसकी धायी माँ माहम अनगा का प्रभाव हमीदा बानो बेगम से भी अधिक था। माहम अनगा मुगल साम्राज्य के प्रमुख स्तम्भ बैराम खाँ की वास्तविक सत्ता के विरूद्ध थी। उसने हमीदाबानो बेगम व रूक्कया सुल्ताना बेगम के साथ मिलकर बैरम खां को सत्ता से हटवाया। इसी प्रकार सन् 1601 ई में हमीदाबानो बेगम, सलीमा सुल्ताना बेगम व गुलबदन बेगम ने अकबर व सलीम के बीच समझौता करवाया था। अबुल फजल ने अपनी कृति 'अकबरनामा' में हमीदाबानो बेगम की राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था की योग्यता की प्रशंसा की है।[8] हुमायूँ चौसा नामक युद्ध में शेरशाह सूरी के हाथों पराजित होने के बाद ईरान के शाह तहमस्प के पास सैनिक सहायता के लिए गया तब हमीदा बानो बेगम उसके साथ थी। हमीदाबानो बेगम शिया मत की अनुयायी थी। ईरान का शाह तहमस्प भी शिया मत को मानने वाला था।

इस कारण ईरान हमीदा के दृढ़ स्वभाव और संकल्प से प्रेरित हो के शाहतहमस्प ने बादशाह हुमायूँ की सैन्य मदद की।

हस्तलिखित कला में निपुण :-

हमीदा बानो बेगम हस्तलिखित कला में निपुण थी। उसका स्वंय का अपना दारूलइंशा (पत्र व्यवहार जारी करने का विभाग) था। उसने अरबी व फारसी भाषाओं में कविताएं लिखी एवं समय–समय पर अरबी–फारसी भाषा में निशान (पत्र) भी लिखे। वह अरबी भाषा में कुरान की व्याख्या किया करती थी। इसका प्रमाण हमें अकबर के शासन काल में हमीदा बानो बेगम द्वारा लिखे गये 'खुतूत' (पत्र) से स्पष्ट होता है।'[9] यह खुतूत आज भी राजस्थान स्टेट अर्काइवर बीकानेर एवं राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में संरक्षित है।

हुमायूँ की मृत्यु पश्चात अधिकांश पत्र व्यवहार स्वयं हमीदा बानो बेगम किया करती थी। लेखन शैली के अतिरिक्त उसे अनेक भाषाओं का ज्ञान था इस कारण अपनी प्रतिभा और कुशलता के कारण हमीदाबानो अकबर के शासनकाल में भी सक्रिय रही। मरियम मकानी के जीवन का अधिकतर भाग उनके पुत्र अकबर के काल में व्यतीत हुआ। उनका प्रभाव पुत्र पर पड़ना स्वाभाविक ही था। कहा जाता है, अकबर का शिया धर्म के प्रति झुकाव बेगम के प्रभाव के ही कारण कुछ अंश में था।'[10] अकबर भी अपनी माँ का बहुत आदर एवं सत्कार करते थे और सदैव उनका स्वागत करने राजधानी से बाहर जाते थे। शाहजादे शाहजादियों के विवाह के उत्सव भी उन्हीं के महल में मनाए जाते थे।

1599 ई. में जब अकबर दक्षिण की ओर जा रहे थे तो सलीम को अत्यधिक मद्यपान के कारण बादशाह के सम्मुख जाने की आज्ञा न दी गई। परंतु मरियम मकानी की प्रार्थना से उसे कोरनिश करने की आज्ञा मिल गई। जब सलीम ने 1601 में अपने पिता के विरुद्ध गद्दी प्राप्त करने के लिये विद्रोह कर दिया तो किसी का भी साहस शाहजादे के लिये क्षमा माँगने का न हुआ। अंत में मरियम मकानी तथा गुलबदन बेगम ने उसकी ओर से क्षमा माँगी और उन्हीं के प्रयत्न द्वारा बादशाह ने उसे क्षमा किया।

हमीदा बानो बेगम की मृत्यु :-

हमीदा बानो बेगम को दिल्ली स्थित हुमायूँ के मकबरे में उनकी कब्र के पास ही दफनाया गया। सफेद संगमरमर के पत्थर से निर्मित इस कब्र पर फूल पत्तियाँ उत्कीर्ण है। फूल पत्तियों में मेहराबनुमा आकृति में काले रंग की पट्टिया निर्मित है। जो हमीदा बानो बेगम की कब्र को औरअधिक सुन्दरता प्रदान करती है।'[11]

निष्कर्ष :-

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में हमीदा बानो बेगम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हमीदा बानो बेगम ने एक स्त्री होते हुए भी मुगल राजनीति प्रशासनिक व्यवस्था मे महत्वपूर्ण सक्रिय भूमिका अदा की। हमीदा बानो बेगम का व्यक्तित्व अगामी शोधार्थियों के लिए शोध का विषय होने के साथ–साथ ऐतिहासिक पहलूओं को उजागर करने में भी सहायक है। इस शोध पत्र में हमीदा बानो बेगम की चतुर निपुण हथियार चलने में योग्यता को प्रदर्शित किया गया है वही उनकी वीर साहसी व समरसता को भी बतलाया गया है। हमीदा बानो बेगम ने एक आधुनिक कुशल योग्य महिला की तरह मध्यकाल में भी उच्चकोटि के प्रशासनिक कार्य किये। वह उसकी राजनीतिक सूझबूझ से तत्कालीन समय के मुगल साम्राज्य को मजबूती मिली।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. शहंशाह, (2016), मुगल हरम की बेगमात का राजनीति व संस्कृति में योगदान (1526 से 1707 ई), राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, पृष्ठ 28
2. गुलबंदन, (1922), हुमायूँनामा, अंग्रेजी अनुवाद ऐनेटबैवरिज, रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ लंदन, लंदन, पृष्ठ 230
3. शहंशाह, (2016), मुगल हरम की बेगमात का राजनीति व संस्कृति में योगदान (1526 से 1707 ई), राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, पृष्ठ 156
4. वही, पृष्ठ 142
5. शिरीन मूसवी (जनवरी 2000), अकबर, नेशनल बुक ट्रस्ट इंण्डिया, नई दिल्ली, पृ. 05
6. रूमरगॉडन, (1980), गुलबदन, मैकमिलन लिमिटेड, लंदन, पृष्ठ 87
7. एस.ए. आईत्रिमिजी, (1979), एडिक्स फॉरम द मुगल हरम, इदारह–ए–अदाबियात, कासिम जॉनस्ट्रीट, दिल्ली, पृष्ठ 04
8. वही, पृष्ठ 20
9. अबुल फजल, (1921–1948), अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद एचबैवरिज एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, पृष्ठ 17
10. वही, पृष्ठ 31
11. शहंशाह, (2016), मुगल हरम की बेगमात का राजनीति व संस्कृति में योगदान (1526 से 1707 ई), राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पृष्ठ 128

संपर्क पता :–

डॉ. शहंशाह,

4–6–37, विज्ञान नगर कोटा, जिला कोटा (राज0) 324005

मोबाइल– 8619527784

ई–मेल – Shahanshahkota@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 34-38

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बाल–मनोविज्ञान के कुशल चितेरे : जैनेंद्र कुमार (संदर्भ 'खेल' कहानी)

राजेन्द्र कुमार माली

पता

सार :–

साहित्य सृजन की सुदीर्घ यात्रा में हिंदी कहानी ने पिछली एक शताब्दी से शिल्प एवं प्रयोग की दृष्टि से आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता इत्यादि के दौर से गुजरते हुये, पर्याप्त उपलब्धियाँ अर्जित की है। कहानी का शिल्प मनोविज्ञान से सम्बद्ध रहा है। पूर्ववर्ती व अन्य समकालीन कथाकारों में भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का गुण मिलता हैं, किन्तु वहाँ केवल स्थूल रूप ही दिखलाई पड़ता है। जैनेंद्र की दृष्टि सूक्ष्म मनोविश्लेषण पर अधिक रही हैं। जैनेंद्र ने अन्तर्मन में होने वाले मंथन, पीड़ा और उसकी घुमड़न के अज्ञात कारणों का पता लगाया है और एक सहृदय मनोवैज्ञानिक कहानीकार के रूप में उनका चित्रण कर हिंदी कहानी को नूतन दिशा एवं दृष्टि प्रदान की हैं। यद्यपि जैनेंद्र की कहानियों का कथानक अल्प ही रहा, पर उनमें मानव–मन के रहस्यों का उद्‌घाटन एवं आंतरिक विश्लेषण का आग्रह प्रमुख रहा हैं। उनकी कहानियों में भूमिका तथा उपसंहार हेतु अवकाश नहीं रहा है और न ही प्रासंगिक कथाओं के लिए कोई स्थान है। बालमन की सहज चित्त–वृत्तियों और भावनाओं का जितना सुंदर और क्रीड़ामय चित्रण जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में किया है, कदाचित् हिंदी में अन्यत्र कहीं हो। इस दृष्टि से जैनेंद्र की प्रसिद्ध बाल मनो–वैज्ञानिक कहानी 'खेल' श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।

शोध विस्तार :–

जैनेंद्र आधुनिक साहित्यिक संरचना जगत के एक विशिष्ट रचनाकार हैं। उनकी नवोन्मेष शालिनी सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रस्फुटन विभिन्न भाषात्मक विधाओं के माध्यम से हुआ है। हिंदी साहित्य जगत उन्हें कहानीकार के रूप में विशेष जानता है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा पाठक कथा–कहानी साहित्य अधिक पढ़ते हैं। कई ग्रंथालयों के सर्वेक्षण इसके साक्षी हैं। हिन्दी साहित्य में जैनेंद्र का पदार्पण एक नये–युग प्रवर्तक के रूप में हुआ। यह हिन्दी साहित्य की एक महान उपलब्धि थी। जैनेन्द्र आदर्शवादी प्रतिभावान कथाकार हैं। उनके कथा साहित्य में मनोविज्ञान का सामंजस्य उनकी अपनी अनूठी देन है। जैनेंद्र ने कहानी विधा को एक नया आयाम दिया, एक नया नारा दिया, जो मनोविज्ञान से अनुप्रमाणित था। यह सर्वथा नवीन प्रयोग और जीवन की आन्तरिक वृत्तियों का उद्‌घाटन करना मात्र था। जैनेंद्र की कहानी–कला में बालमन की उस सहज

सामंजस्यपूर्ण कलात्मक चित्तवृत्तियों का चित्रण है जो साहित्य की मनोवैज्ञानिक धारा में गोते लगाती है। जैनेंद्र ने बाल–मन के समग्र रूप का, उसकी सहज वृत्तियों का, उनके अन्तर में निहित सत्यों का उद्‌घाटन किया है। हिंदी के मनोवैज्ञानिक कहानीकार जैनेंद्र चौथे दशक के लोकप्रिय कथाकार हैं। इन्होंने कहानी कला को एक नई दिशा प्रदान की एवं बाह्य घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के अंतर्द्वंद्व द्वारा वस्तु विन्यास किया। गाँधी जी द्वारा चलाये गये देशव्यापी आंदोलन से प्रभावित हुए और सत्य अहिंसा के सिद्धांतों को अपनाकर गाँधीवादी विचारधारा के पोषक बने। इनकी कहानियों में दार्शनिकता झलकती हैं, किन्तु श्रद्धा और तर्क दोनों का मिश्रण हुआ हैं। यद्यपि वे गौतम बुद्ध के करुणावाद से बहुत प्रभावित हुए, किन्तु क्रांतिकारी रचनाकार होने के कारण मूल–धारा से हटकर इन्होंने परम्परागत नैतिक मूल्यों व वर्जनाओं की उपेक्षा की हैं। अतः कहीं–कहीं पर ये गाँधी दर्शन के व्यवहारिक पहलू से भिन्न प्रतीत होते हैं, तभी तो आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि– "रचना के क्षेत्र में जैनेंद्र न तो गाँधीवादी है और न आदर्शवादी। ये एकान्तिक, भावुक एवं कल्पना–जीवी लेखक हैं, जो वास्तविकता के प्रकाश में धूमिल दिखाई देते हैं। जहाँ तक जैनेंद्र कुमार की दार्शनिक दृष्टि का प्रश्न है, वह व्यक्तिवादी है और इसका विश्लेषण उन्होंने मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया हैं।"[1]

वस्तुतः जैनेंद्र ने जो नया दर्शन अपनाया उसमें अलौकिकता, मनोवैज्ञानिकता और बालदर्शन आकर मिल गये हैं। हिंदी कहानी जब प्रसाद और प्रेमचंद रूपी दो ध्रुवों पर सिमट रही थी, ऐसे ही में उनके समानान्तर जैनेंद्र कुमार ने एक अनूठी शैली को अपनी कहानियों में जगह दी। ऐसा नहीं है कि यह शैली और विषय–वस्तु सर्वथा नवीन थी। कथा–सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने भी इसी ओर इशारा किया था– 'सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।'[2] परन्तु जैनेंद्र ने मानो हिन्दी–कहानी जगत् में क्रान्ति ही ला दी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की– "मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो मात्र लौकिक हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर रहता हो, सबके भीतर ह्रदय है जो सपने देखता है। सबके भीतर आत्मा है, जो जगती हैं जिसे शस्त्र छूता नहीं, आग जलाती नहीं, सबके भीतर वह हैं जो अलौकिक है। मैं वह स्थल नहीं जानता जो अलौकिक न हो।"[3]

जैनेंद्र कुमार 'कहानी को मानव–मन में उथल–पुथल मचाने वाली समस्याओं की दिशा में समाधान का एक प्रयत्न मानते हैं। वे अपने आस–पास के जनजीवन से ही कहानी की वस्तु संकलित करते हैं. यद्यपि उन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं एवं पात्रों को लेकर भी कहानियाँ लिखी है, परन्तु उनकी संवेदना धरातल सदैव लौकिक ही रहा हैं। पात्रों एवं घटनाओं के चयन में उनकी दृष्टि सदैव जीवन जगत से सम्बद्ध रही हैं। उनकी बाल–मनोविज्ञान पर उकेरी गयी कहानियों में बालकों की क्रीड़ाओं का सहज और स्वाभाविक चित्रण है, उनका परस्पर रूठना तथा मनाना ह्रदय–स्पर्शी होने के साथ–साथ मानव के असामान्य व्यवहार की मानसिक प्रतिक्रियाओं को भी विश्लेषित किया गया है तथा जीवन और जगत की सूक्ष्म अनुभूतियों को गहराई से चित्रित किया है। जैनेंद्र की कहानियों में व्यक्ति सत्य के साथ ही अहं का विसर्जन भी है और उनके मूल में सहज मानवीय वृत्तियाँ हैं, 'खेल', इस दृष्टि से उत्कृष्ट और बाल–मनोविज्ञान पर आधारित अद्वितीय कहानी है।

'खेल' जैनेंद्र की पहली ऐसीकहानी है जो 'विशाल–भारत' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। जैनेन्द्र ने इसे खेल–खेल में ही लिख दिया था, अपने आस–पास का जो यथार्थ जैसा देखा, उसका वैसा वर्णन 'खेल' कहानी के रूप में कर दिया। इस कहानी में बाल–मनोविज्ञान का जितना सुंदर चित्रण हुआ है, कदाचित अन्यत्र दुर्लभ

है। इसमें बाल–मनोविज्ञान के प्रमुख तत्वों 'उत्सुकता, स्पर्धा, ईर्ष्या, प्रेम, द्वन्द्व, आत्म–प्रदर्शन, अनुकरण आदि का हृदय–स्पर्शी चित्रण होने के साथ ही भावात्मक गुणों का प्रवाह हुआ है।'[4]

जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में कथानक का या घटनाओं का विशेष महत्त्व नहीं होता है। देखा जाये तो उनकी अधिकतर कथाओं में घटनाक्रम है ही नहीं, बल्कि मानव व्यवहार के किसी एक पहलू को लेकर या उसकी कुछ चारित्रिक विशेषताओं को लेकर उन्होंने कहानी रचना की है। प्रस्तुत कहानी 'खेल' में भी यह तथ्य पूर्णतः परिलक्षित होता है। यहाँ कोई घटनाओं का संयोजन न होकर केवल पात्रों के मनोभाव, क्रिया–व्यवहार एवं उनका चरित्र–चित्रण ही प्रमुख है। सुरबाला और मनोहर के व्यवहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, निश्च्छल और पवित्र बालमन की विशेषताओं का उद्‌घाटन और उनके व्यवहार का यथार्थ चित्रण ही 'खेल' में दृष्टिगत होता है।

'खेल' कहानी में मनोहर और सुरी के क्रिया–व्यापार बालकोचित होते हुए भी प्रौढ़ प्रतीत होते हैं। 'खेल' में मनोहर और सुरी दो ही पात्र हैं। जो घटना है, वह इन्हीं दो बालमन के आपसी नोक–झोंक, कलह, मान–मनोबल तक सीमित है। मनोहर द्वारा जान–बूझकर किसी के भाड़ को तोड़ देना किसी भी नटखट बालक की सहज वृत्ति हो सकती है, पर वह भाड़ था सुरी का। उसने जान–बूझकर भाड़ तोड़ा तो अवश्य, परन्तु उसके मन में सुरी के हृदय को कष्ट पहुँचाने की कतई इच्छा न थी। वह तो मात्र चाहता था कि वह उसके प्रति उदासीन न रहे। सुरी तो आरम्भ से ही उससे उदासीन अपना भाड़ बनाने में मग्न थी। सुरी के नाराज होने पर मनोहर की ईमानदार स्वीकारोक्ति द्रष्टव्य है –

"सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती? उसे एक थप्पड़ लगा–वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।"[5]

'व्याज कोप का रूप' दिखाती सुरी उसके कसूर की सजा निर्धारित करती है कि उसे वैसा ही भाड़ बना कर दिया जाए, जैसा कि उसने बनाया था। भाड़ बना और सुरी का 'स्त्रीत्व', जिसे पुरूष मनोहर की ईमानदार स्वीकारोक्ति ने व्यथित किया था, उसे पुनर्निर्मित भाड़ पर लात जमाकर अक्षुण्ण रखा और मनोहर द्वारा क्षमा–याचना करने से लज्जित सुरी ने उस लज्जा के बंधन को काट दिया। सुरी का उक्त क्रिया–व्यवहार उसके संस्कारों में पितृ सत्तात्मकता का प्रभाव मात्र था। वह पितृसत्ता जो नारियों में हीनता बोध जगाती है।

अपनी अद्‌भुत रचना भाड़ को देखकर सुरबाला आलाद से नाच उठी। उसके लिए यह भाड़ सम्पूर्ण ब्रह्मांड की सबसे महत्वपूर्ण सम्पदा और विश्व की सुन्दरतम कृति थी। वह इसे देखकर पुलकित और विस्मित हो रही थी। यदि कोई उससे पूछता कि परमात्मा कहाँ बसते हैं, तो वह बताती कि इस भाड़ के जादू में। वह इस अपूर्व स्थापत्य को अपने उजड्ड बाल सखा मनोहर को दिखाने के लिए दौड़ कर खींच लाने को उद्यत थी। वह सोच रही थी कि मूर्ख लड़का पानी से उलझ रहा है, यहाँ कैसी जबर्दस्त अलौकिक कलाकारी की गई है जिसे वह नहीं देखता है। इस प्रकार सुरबाला का बालमन अपनी अनुपम और अपूर्व रचना को देखकर आनंद मग्न था वह अपने मनोहर को इसके दर्शन कराने को उत्सुक थी। बालमन की सृजनशीलता का सुंदर चित्रण कहानी में दृष्टव्य है :–

"सुरबाला मुँह बाए आँखें स्थिर करके इस भाड़–श्रेष्ठ को देख देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहाँ विराजते हैं, कोई बाला से पूछे, तो वह बताये इस भाड़ के जादू में।"[6]

बालमन अधिक कल्पनाशील होता है। वे कई प्रकार के सपने बुनते रहते हैं। बालिका सुरबाला मिट्टी का

भाड़ बनाकर उस पर कुटिया का निर्माण करती है। उसमें मनोहर के रहने को लेकर मन में कल्पनाएँ करती है, यह उसके मनोभाव से प्रकट होता है। मनोहर को कुटिया में रखने को लेकर वह कई विचार मन.. में लाती है। वह सोचती है मनोहर को गर्म लगेगा तो वह उसे कुटिया में आने से मना कर देंगी। वह मेरे पास आने की जिद करेगा तो उसे धक्का देकर कहूँगी– 'अरे जलेगा। मूर्ख।' यह सुरबाला के बालमन की कल्पनाशीलता है। किन्तु जब रूठी हुई सुरबाला को मनाता हुआ मनोहर भावुक होकर रोने लगा, तब सुरबाला का नारी मन भी व्यथित हो उठा। वह नारी स्वभाव के अनुसार अपने स्वाभिमान को रखती हुई बिना बोले न रह सकी और मनोहर से बोल पड़ी :–

'चुपर हो जी.....!'कह दिया तुमसे,
चुप रहो, 'हम नहीं बोलते।'
हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी? हमारा भाड़ बना के दो!'[7]

जब मनोहर द्वारा सुर्रो अर्थात् सुरबाला का भाड़ तोड़ दिया जाता है तब बाल स्वभाव के कारण सुर्रो रूठ जाती है, लेखक सुर्रो को मनोहर द्वारा यह समझाने का प्रयास करते हैं, कि चाहे मिट्टी का भाड़ हो, या शरीर। यह संसार एक दिन समाप्त होना ही है हमें उससे शिक्षा लेनी चाहिए। यह संसार क्षण भंगुर है। इसमें दुःख क्या और सुख क्या। जो जिससे बनाया गया है वह उसी में लय हो जाता है। इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है। यह संसार जल का बुदबुदा है, फुटकर किसी रोज जल में ही मिल जाएगा।'[8] मनोहर फिर भी सुरबाला को मनाने के लिये खुद भाड़ बनाता है तो सुरबाला उसे तोड़ देती है और दोनों जोर से हँसते हैं। मनोहर द्वारा सुर्रो का व सुर्रो द्वारा मनोहर का भाड़ तोड़ना व अन्त में जोर–जोर से हँसना उनकी बाल सुलभता को दर्शाता है। इस हँसी का साक्षी सूर्य व गंगातट बनता है।

स्पष्ट है कि जैनेन्द्र ने बाल–सुलभ–मन में अंतर्निहित चेष्टाओं के माध्यम से मानव मन के भावों को परत दर परत खोलते हुए कथा साहित्य को मानव–मन से जोड़ने का महान कार्य किया है। इनके पहले तक की कहानियों में प्रेमचंद ने सामाजिक यथार्थ की कहानियां लिखकर समाज को वास्तविकता से परिचित करा रहे थे। जैनेन्द्र जी ने उनसे इतर कथा साहित्य को एक नया मोड़ देकर लोगों को मानवीय भावों के उतार चढ़ाव, अन्तर्द्वन्द्वों, मानसिक गांठों से परिचित कराया।"[9] निश्चित ही यह कथा साहित्य के लिए जैनेन्द्र जी की अनुपम देन है।

निष्कर्ष :–

'खेल' जैनेंद्र की बाल–मनोविज्ञान पर आधारित ऐसी उत्कृष्ट कहानी है जो 'बालमन की चेष्टाओं, भावनाओं, सहज क्रीड़ाओं, प्रभावोत्पादक क्रियाओं एवं मनो–अभिव्यक्ति का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती है। इसका कथानक, पात्र चरित्र–चित्रण एवं संवाद मनोवैज्ञानिकता का आधार लिये हुये है, जो सुरबाला और मनोहर के माध्यम से बालमन की नाटकीयता का रोचक मर्मस्पर्शी चरित्रोद्घाटन करती है। इस कहानी में जैनेंद्र ने सुरबाला और मनोहर के माध्यम से यह प्रकट करना चाहा है कि यह जीवन क्षणिक है, जिसमें सबको उसके भाग्य की ही वस्तु मिलती है। जो जन्म लेता है उसे समाप्त भी होना पड़ता है। अतः हमें 'भाग्य के नियम' को मानना चाहिए तथा प्रत्येक परिस्थिति में नाश होने के बाद भी ऐसे ही कहकहे लगाकर प्रसन्नचित रहना चाहिए जैसे सुरबाला द्वारा मनोहर के भाड़ को तोड़ दिए जाने पर भी दोनों उत्फुल्लता से ठहाके लगाके हँसते हैं। जैनेंद्र

ने कहानी में कथावस्तु के घटनाक्रम को जिस प्रकार रोचक और कलात्मक अभिव्यक्ति से नाटकीय परिवेश में चित्रित किया है, कहना न होगा कि जैनेंद्र कुमार बाल–मनोविज्ञान के वास्तविक कुशल चितेरे थे।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. आर. जगमाल –जैनेंद्र के कथा साहित्य में व्यक्त मनोवैज्ञानिकता, गाजियाबाद, साहित्य संस्थान, 2019, भूमिका पृष्ठ 11
2. डॉ. राजेंद्र मिश्र –समकालीन विचारधाराएं और साहित्य, पृष्ठ 95
3. जैनेंद्र कुमार–जैनेंद्र की कहानियाँ भाग 2, नई दिल्ली, पूर्वोदय प्रकाशन, द्वितीय प्रकाशन 1959, पृष्ठ 67
4. संपादक मंडल–कथा धारा द्वितीय, अजमेर, राजस्थान पाठ्य पुस्तक मंडल, 2018, पृष्ठ 18
5. वही, पृष्ठ 19
6. वही, पृष्ठ 15
7. श्रीपतराय–गल्फ–संसार–माला, भाग–1, बनारस, सरस्वती प्रकाशन, संस्करण 1953, पृष्ठ 51
8. कलश, कहानी, आभासी पटल, अगस्त अंक, 2011
9. निर्मला जैन– जैनेंद्र रचनावली, खंड–04, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2008, पृ. 239

सम्पर्क / पता

ग्राम / पोस्ट बाँसी, तहसील व उपखण्ड नैनवाँ, जिला बून्दी (राजस्थान)–323802

दूरभाष– 9772557166

Email : suman333rajender@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 39-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नामवर सिंह की वाचिकता पर आरोप-प्रत्यारोप : एक मूल्यांकन

लाभ चन्द्र धाकड़, शोधार्थी,
प्रो. रमेश चन्द मीणा, शोध निर्देशक,
हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बून्दी।

शोध सारांश :-

नामवर सिंह हिंदी आलोचना में वाचिक परंपरा के आचार्य के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। उन्होंने अपने व्याख्यानों एवं साक्षात्कारों में भाषा के वाचिक स्वरूप को अपनाकर ही हिंदी आलोचना को गति एवं शक्ति दी। जिस वाचिकता से नामवर सिंह से बेहद लोकप्रिय एवं शीर्षस्थ आलोचक बने, इस वाचिकता की वजह से वे आलोचकों के निशाने पर भी रहे हैं। आलोचकों ने उन पर अवसरवादी होने, सत्ता के साथ खड़े होने तथा श्रोताओं को फुसलाने जैसे आरोप लगाए हैं, वही उनके समर्थकों ने उनकी बेहतरीन वक्त सत्व कला तथा उनके साहित्यिक अवदान की मुक्त कंठ प्रशंसा की है। इस आलेख में नामवर सिंह की इसी वाचिकता पर लगे आरोप–प्रत्यारोपों का विश्लेषण किया गया है।

शोध विस्तार :-

वाचिक शब्द का सामान्य–सा अर्थ बोलने से है। हिंदी में वाचिक शब्द के अन्य पर्याय खोजने पर मौखिक, जुबानी, वाणीयुक्त इत्यादि मिलते हैं। भाषा के मुख्यतः के दो रूप होते है– वाचिक तथा लिखित। वाचिक स्वीरूप के बीज खोजने पर यह वैदिक काल में भी मिलते है अर्थात् यह परम्पारा बहुत पुरानी है। प्राचीन भारत में श्रुति परंपरा दीर्घकाल तक चलती रही है, वेद उपनिषद, इत्यादि प्रथमतः वाचिक स्वरूप में ही थे, जिन्हें आगे चलकर लिपिबद्ध किया गया। फिर मध्यकाल में संत कबीर ने भाषा का यही वाचिक स्वरूप अपनाया था, उनकी वाणी को सुनकर ही उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया था। कहा जा सकता है कि मध्यकाल में कबीर ने वाचिक परंपरा को समृद्ध किया तो आधुनिक काल में प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने। जिन्होंने अपने व्याख्यानों, साक्षात्कारों के माध्यम से इस परंपरा को दशकों तक आगे बढ़ाया और इसी रूप में हिन्दी आलोचना को समृद्ध किया। यहां उल्लेखनीय है कि नामवर सिंह ने अपने व्याख्यानों में कबीर के साहित्य का पूनर्मूल्यांकन करते हुए अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के बहाने दूसरी परंपरा की खोज भी की।

नामवर सिंह आधुनिक काल में वाचिक परंपरा के पुरोधा आलोचक कहलाए। जहां अन्य आलोचकों ने लिखित रूप में ही अपने विचार साझा किये तो वहीं नामवर सिंह ने अधिक से अधिक बोलकर ही अपनी बात

लोगों तक पहुंचाई। उन्हें भाषा का यही वाचिक स्वरूप अधिक सुविधाजनक लगता रहा है क्योंकि उन्हें अध्यापन जीवन से ही बोलने की आदत बन गई थी और फिर जब सभा–गोष्ठियों में भी लोगों द्वारा उन्हें व्याख्यानों के लिए बुलाया जाने लगा तो यहीं से यह वाचिकता उनके व्यक्तित्व का एक अंग बन गई। यह वाचिकता उनके व्यक्तित्व पर इस कदर छाई कि उन्होंने अपने जीवन के अंतिम चार दशकों में लिखना तो लगभग छोड़ ही दिया था, सिर्फ बोलकर ही वे अपना आलोचकीय धर्म निभाते रहे।

नामवर जी से जब यह सवाल पूछा गया कि आप लिखने की तुलना में बोलना ही अधिक पसंद करते है, इसका क्या वजह रही है? जवाब में उन्होंने बताया कि वे लिखने के लिए लिखने में विश्वास नहीं करते। "चाहे निबन्ध हों या पुस्तक, मुझे उसका प्रकाशन तभी जरूरी लगता रहा है, जबकि वह मौजुदा परिदृश्य में हस्तक्षेप करे, उसके ठहराव को तोड़े और वाद–विवाद–संवाद की प्रक्रिया को आगे बढ़ाए।" साथ ही, उनका यह मानना रहा है कि जिस हिन्दीव क्षेत्र में पुस्त कें पढ़ने वाले कम हो, वहां बोलकर ही साहित्य को पहुंचाया जा सकता है। नामवर सिंह जिस वाचिकता के कारण साहित्य जगत में बेहद प्रसिद्ध रहे और उसी वाचिकता के कारण आलोचकों ने उन पर कई आरोप भी लगाए हैं, तो वहीं उनके प्रशंसकों ने उनकी वाचिकता का सकारात्मक पक्ष भी सामने रखा है।

नामवर सिंह की लिखित पुस्तकों के अलावा उनके व्याख्यानों तथा साक्षात्कारों को आशीष त्रिपाठी ने लिपिबद्ध कर पुस्तककार प्रकाशित किया है। ये पुस्तकें है– आलोचना और विचारधारा, साहित्य की पहचान, साथ–साथ, सम्मुहख तथा संग–सत्संग। इन पुस्तकों में उनकी आलोचना का वाचिक स्वरूप अन्तनर्निहित है। नामवर सिंह के लिखित निबंधों में पूरी गंभीरता और विद्वतापूर्ण शैली के दर्शन होते है परंतु उनके वाचिक में इसका अभाव दिखता है। इसका कारण यह है कि उनको वाह–वाह करने वाली ऑडियंस मिली है और वे ऑडियंस की पसंद–नापसंद का ख्याचल रखते है। इसी कारण अशोक वाजपेयी ने उन पर अवसरवादी होने का आरोप लगाया है। उनके अनुसार नामवर सिंह मंच के माहौल के अनुसार जैसा मौका होता है, वैसा बोल आते हैं। इस तरह से वे आयोजनकर्ताओं और श्रोताओं की तालियां लूटते रहे हैं। "नामवर सिंह में एक अचूक अवसरवादिता है। इस अर्थ में अवसरवादिता है कि उनकी वाचिक परंपरा है, जैसी मंडली हो, वैसे सेटिंग कर देते हैं।" इसके अलावा उनका दूसरा आरोप है कि मंच की आवश्यकता के अनुरूप किसी की प्रशंसा कर देते है और पीठ पीछे आरोप–प्रत्यारोप करते है। ऐसा उन्होंने अज्ञेय और रामविलास शर्मा के साथ भी किया है।

अशोक वाजपेयी आगे कहते है कि– "वे अज्ञेय के विरुद्ध अधिकतर बोलते, कटूक्तियां आदि करते रहे हैं। अज्ञेय की उपस्थिति में, अपने अवसरवादी चरित्र के अनुरूप, उनकी जरूरत से अधिक प्रशंसा करते थे, लेकिन पीठ पीछे और अपने प्रगतिशील मंचों पर उन पर जमकर कटाक्ष और प्रहार।" कुछ ऐसा ही आरोप उन पर रामविलास शर्मा के संदर्भ से भी लगाया गया है, जहां नामवर सिंह उन पर पीठ पीछे आरोप–प्रत्यारोप करते रहे है मगर जब वे मंच पर प्रत्यक्ष उपस्थित हो, वहां उन्होंने उनके आलोचनात्मक योगदान को सराहा भी है और जमकर प्रशंसा भी की है। ये सब वे शायद मंच की जरूरत समझकर करते रहे हों परन्तु आलोचकों की नजर में यह अवसरवादिता है।

नामवर जी से जुड़ा हुआ एक आरोप–प्रत्यारोप युवा लेखन को उनके द्वारा दिए गए प्रोत्साहन को लेकर भी है। नामवर जी के समर्थक प्रियदर्शन का कहना है– "हिंदी में अगर कुछ भी अच्छा लिखा जाता है तो उसे

किसने लिखा है, यह जानने में नामवर सिंह अद्‌भुत उत्साह दिखाते हैं। ...इससे यह पता चलता है कि नामवर सिंह बिल्कुल नए से नए लेखन और विचार को लेकर कितने सचेत हैं और हिंदी में किसी भी लेखक में जरा सी क्षमता देखकर पुलक से भर जाते हैं।" लेकिन ऐसी प्रशंसा को अशोक वाजपेयी दूसरी नजर से देखते है। उनके अनुसार– "युवा लेखकों के प्रोत्साहक होना एक बात है, उनकी अकारण और अक्सर निराधार प्रशंसा करना बिल्कुल दूसरी। नामवर जी युवाओं की प्रशंसा करने में इस समय, अग्रणी वरिष्ठ हो गए हैं। इसका एक कारण तो शायद अपने प्रभाव का क्षेत्र सरंक्षित करना है और दूसरा अवसरवादिता के लिए एक नए युवा अवसर का थोड़ा निर्लज्ज लाभ उठाना।"

नामवर सिंह के बारे में कहा जाता है कि उन्हें किसी भी मंचपर जाने से परहेज नहीं होता था। वे उन मंचों पर भी जाते रहे हैं जो विरोधियों के मंच समझे जाते थे। परंतु वहां पर वे अपने भाषण में कोई वैचारिक विरोध प्रकट नहीं करते, कोई महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करने की बजाय बेहद निरामिष ही बोलकर आते रहे हैं। उन पर आरोप यह भी है कि वे राजनेताओं के साथ भी मंच साझा करते रहे हैं, जो कि साहित्य से जुड़े हुए कई लोगों को रास नहीं आता। जबकि नामवर जी के समर्थकों का मानना है कि उनके द्वारा राजनेताओं के साथ मंच साझा करने या उनके विचार सुनने से भाषा या साहित्य भ्रष्ट नहीं हो जाता, बल्कि इससे साहित्य के प्रसार की संभावना ही अधिक बढ़ती है। राजनीति और साहित्य के बीच खाई तो आज भी है, ये दूरियां कब से बढ़ी, इसको लेकर अंनत विजय की टिप्पणी है कि–"सत्तर के दशक के बाद हिंदी में इस प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा था कि लेखकों को नेताओं के साथ मंच शेयर नहीं करना चाहिए। लेखकों ने नेताओं को हेय दृष्टि से देखना शुरू किया था।" परंतु नामवरजी ने तब से इन दूरियों को कम करने का हमेशा प्रयास किया है। उनके समर्थकों का कहना है कि नामवर जी का सत्ता पक्ष वालों से साथ मंच साझा करने के मूल में साहित्य का हित ही था, वे निजी फायदे के लिए नेताओं से नहीं मिलते रहे है। नामवर जी को बोलने में आनंद आता है और इसके लिए उन्हें मंच चाहिए। वह मंच भले ही किसी का भी हों। भगवान सिंह का कहना है– "बोलने से मिलने वाले आनंद के कारण ही बोलना उन्हें अधिक आकर्षक लगता है। यह आकर्षण क्रमशः बढ़ता ही गया है। हालत यह है कि बोलने का कोई अवसर वह हाथ से जाने नहीं देना चाहते हैं, भले वह विमोचन के बहाने ही क्यों न हो। भले उनका स्वास्थ्य इसकी अनुमति न दे रहा हो।" इससे समझा जा सकता है कि नामवर जी ने वाचिकता को सिर्फ निभाया नहीं है, बल्कि उसे जिया है।

नामवर जी कुछ भी लिखने से पहले घण्टों तक बैठे–बैठे सिर खपाते थे, फिर कुछ भी न सुझ पाने की दशा में सब छोड़कर उठ जाते थे। इसी उहापोह की स्थिति से बचने के लिए उनके पास लेखन से ज्यादा आसान रास्ता वाचिकता का था। वहीं आलोचकों का एक आरोप यह भी है कि नामवर जी ने वाचिकता इसलिए अपनाई क्योंकि इसमें हेर–फेर करना अधिक आसान होता है। निर्मला जैन की टिप्पणी है– "उनकी आलोचना में अक्सर जिस अवसरवाद या अंतर्विरोध की शिकायत की जाती है, उसका कारण भी तो कहीं लेखनी पर वाणी को तरजीह देना नहीं था क्योंकि कहे हुए में हेर फेर करना जितना आसान होता है, वैसा लिखे हुए में नहीं, लिखने का अर्थ है– कमिटमेंट।" यह सवाल नामवर जी से भी कई बार पूछा गया है कि आपने लेखन से ज्यादा तरजीह वाचिक को क्यों दी, इस पर उनका कहना है– "पिछले कई वर्षों से मैं देश–भर में जा जाकर संवाद कर रहा हूं। जब मैं बोलता हूं तो मेरे मुख से केवल मैं नहीं, हमारे समय की बौद्धिक उपस्थिति बोलती है जिसमें

आप सब शामिल है, जो सुनते है, पढ़ते है। वे धन्य है जो अमर होने के लिए लिखते है, पर मैं मर–मर कर बोलना चाहता हूं।"

नामवर जी की प्रभावशाली वाचिक अभिव्यक्ति ने टेलिविजन के कार्यक्रम को बेहद लोकप्रिय बना दिया था। दूरदर्शन पर वर्ष 1998 से 2004 तक 'सुबह–सवेरे' नाम से नामवर जी के साथ एक संवाद कार्यक्रम प्रसारित किया गया, जिसके होस्ट मुकेश कुमार थे। वे बताते है कि साहित्य जगत से जुड़े हुए इस संवाद कार्यक्रम को दर्शकों द्वारा इतना पसंद किया गया कि हर दिन बोरों में भरकर चिट्ठियां आती थी। उनके अनुसार टेलीविजन जगत का साहित्य के प्रति उपेक्षा भरा रवैया होने के बावजूद डेढ़ दशक तक हर शुक्रवार आने वाले इस कार्यक्रम के लोकप्रिय होने की मुख्य वजह नामवर सिंह और उनकी वाचिकता ही थी। मुकेश कुमार कहते हैं कि– "नामवर जी की किसी रचना के बारे में टिप्पणी एक तरह से उसके अच्छे या बुरा होने के बारे में प्रमाणिक कथन माना जाता था, इसलिए स्वाभाविक था कि हर रचनाकार उत्सुकता के साथ यह जानने के लिए कार्यक्रम देखता था कि देखें नामवर जी किसी कृति या लेखक के बारे में क्या कहते हैं। चूंकि नामवर जी के बारे में यह भी विख्यात है कि वे पता नहीं कब, किसके बारे में, क्या बोल जाएं, इसलिए भी जिज्ञासा बनी रहती थी।" कहना न होगा यह जिज्ञासा तो नामवर जी के व्याख्यानों के दौरान भी बनी रहती थी, मगर आलोचकों की शिकायत यह है कि उसमें आगे कुछ होता नहीं था यानी नामवर जी उत्सुकता जगाकर बिना किसी महत्त्वपूर्ण स्थापना के व्याख्यान खत्म कर देते थे। दूसरा आरोप उन पर श्रोताओं को फुसलाने को लेकर भी है। जगदीश चतुर्वेदी कहते हैं कि–"नामवर सिंह के व्याख्यान ऑडियंस को फुसलातें ज्यादा है, ज्ञान कम देते हैं। वे साहित्य के प्रति आस्था पैदा करते हैं, साहित्य का ज्ञान कम देते हैं। यही वजह है कि नामवर सिंह के व्याख्यान पढ़ते हुए साहित्य के प्रति आस्था बनती है, ज्ञान कम मिलता है।"

नामवर जी के व्याख्यान मूलतः लेखकों का मनोबल बढ़ाने के उद्देश्य से दिए गए है। वे अपने व्याख्यान के शुरूआत में भी अपने द्वारा पूर्व अपठित किसी अंश का उल्लेख करते हैं या किसी शेरों–शायरी से इसकी शुरुआत करते हैं, फिर इसके बाद तो उनका पूरा व्याख्यान विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक ढंग से आगे बढ़ता है। नामवर जी के व्याख्यान की शैली इतनी रोचक होती है कि इससे श्रोताओं में उत्सुकता जगती है कि कुछ महत्त्वपूर्ण आने वाला है, परंतु वे अपने अधिकांश व्याख्यानों को बिना निष्कर्ष बताएं, बिना कोई महत्त्वपूर्ण स्थापना के उसे समाप्त कर देते हैं। निष्कर्ष का निर्णय वे श्रोताओं पर छोड़ देते है। इसका कारण यह है कि नामवर जी के लिए आलोचना निरंतर चलने वाली एक बहस है, एक संवाद है जिसमें कोई भी, कहीं से भी उसमें दाखिल होकर उस बहस का हिस्सेदार बन सकता है।

जैसा कि उल्लेखित किया जा चुका है कि उनकी वाचिकता हमेशा सवालों के घेरे में रही है। किसी ने नामवर सिंह में आलोचक के रूप में कुशल रणनीतिकार का रूप देखा है तो किसी ने उनमें प्रोपेगैंडिस्ट का। वे कुशल रणनीतिकार इसलिए है क्योंकि उनकी वक्तव्य कला में साहित्य के साथ सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अनुशासनों को भी सम्बद्ध करने का अद्भुत कौशल है, जिसकी वजह से वे अतीत से, भविष्य से निरंतर बहस करते बेहद प्रासंगिक आलोचक नजर आते हैं। वहीं कुछ आलोचकों को वह प्रोपेगैंडिस्ट इसलिए नजर आते हैं क्योंकि वे अपने वक्तृव्य कौशल से श्रोताओं को फुसलाने के साथ ही, वे समस्त दोषों का ठीकरा

अन्य के सिर फोड़ते रहे हैं और स्वयं को दोषमुक्त रखते हैं। जगदीश्वर चतुर्वेदी कहते है– "नामवर सिंह कम से कम सूचनाएं देकर अभीसिप्त प्रचार प्राप्त करते रहे हैं। उनके अधिकांश व्याख्यान प्रगतिशीलों और जनवादियों के बीच ही हुए हैं, अतः उनकी राय को नियंत्रित करने में नामवर सिंह की बड़ी भूमिका रही है। उल्लेखनीय है प्रौपेगेंडा राय को नियंत्रित करता है। हिंदी साहित्य में नामवर सिंह राय बनाने और नियंत्रित करने का काम करते रहे हैं। इस अर्थ में वे कंप्लीट प्रचारक हैं। राय बनाना, राय नियंत्रित करना, सहमति तैयार करना यही उनका मूल लक्ष्य रहा है। यही काम बुद्धिजीवी से सत्ता करना चाहती है। ...ये सारे काम आलोचना के कम, प्रोपेगेंडा के ज्यादा है।" बात यह है कि जब हम किसी व्यक्ति को एक क्षेत्र में सफल देखते हैं तो उससे कुछ ज्यादा ही अपेक्षा करने लगते हैं। नामवर जी से यह आशा की जाती रही है कि वे साहित्य के लिए कुछ निश्चित प्रतिमान और मजबूत कसौटियां निर्धारित करते क्योंकि वे दशकों तक हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक रहे है। मगर हमें यह समझना चाहिए कि नामवर जी का यह अंदाज था ही नहीं। उनका तो समकालीन समस्याओं से जूझने और जान–बूझकर विवाद पैदा करने में विश्वास रहा है ताकि निरंतर बहस के माध्यम से आलोचना में संवाद परम्परा कायम हो सके।

नामवर जी के वक्तव्य कौशल के बारे में यह तो कहना पड़ेगा कि श्रोताओं को लम्बे समय तक बांधे रखकर उन्हें तन्मय करने की जो कला उनके पास है, वह अन्य किसी के पास नहीं है। नामवर जी की व्याख्यान कला के चार तत्व हैं– मोहित करना, उत्सुकता जगाना, सरलीकरण करना और फुसलाना। इनके सहारे वे दशकों तक अपनी वाणी से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते रहे हैं। उनकी भाषण कला के सकारात्कक पक्ष को रेखांकित करते हुए भगवान सिंह कहते हैं– "नामवर जी को जितनी बातें कहनी हैं, उसका स्पष्ट बोध उन्हें अपनी समय सीमा के साथ बना रहता है और इसलिए कई बार समय अभाव की स्थिति में, कम समय में अपनी बात पूरी करते समय भी, वह उससे अधिक स्पष्टता और विस्तार से अपनी बात रख पाते हैं जितनी उससे चार गुना समय लेने वाले वक्ता भी नहीं रख पाते।"

निष्कर्ष :–

नामवर सिंह की वाचिकता को लेकर आलोचकों के आरोप अपनी जगह सही है। मगर एक वर्ग उनके प्रशंसकों का है जिनके अनुसार नामवर जी की अखिल भारतीय प्रतिष्ठा तथा लोकप्रियता कुछ लोगों को पचती नहीं है, इसलिए वह उनके वाचिक को लेकर कोई न कोई खोट निकालते ही रहे हैं मगर इन आरोपों से भी नामवर जी का कद बढ़ता ही रहा है। वस्तुतः जिस वाचिकता को नामवर सिंह की सबसे बड़ी कमी बताया जाता रहा है, वही उनका अमोघ अस्त्र है। इसी वाक् शक्ति के कारण अध्यापन के दौरान विद्यार्थियों के बीच वे बेहद लोकप्रिय रहे। अपनी इसी बात वाक् शूरता के कारण हिंदी अंचल में घूम–घूम कर व्याख्यानों से वे आलोचना में संवाद की परम्परा बरकरार रख सके। जीवन के अंतिम वर्षों तक भी उनका समकालीनता के साथ संवाद बना रहा, यही कारण है कि नब्बे से अधिक उम्र हो जाने के बाद भी युवा लेखकों और उनके लेखन से सम्बद्ध रहे। यह वाचिकता ही थी जिसने नए लेखकों के लिए भी नामवर जी को कभी पुराना नहीं पड़ने दिया। नामवर जी की वाचिक शैली पर आरोप है और निश्चित तौर पर कई सारे आरोप है, लेकिन यह भी सत्य है कि उनकी वाचिकता ने आलोचना को दशकों तक सक्रिय एवं जीवंत रखा है।

संदर्भ :–

1. साहित्य की पहचान– सम्पा. आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2015, भूमिका, पृष्ठ 27
2. नामवर के विमर्श– सुधीश पचौरी, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1995, पृ. 447
3. हिन्दी के नामवर– सं. गिरीश्वर मिश्र, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 213
4. हिंदी के नामवर– सं. गिरीश्वर मिश्र – कृष्णा कुमार सिंह, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली 7, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 198
5. वही, पृष्ठ 214
6. सुनत नामवर मुस्काना –सम्पा. गिरीश्वर मिश्र, पृष्ठ 187
7. आलोचना की दूसरी परम्परा –कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2012, पृष्ठ 180
8. आजकल अंक– सं. फरहत परवीन, अक्टूबर अंक 2016 पृष्ठ 38
9. आलोचना की दूसरी परम्पंरा–कमला प्रसाद, पृष्ठ 393
10. हिंदी के नामवर जैसा कम्यू निकेटर दूसरा नहीं–सं. गिरीश्वर मिश्र, पृष्ठ 184
11. समीक्षा के सीमांत– जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 296
12. समीक्षा के सीमांत– जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ 295
13. सम्पा. कमला प्रसाद– आलोचना की दूसरी परम्परा, पृष्ठ – 188

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 45-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कला, शिल्प, संस्कृति एवं लोक परंपराओं का विश्लेषण : वैशाली, बिहार के सन्दर्भ में

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह

परियोजना समन्वयक, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

परिचय :–

वैशाली का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व अत्यधिक है, जो प्राचीन भारत के प्रमुख नगरों में से एक हैं। यह स्थान धार्मिक, सांस्कृतिक और कलात्मक दृष्टिकोण से समृद्ध है। वैशाली को मुख्य रूप से बौद्ध धर्म के संबंध में जाना जाता है, लेकिन यहां की संस्कृति और परंपराएं हिंदू धर्म, जैन धर्म, और अन्य धार्मिक परंपराओं के प्रभाव से भी समृद्ध रही हैं।

1. कला और शिल्प :–

वैशाली में शिल्पकला का विशेष स्थान है, जो प्राचीन भारतीय शिल्पकला की कई विधाओं में परिलक्षित होती है। यह स्थल वास्तुकला और मूर्तिकला की दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ पर विभिन्न प्रकार के शिल्प कार्य देखने को मिलते हैं:

मूर्ति कला : वैशाली में बौद्ध, हिंदू और जैन धर्म से संबंधित मूर्तियों की एक लंबी परंपरा है। यहां के अवशेषों में भगवान् बुद्ध की मूर्तियाँ, अष्टधातु से निर्मित कलाकृतियाँ और अन्य धार्मिक प्रतिमाएँ पाई जाती हैं।

वास्तुकला : वैशाली में महल, स्तूप, बौद्ध विहारों और स्तूपों की वास्तुकला बोधिसत्वों और धार्मिक भवनों की विशिष्ट शैलियों का परिचायक है। यह स्थापत्य शैली भारतीय और बौद्ध धर्म की संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है।

चित्रकला : प्राचीन समय में वैशाली में चित्रकला का भी विकास हुआ था, जिसका प्रमाण यहां पाए गए चित्रित दीवारों से मिलता है।

2. संस्कृति :–

वैशाली की संस्कृति प्राचीन भारतीय सभ्यता का महत्वपूर्ण अंग रही है। यहाँ की संस्कृति में बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिंदू धर्म का संगम देखने को मिलता है। वैशाली की संस्कृति में निम्नलिखित प्रमुख तत्व शामिल हैं :–

धार्मिक संस्कृति : वैशाली में भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था और यहीं पर भगवान् महावीर का भी जन्म हुआ था। यह स्थल जैन धर्म और बौद्ध धर्म के लिए अत्यंत पवित्र है। बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायी यहां

पूजा–अर्चना के लिए आते हैं।

सामाजिक संस्कृति : वैशाली का समाज एकजुट हैं और यहां के लोग धर्म, संस्कृति, और कला के प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं। महिलाओं की स्थिति भी यहां समाज में अत्यधिक सम्मानित हैं, और यह स्थान महिला सहभागिता के लिए प्रसिद्ध हैं।

लोककला और त्योहार : वैशाली में लोककला, लोकगीत और लोकनृत्य की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। यहां के लोग विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाते हैं। वैशाली का प्रमुख त्योहार "माघ मेला" और अन्य बौद्ध एवं हिंदू त्योहार हैं।

3. लोक परंपराएँ :–

वैशाली की लोक परंपराएँ भारतीय संस्कृति की जीवंत धारा हैं। यहां की परंपराएँ समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती हैं :

लोकगीत और लोकनृत्य : वैशाली के लोग अपनी भावनाओं और जीवन की कहानियों को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। यहां के पारंपरिक लोकगीत धार्मिक और सामाजिक जीवन की झलक दिखाते हैं। साथ ही लोकनृत्य, जैसे कि "चौक" और "दहेरिया", यहां के सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा हैं।

हस्तशिल्प : वैशाली में हस्तशिल्प का भी एक लंबा इतिहास रहा है। यहाँ पर कशीदाकारी, वस्त्र निर्माण, मिट्टी के बर्तन और अन्य शिल्पकला का अभ्यास किया जाता है। ये शिल्प पारंपरिक और आधुनिक दोनों रूपों में विकसित होते रहे हैं।

कृषि परंपरा : वैशाली के ग्रामीण क्षेत्र में कृषि प्रधान समाज है। यहां की खेती–बाड़ी और पारंपरिक कृषि विधियाँ भी संस्कृति का अहम हिस्सा हैं। कृषि के साथ–साथ यहां की भूमि पर आधारित परंपराएँ और रीति–रिवाज आज भी जीवित हैं।

7. वैशाली की कला का समकालीन प्रभाव :–

वैशाली की कला ने समय के साथ अपने प्रभाव को न केवल बिहार, बल्कि भारतीय कला के अन्य क्षेत्रों पर भी छोड़ा। विशेष रूप से बौद्ध कला और वास्तुकला का प्रभाव भारत के अन्य बौद्ध स्थलों, जैसे बोधगया और सारनाथ पर देखा जाता है। वैशाली के कला और शिल्प तत्वों को भारत और एशिया के विभिन्न हिस्सों में मान्यता प्राप्त है।

वैशाली की समकालीन लोक कला भी जीवित और विकसित हो रही है, जिसमें पारंपरिक हस्तशिल्प, वस्त्र, और कशीदाकारी जैसे तत्व शामिल हैं। इन शिल्पकला रूपों में सांस्कृतिक समृद्धि का निरंतर पोषण हो रहा है, और यहां के स्थानीय कलाकार वैशाली की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए नयी पद्धतियों के साथ जुड़ रहे हैं।

8. वैशाली में शैक्षिक परंपराएँ :–

वैशाली की शैक्षिक परंपराएँ भी समृद्ध रही हैं। यहाँ बौद्ध धर्म के अनुयायी शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्रों की स्थापना करते थे, जहां धर्म, विज्ञान और कला का अध्ययन किया जाता था। वैशाली में प्राचीन शिक्षा प्रणाली के उदाहरण जैसे मठों और गुरुकुलों की परंपरा भी प्रचलित थी। यहाँ की विद्वत परंपरा ने भारतीय समाज को शिक्षा और संस्कृति के प्रति जागरूक किया।

9. वैशाली में साहित्य और शिक्षा की महत्ता :-

वैशाली को प्राचीन भारतीय शिक्षा और साहित्य का एक केंद्र माना जाता है। यहां की शिक्षा व्यवस्था और साहित्य का योगदान भारतीय ज्ञान परंपरा के इतिहास में महत्वपूर्ण रहा है। वैशाली में शिक्षा का एक समृद्ध परिप्रेक्ष्य था, जिसमें तात्त्विक, धार्मिक और वैज्ञानिक अध्ययन शामिल थे।

शिक्षा का प्रचार-प्रसार : वैशाली में बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण शिक्षा का एक बड़ा केंद्र बना। यहां के बौद्ध मठों और विहारों में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ गणित, खगोलशास्त्र, साहित्य और समाजशास्त्र का अध्ययन भी किया जाता था।

साहित्यिक समृद्धि : वैशाली की साहित्यिक परंपरा का भी योगदान भारत के साहित्यिक इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण था। यहाँ के साहित्य में धार्मिक ग्रंथों, सामाजिक उपदेशों और ऐतिहासिक काव्यकाव्य की समृद्धि देखी जाती है। बौद्ध और जैन साहित्य में वैशाली का उल्लेख विशेष रूप से मिलता है।

10. वैशाली की राजनीतिक भूमिका और वैश्विक प्रभाव :-

वैशाली का इतिहास केवल भारतीय उपमहाद्वीप तक सीमित नहीं था, बल्कि इसकी राजनीतिक भूमिका और वैश्विक प्रभाव भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहे हैं। वैशाली की नीति और शासन प्रणाली ने प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला।

गणराज्य परंपरा का प्रसार : वैशाली ने गणराज्य की व्यवस्था को अपनाकर एक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का आदान–प्रदान किया, जो बाद में अन्य भारतीय राज्यों में भी प्रभावी हुई। यह प्रणाली दुनिया के अन्य हिस्सों में लोकतंत्र के सिद्धांतों का आधार बनी।

विदेशी व्यापार और कूटनीति : वैशाली प्राचीन भारतीय व्यापार मार्गों का महत्वपूर्ण केंद्र हैं। यहां से व्यापार का सिलसिला मध्य एशिया, श्रीलंका और अन्य देशों तक फैला हैं। वैशाली के व्यापारियों और कूटनीतिक संबंधों ने भारत और अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक और वाणिज्यिक संबंधों को मजबूत किया।

प्रभावशाली नेता : वैशाली के प्रमुख नेताओं ने भारतीय राजनीति में अपनी प्रभावी भूमिका निभाई। लिच्छवी गणराज्य के नेता केवल आंतरिक मामलों में ही नहीं, बल्कि बाहरी मामलों में भी प्रभावी थे। यहां की संसदीय प्रणाली और लोकतांत्रिक परंपराएँ भारतीय राजनीति के विकास में सहायक रही हैं।

11. वैशाली का स्थापत्य और वास्तुकला :-

वैशाली का स्थापत्य और वास्तुकला प्राचीन भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं का अभिन्न हिस्सा था। यहां के स्थापत्य डिजाइन में धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक तत्वों का अद्वितीय संयोजन देखा जाता है। प्राचीन स्थापत्य कला, विशेष रूप से बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से, आज भी वैशाली के विभिन्न स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है।

बौद्ध वास्तुकला : वैशाली में बौद्ध धर्म के प्रभाव से संबंधित कई महत्वपूर्ण स्थापत्य तत्व देखे जाते हैं, जैसे कि स्तूप, विहार और मठ। इन इमारतों के निर्माण में विशेष ध्यान दीवारों की सजावट, संरचनाओं की स्थिरता और भव्यता पर दिया जाता हैं। स्तूपों का आकार और उनका स्थान भी धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण होता हैं। इन स्तूपों और मठों में बुद्ध के जीवन से जुड़ी घटनाओं का चित्रण भी किया गया था, जो धार्मिक शिक्षा और श्रद्धा का एक प्रमुख स्रोत हैं।

जैन और हिंदू वास्तुकला : जैन धर्म और हिंदू धर्म के मंदिरों में स्थापत्य कला की परंपराएँ भी प्राचीन थीं। यहां के जैन मंदिरों में शुद्ध और सरल डिजाइन का पालन किया जाता था, जबकि हिंदू मंदिरों में वास्तुकला की जटिलता और भव्यता दिखाई देती थी। इन मंदिरों में देवी–देवताओं की मूर्तियाँ, पेंटिंग्स और भव्य गेटवे ने स्थापत्य कला को नया आयाम दिया।

स्मारक और अभिलेख : वैशाली में प्राचीन भारतीय सम्राटों और शासकों द्वारा बनाए गए स्मारक और अभिलेख भी स्थापत्य कला का एक हिस्सा थे। इन स्मारकों पर उत्कीर्ण लेख, शिलालेख और चित्रित चित्रण उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति को दर्शाते हैं।

12. वैशाली में सांस्कृतिक आयोजनों और उत्सवों की परंपरा :–

वैशाली में सांस्कृतिक आयोजनों और उत्सवों का विशेष महत्व रहा है। यहाँ के धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराएँ अब भी जीवित हैं, और यह स्थान सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करने का महत्वपूर्ण स्थल बन गया है।

धार्मिक उत्सव : वैशाली में बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिंदू धर्म के प्रमुख त्योहारों का आयोजन बड़े धूमधाम से किया जाता है। महावीर जयंती और बुद्ध जयंती जैसे प्रमुख जैन और बौद्ध धार्मिक उत्सवों का आयोजन वैशाली में धूमधाम से होता है। इन अवसरों पर श्रद्धालु स्थानीय मंदिरों और तीर्थ स्थलों पर पूजा अर्चना करते हैं और समाज में एकता और भाईचारे का संदेश फैलाते हैं।

लोक उत्सव : वैशाली में लोक उत्सवों और मेलों का आयोजन भी परंपरा का हिस्सा रहा है। इन मेलों में विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियाँ जैसे नृत्य, संगीत, लोककला प्रदर्शन और पारंपरिक खेल होते हैं। ये आयोजन ग्रामीण समाज को एकजुट करने का कार्य करते हैं और स्थानीय संस्कृति की समृद्धि को दर्शाते हैं।

संगीत और नृत्य : वैशाली के सांस्कृतिक आयोजनों में संगीत और नृत्य का विशेष स्थान है। यहां के लोक नृत्य और संगीत शैलियाँ भारतीय कला के अमूल्य खजाने का हिस्सा हैं। विशेष रूप से, वैशाली में प्राचीन भारतीय संगीत और नृत्य परंपराओं की गहरी जड़ें हैं, जो आज भी शास्त्रीय और लोक संगीत के रूप में जीवित हैं।

13.. वैशाली के ऐतिहासिक स्थल और पर्यटन :–

वैशाली के ऐतिहासिक स्थल और धार्मिक केंद्र आज पर्यटन का प्रमुख आकर्षण बने हुए हैं। वैशाली में स्थित प्राचीन मंदिर, स्तूप, मठ, और ऐतिहासिक स्थल न केवल भारतीय बल्कि विदेशी पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं।

महावीर जन्म स्थल : महावीर के जन्म स्थल, जिसे वीर महावीर जन्मभूमि कहा जाता है, वैशाली का एक प्रमुख धार्मिक और सांस्कृतिक स्थल है। यह स्थल जैन धर्म के अनुयायियों के लिए विशेष महत्व रखता है और यहां प्रतिवर्ष महावीर जयंती के अवसर पर भव्य आयोजन होते हैं।

बुद्ध स्तूप : वैशाली में स्थित बौद्ध स्तूप और बौद्ध मठ भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन स्थानों का दौरा करने से न केवल बौद्ध धर्म के अनुयायी, बल्कि हर व्यक्ति को प्राचीन भारत के सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण को समझने का अवसर मिलता है।

लिच्छवी महल और किले : वैशाली के प्राचीन किले और महल भी इतिहास के महत्वपूर्ण स्थल हैं। यहां

के किलों की संरचनाएँ और वास्तुकला दर्शाती हैं कि कैसे प्राचीन शासकों ने सुरक्षा, प्रशासन और संस्कृति को समान रूप से महत्व दिया।

सांस्कृतिक धरोहर पर्यटन : वैशाली के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व को बढ़ावा देने के लिए सरकार और अन्य संस्थाएँ निरंतर पर्यटन प्रोत्साहन प्रयास कर रही हैं। यहां पर्यटन के साथ–साथ सांस्कृतिक संरक्षण, शैक्षिक और शोध गतिविधियाँ भी बढ़ रही हैं, ताकि वैशाली की प्राचीन धरोहर को संरक्षित किया जा सके।

14. वैशाली की सांस्कृतिक समृद्धि का वैश्विक संदर्भ :–

वैशाली की सांस्कृतिक समृद्धि और धार्मिक विविधता केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि यह प्राचीन समय में दुनिया भर में फैल चुकी थी।

धार्मिक और सांस्कृतिक सम्पर्क : वैशाली का धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव केवल भारत तक ही सीमित नहीं था, बल्कि यह मध्य एशिया, श्रीलंका, दक्षिण–पूर्व एशिया और अन्य स्थानों तक फैला हुआ था। बौद्ध धर्म के प्रचारक वैशाली से निकले थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म को अन्य देशों में फैलाया। इसी तरह, वैशाली के सांस्कृतिक तत्व जैन धर्म के प्रचार में भी महत्वपूर्ण रहे हैं।

वैश्विक सांस्कृतिक संवाद : वैशाली को एक सांस्कृतिक केंद्र के रूप में देखा जाता हैं, जहां विभिन्न देशों के लोग आकर अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। यहाँ के बुद्ध मठों और जैन मंदिरों में आने वाले तीर्थयात्रियों और धार्मिक अनुयायियों ने वैशाली को एक वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का स्थल बना दिया हैं।

15. वैशाली की शिक्षा और ज्ञान परंपरा :–

वैशाली की शिक्षा और ज्ञान परंपरा भारतीय शिक्षा इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह प्राचीन भारत के महान शिक्षा केंद्रों में से एक हैं, जहां धार्मिक और तात्त्विक ज्ञान का अध्ययन किया जाता हैं। वैशाली के शिक्षा केन्द्रों ने भारतीय विचारधारा को सशक्त बनाया और विभिन्न धर्मों और दर्शन के विचारों को समृद्ध किया।

बौद्ध और जैन शिक्षा केंद्र : वैशाली में बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायी धर्म, दर्शन, तात्त्विक और वैज्ञानिक ज्ञान के अध्ययन में लगे हुए हैं। इन धर्मों के धार्मिक स्थल, जैसे बौद्ध मठ और जैन मंदिर, शिक्षा के प्रमुख केंद्र हैं। यहां पर विद्यार्थी धर्मशास्त्र, तात्त्विक शास्त्र, और विज्ञान के विषयों पर शोध करते हैं। बौद्ध भिक्षु वैशाली में विशेष ध्यान देने योग्य अध्ययन करते हैं, जैसे कि धम्मपद, विनय पिटक, और अन्य बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन।

गणित और खगोल शास्त्र : वैशाली में गणित और खगोल शास्त्र का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। प्राचीन भारतीय गणितज्ञ और खगोल शास्त्री यहां के विश्वविद्यालयों में अध्ययन करते थे और इसके परिणाम स्वरूप कई प्रमुख गणितीय और खगोल शास्त्रीय सिद्धांत विकसित हुए। विशेष रूप से, अर्थशास्त्र और विज्ञान के क्षेत्र में वैशाली का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा।

साहित्य और कला : वैशाली में साहित्यिक गतिविधियाँ भी बढ़ीं, जिनमें धार्मिक ग्रंथों के अलावा, काव्य, नाटक, और निबंध जैसे साहित्यिक रूपों का विकास हुआ। यहां के धार्मिक स्थल न केवल पूजा स्थल थे, बल्कि उन्होंने सृजनात्मक साहित्य के विकास में भी योगदान दिया। जैन और बौद्ध साहित्य के महत्वपूर्ण उदाहरण वैशाली से जुड़े हुए हैं, जो उस समय के समाज और संस्कृति की गहरी समझ प्रदान करते हैं।

16. वैशाली के लोक संगीत और नृत्य परंपराएँ :–

वैशाली की लोक कला और सांस्कृतिक परंपराएँ संगीत और नृत्य के रूप में भी समृद्ध हैं। यहां के लोक

संगीत और नृत्य भारतीय सांस्कृतिक धारा के अभिन्न अंग हैं और वे न केवल धार्मिक आयोजनों में, बल्कि सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं में भी प्रचलित हैं।

लोक संगीत : वैशाली के लोक संगीत में विविधता और गहराई हैं। यहाँ के गीतों में भक्ति, प्रेम, और समाज की समस्याओं को व्यक्त किया जाता हैं। इन गीतों में राग और ताल की परंपराएँ प्राचीन भारतीय संगीत के तत्वों से जुड़ी हुई हैं।

नृत्य कला : वैशाली में नृत्य कला का भी बड़ा महत्व हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक अवसरों पर नृत्य के माध्यम से लोक जीवन की गाथाएँ गाई जाती हैं। यहां के लोक न त्य भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, और ये नृत्य कला भारतीय संगीत और कला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

त्योहारों में नृत्य और संगीत : वैशाली के विभिन्न त्योहारों और मेलों में लोक नृत्य और संगीत का आयोजन बड़े धूमधाम से होता हैं। इन आयोजनों ने समाज को एकजुट किया और संस्कृति को जीवित रखा। नृत्य और संगीत के ये रूप धार्मिक विश्वासों, सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक परंपराओं को प्रदर्शित करते हैं।

निष्कर्ष :-

- वैशाली न केवल एक ऐतिहासिक स्थल है, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक विविधता और समृद्धि का भी प्रतीक है। यहां की कला, शिल्प, संस्कृति और लोक परंपराएँ भारतीय समाज की विविधता और धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। वैशाली का अध्ययन भारतीय संस्कृति के गहरे पहलुओं को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- वैशाली न केवल एक ऐतिहासिक स्थल है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, धर्म, और कला का संगम स्थल भी है। यहां की शिल्पकला, साहित्य, लोककला, धार्मिक परंपराएँ, और समाजिक प्रथाएँ भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का अनमोल हिस्सा हैं। वैशाली का अध्ययन भारतीय इतिहास और संस्कृति के गहरे पहलुओं को समझने के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह न केवल प्राचीन काल की सामाजिक और धार्मिक स्थिति को उजागर करता है, बल्कि आज भी इस क्षेत्र की संस्कृति और परंपराएँ भारतीय समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
- वैशाली की कला, शिल्प, संस्कृति, और लोक परंपराएँ भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के गहरे और महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करती हैं। यह नगर न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह भारतीय और वैश्विक संस्कृति में योगदान करने वाला एक अद्वितीय स्थल है। यहां की धार्मिक विविधता, लोककला, शिल्प, और सामाजिक परंपराएँ आज भी जीवित हैं और यह भारतीय संस्कृति की धारा को समृद्ध कर रही हैं। वैशाली के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व का अध्ययन भारतीय समाज की जड़ें और उसकी संस्कृति को समझने के लिए अनिवार्य है।
- वैशाली की कला, शिल्प, संस्कृति, सामाजिक संरचना, और ऐतिहासिक महत्त्व भारतीय सभ्यता के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है। यह स्थल प्राचीन भारत की लोकतांत्रिक परंपराओं, धार्मिक विविधताओं, और सांस्कृतिक समृद्धि का प्रतीक है। वैशाली की ऐतिहासिक यात्रा और इसके सांस्कृतिक योगदान का अध्ययन करने से न केवल प्राचीन भारतीय समाज की गहरी समझ मिलती है, बल्कि यह आज की दुनिया में सांस्कृतिक धरोहर, सहिष्णुता और सामाजिक न्याय के महत्वपूर्ण संदेश भी देता है। वैशाली को केवल एक ऐतिहासिक स्थल के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय समाज और संस्कृति के एक अमूल्य खजाने के रूप में देखा जाना चाहिए।

• वैशाली का इतिहास और संस्कृति भारतीय सभ्यता का एक अभिन्न हिस्सा है। यहां की कला, शिल्प, विज्ञान, धर्म, और सामाजिक परंपराएँ प्राचीन भारत की समृद्ध और विविधतापूर्ण संस्कृति का परिचायक हैं। वैशाली न केवल भारतीय समाज का एक ऐतिहासिक केंद्र था, बल्कि यह एक सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर के रूप में आज भी जीवित है। इसकी शिक्षा, चिकित्सा, स्थापत्य, और पर्यावरणीय परंपराएँ न केवल भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वैश्विक संस्कृति और समाज के लिए भी एक प्रेरणा स्रोत बनी हुई हैं। वैशाली की अद्वितीय सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित और प्रोत्साहित करना आज की पीढ़ी का दायित्व है, ताकि यह समृद्ध इतिहास आने वाली पीढ़ियों को भी प्रेरित करता रहे।

उप समन्वयक – डॉ0 ज्योति रानी जायसवाल, डॉ0 गरिमा, डॉ0 श्रुति राय, डॉ0 कौशल किशोंर, डॉ0 चिरंजीव ठाकुर।

अनुदान :–

यह शोध कार्य भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा वित्तपोषित है और यह अध्ययन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली नामक परियोजना के अंतर्गत किया गया है 'जिसका शीर्षक कला, शिल्प, संस्कृति एवं लोक परंपराओं के संरक्षण व संवर्धन मे पर्यटन/तीर्थाटन की भूमिका (बिहार एवं उत्तर प्रदेश के कुछ चयनित स्थलों का एक तुलनात्मक अध्ययन)
(फाइल नम्बर, ICSSR/RPD /RPR /2023-24 /26)

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. Kumar, R. (2010). *Vaishali: The cradle of Indian democracy*. Delhi University Press.
2. Sharma, P. (2015). *Archaeological explorations at Vaishali: New insights*. Indian Archaeology Journal, 18(2), 45-59.
3. Mishra, S. (2018*). The democratic institutions of Vaishali:* An ancient model of governance. Journal of Ancient History Studies, 24(3), 102-115.
4. Singh, A. (2005). *Vaishali and Buddhism: An ancient center of learning and spirituality*. Oxford University Press.
5. Patel, M. (2020). *The cultural heritage of Vaishali: A historical overview*. Indian Cultural Heritage Foundation.
6. Gupta, N. (2012). *Vaishali in ancient Indian texts: A comprehensive analysis*. Cambridge Press.
7. Yadav, R. (2017). The republican polity of Vaishali: A historical perspective. *South Asian Political History Journal*, 9(4), 134-145.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 52-55

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु : जीवन दर्शन एवं आलोचनात्मक दृष्टि

प्रदीप कुमार यादव

शोध छात्र, हिंदी तथा भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु का जन्म सन् 1889 ई० में, सआदतगंज लखनऊ में हुआ था। इनके पिता मास्टर जियालाल अमरीकन मिशन स्कूल सआदतगंज के हेड मास्टर थे। जिज्ञासु जी के पिता ने उन्हें स्कूली शिक्षा दिलाने के पक्ष में नहीं थे। इसके पीछे उनका तर्क था कि पढ़े–लिखे गरीब बनते हैं जबकि अनपढ़ धनी। उन्होंने उन्हें मुड़िया भाषा पढ़ाई थी, जो उस समय मुनीमगीरी की भाषा थी। जिज्ञासु जी ने मुड़िया भाषा सीखी और कुछ समय तक मुनीमगीरी की।

ग्यारह वर्ष की अल्पायु में माता–पिता का देहान्त हो जाने से जिज्ञासु जी उच्च शिक्षा न प्राप्त कर सके। उन्होंने स्वाध्याय से ही तमाम धर्मशास्त्रों एवं पुराणों का अध्ययन किया। जिज्ञासु जी को हिन्दी, उर्दू, बंगला संस्कृत, अरबी, फारसी और पश्तो भाषा का अच्छा ज्ञान था। कुरान का उर्दू से हिन्दी में उन्होंने में अनुवाद किया था। जिज्ञासु जी आरम्भ में स्थानीय सर्वोपकारिणी पाठशाला में चार वर्षों तक अध्ध्यापन का कार्य किया। इसी बीच जिज्ञासु जी ने 'सदाचार–वर्धिनी–सभा' एवं 'हिन्दू–नवयुवक–समाज' की स्थापना की, जिसने समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जिज्ञासु का निधन सन् 1974 ई0 में हुआ था। इनकी मृत्यु एक दुर्घटना से हुई थी। सर्दी का मौसम था। ठण्ड से बचने के लिए वे चारपाई के नीचे हीटर जला के सोते थे। रात में जब वे गहरी नींद में थे, किसी तरह हीटर से चरपाई में आग पकड़ ली, वे जलने लगे तो घर वाले दौड़कर आये, किसी तरह उन्होंने आग बुझाई और उन्हें रात में ही अस्पताल ले गये। वहाँ वे सिर्फ 10 घण्टे जीवित रहे। 12 जनवरी सन् 1974 ई0 की प्रातः 7 बजे अम्बेडकर आन्दोलन के उस महाप्राण ने प्राण त्याग दिए।

जिज्ञासु जी आदि हिन्दू आन्दोलन की उपज थे, जिसके नेता स्वामी अछूतानंद जी 'हरिहर' थे। स्वामी जी के वैचारिक आन्दोलन ने पूरे हिन्दी क्षेत्र में दलित वर्गों में, खासतौर से अछूत जातियों में नहीं जागृति पैदा कर दी थी। जिज्ञासु जी के विषय में दलित चिंतक कँवल भारती जी लिखते हैं– "हिन्दी साहित्य में समानान्तर साहित्य की जो बुनियाद स्वामी अछूतानंद जी 'हरिहर' ने तीसरे दशक में रखी थी, उस पर भव्य इमारत का निर्माण छठे, सातवें दशकों में चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने ही किया था। भले ही उस समय इसका नाम दलित साहित्य नहीं पड़ा था, पर दलित वर्गों में वह इतना लोकप्रिय था कि वहीं उन्हें अपना साहित्य लगता था। उसी

लोकप्रिय साहित्य ने दलित लेखकों की वह पीढ़ी तैयार की, जिन्होंने आठवें दशक में हिन्दी में मुख्यधारा के साहित्य के रूप में दलित साहित्य को स्थापित किया।"[1]

आरम्भ में जिज्ञासु जी पर आर्य समाज का प्रभाव पड़ा, किन्तु बाद में भदंत बोधानंद जी महास्थविर के सम्पर्क में आकर उनके शिष्य बन गए और बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। जिज्ञासु जी तत्कालीन दौर में चलने वाले बुद्धिवादी आन्दोलन में बराबर दखल देते रहे। जिज्ञासु जी का वैचारिक व्यक्तित्व आदि हिन्दू विचारधारा, बुद्धिवारी आन्दोलन एवं बौद्धधर्म के आलोक में विकसित हुआ था। जिज्ञासु जी की एक उपलब्धि भारतीय मौलिक समाजवाद के क्षेत्र में भी है। यह समाजवाद वह समाजवाद नहीं है जिसका दर्शन कार्लमार्क्स ने दिया था, बल्कि यह वह समतावादी समाजवाद है जिसका दर्शन आजीवक, लोकायत, बुद्ध, सिध्दों, दलित संतो, स्वामी अछूतानंद एवं डॉक्टर अम्बेडकर के दर्शन में मिलता है।

जिज्ञासु जी ने शैव, जैन, हिन्दू एवं बौद्ध दर्शन का गहराई से अध्ययन किया। वे शिव को योग विद्या के प्रर्वतक एवं आदि–योगीश्वर स्वीकार करते हैं। शिव की उपमा वे भगवान गौतम बुद्ध एवं जैन तीर्थकर महावीर स्वामी स्वामी से करते हैं। आदिदेव शिव के रूप–रंग आदि की तुलना बुद्ध से करते हुए जिज्ञासु जी लिखते हैं– "किसी विहार में विराजमान करुणा निधान भगवान बुद्ध के दर्शन कीजिए। शिव के समान ही उनका विशान शरीर कुन्देन्दु धवल है। वह भी निमीलित–लोचन पद्मासन से विराजमान हैं। शिव के जटाजूट के समान ही वे भी उष्णीव–शीर्ष हैं। शिव के तीसरे नेत्र के समान उनके ललाट पर भी दोनों भवों के बीच ऊर्णा है। शिव के मस्तक के अर्धचन्द्र की सौम्य–शीतल द्युति के समान ही उनके मुखारबिन्द से भी दिव्य आभा का विकास हो रहा है।. .....दोनों काम–जयी हैं। दोनों ने योगासन से मार–विजय की है। यदि इस दृष्टि से देखा जाये, तो जान पड़ेगा मानो अज्ञान–ग्रसित कोटि–कोटि दुखित जीवों के दुःख मोचन के लिये करुणावतार, अनंत ज्ञानगार, निर्वाण–मुक्ति के दातार, वीतराग, निष्कलंक चरित्र साक्षात शिव ने ही बुद्ध का अवतार ग्रहण किया है। बुद्ध शिव हैं और शिव बुद्ध हैं, दोनों में कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं देता।"[2]

जिज्ञासु जी की आलोचनात्मक दृष्टि साहित्य एवं समाज के प्रत्येक कोने–कोने तक पहुंची है। उन्होंने वेदों, पुराणों आख्यानों आदि शास्त्रों का गहराई से अध्ययन किया और उसमें व्याप्त बुराइयों कुरीतियों आदि का बहुत ही सटीक आलोचनात्मक विश्लेषण किया है। जिज्ञासु अपने ग्रन्थ 'ईश्वर और उसके गुड्डे' में ईश्वरवादियो यानी आस्तिक एवं अनीश्वरवादियों यानी नास्तिक के ईश्वर सम्बंधी विचारों का बहुत ही सटीक विश्लेषण किया है। इस ग्रन्थ में जिज्ञासु जी की बुद्धिवादी एवं क्रांतिकारी विचारधारा दिखाई पड़ती है। ईश्वरवादियों के ईश्वर सम्बंधी विचारों एवं मान्यताओं के विषय में जिज्ञासु जी लिखतें हैं कि – "ईश्वरवादियों की सबसे बड़ी दलील है 'कर्तृवाद' या 'कार्यकारणवाद' अर्थात् कार्य देखकर कारण का अनुमान। सूर्य, चन्द्र, तारे, आकाश, वायु, अग्नि, जल, मेघ, विद्युत, पृथ्वी, पहाड़, जंगल, नदी, समुद्र, वनस्पति, वृक्ष, फल–फूल, पशु–पक्षी, कीट–उरंग, जलचर, थलचर, नभचर और मनुष्य आदि कार्य देखकर मनुष्य ने यह कल्पना की कि इस अखिल सृष्टि का कोई सृष्टा अवश्य होगा।"[3] अर्थात यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि इस सृष्टि का जो सृष्टा और नियामक है परम दयालु उसने हमारे भोग और सुख के लिये इन सब चीजों को बनाया और हमें इतना सुंदर और कारीगरी से भरा शरीर दिया।

जिज्ञासु जी अनीश्वरवादियों के विषय में अपना मत स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि– "नास्तिकों में

सर्व–प्रथम चार्वाक का नाम लिया जाता है। इस दर्शन का रचयिता देवगुरु बृहस्पति का शिष्य बताया जाता है और इसका मत भगवान् गौतम बुद्ध से पूर्व प्रचलित था। इसका कहना था कि वेद, ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, यज्ञ, श्राद्ध आदि सब धूर्तों की ठग विद्या है। केवल जीवन सत्य है, देह ध्वंस होने पर आत्मा–वात्मा कुछ नहीं रहता। 'त्रयो वेदस्य कर्तारः भंड धूर्त निशाचर' अर्थात् तीनों वेदों के कर्ता भांड, धूर्त या निशाचर हैं। भँडेंती कहते हैं, झूठी तारीफों को। जैसे कि ईश्वर के हजार सिर हैं, हजार हाथ हैं, हजार पैर हैं, और फिर वह बिना पैर के चलता है, बिना हाथ के सब काम करता है, बिना कान के सुनता है, बिना मुँह के बोलता और बिना आँखों के देखता है इत्यादि। यह सारा प्रलाप भँडेंती के सिवा और कुछ नहीं। झूठा प्रलोभन देकर दूसरों का धनापहरण करना धूर्तता है। तुम्हारे पुत्र नहीं है, तो तुम पुत्रेष्टि यज्ञ करो, तुम्हारे पास धन नहीं है, तो तुम धन–कामनार्थ यज्ञ करो। ये सब धूर्तता की बातें हैं और चूंकि समस्त वैदिक कर्मकांड प्रायः रात में ही हुआ करते हैं, जब कि समस्त प्राणियों के सोने का समय होता है, इसीलिये उसे निशाचरों का स्वांग कहा गया। चार्वाक कहता है, यदि यज्ञ में बलि देने से पशु स्वर्ग को जाता है, तो अपने माँ–बाप की बलि देकर उन्हें सीधे स्वर्ग क्यों नहीं भेज दिया करते?"[4]

ईश्वरवादियों एवं अनीश्वरवादियों की दलीलों का अध्ययन करने के बाद जिज्ञासु जी अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से उसका विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि – "असली ईश्वर से हमारा प्रयोजन उस सर्वसम्मत ईश्वर से है जो संसार के समस्त विचारवान और ईश्वरनिष्ठ विद्वानों द्वारा की गई परिभाषा के अनुरूप ठहरता है। इसके विरुद्ध वे ईश्वर जिनकी कल्पना किसी जाति विशेष या सम्प्रदाय विशेष की रुचि के अनुसार उसके विशिष्ट स्वार्थों की सिद्धि के लिये काव्य–कलाकार कवियों द्वारा हुई है, विषय को स्पष्ट करने के लिये उनके साथ 'नकली' या 'कल्पित' विशेषणों का प्रयोग किया गया है।"[5]

जिज्ञासु जी समाजवादी आलोचक थे। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि हर उस जगह पर पड़ी है जहाँ पर सामाजिक बुराईयाँ व्याप्त है। वे सरकार की उन नीतियों का भी पुरजोर विरोध करते हुए दिखाई पड़ते है जिसमें 'बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय' का सिर्फ नाम है। आजादी के बाद जब पिछड़ों के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक कमीशन काका कालेलकर कि अध्यक्षता में गठित किया गया तो पिछड़ी जातियों में एक जोश एवं जिज्ञासा उत्पन्न हुई की सरकार हमारे लिए भी कुछ कर रही है। इस कमीशन ने 31 अगस्त 1955 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें 2399 जातियों को पिछड़ी जातियों में सूचीबद्ध किया गया था और उनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अनेक सिफारिशें की गयी थी। परन्तु गृहमंत्री गोबिन्द वल्लभ पंत ने यह कहकर कमीशन की रिपोर्ट को अनुपयोगी कह दिया की पूरा देश ही पिछड़ा हुआ है।

पिछड़ा वर्ग कमीशन की रिपोर्ट पर गोविन्दवल्लम पंत के स्मृति पत्र एवं उनके द्वारा की गयी कार्यवाही का यह परिणाम हुआ कि पिछड़ा वर्ग में निराशा छा गई एवं जनता में व्याप्त जोश खत्म हो गया। अब जिज्ञासु जी को विश्वास हो गया था कि आजादी के बाद देश में जो लोकशाही कायम हुई है वह वास्तव में ब्राह्मणशाही है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'लोकशाही बनाम ब्राहमण शाही' (1966) में लोकतंत्र पर हावी ब्राहमणवाद का पर्दाफाश किया है वे लिखते है – "लोकशाही का तकाजा था कि देश से वर्णभेद, जातिभेद, सम्प्रदायभेद, भाषाभेद और प्रान्तीयता भेद समाप्त होकर एक–राष्ट्रीयता और एक–जातीयता स्थापित होती और भारतीय राष्ट्र का संवैधानिक आधार समता, स्वतन्त्रता, भ्रातृभाव और विशुद्ध न्यायशीलता होता। किन्तु यहाँ की ब्राह्मणशाही समाज–नीति और धर्म–नीति सामाजिक समतावाद के नितान्त विरुद्ध है, इसीलिये प्रत्येक विचारवान् के मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ

रहा है कि भारत में लोकशाही है या ब्राह्मणशाही?"[6]

चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु न केवल साहित्यक आलोचक थे बल्कि वे एक उच्चकोटि के सामाजिक आलोचक भी थे। वे आदि हिन्दू आंदोलन की उपज थे। गाँधी जी के आह्वान पर उन्होंने आजादी की लड़ाई में सक्रिय योगदान दिया। जोशीले एवं राष्ट्रीय ट्रैक्टों का प्रकाशन एवं प्रचार करने के कारण जिज्ञासु जी कई बार जेल भी गए। वे विनोवा भावे के भूदान एवं सर्वोदय आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे। 'भूदान' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं कि– "भारत में यदि भूमि का कानूनी तरीके से पुनर्वितरण नहीं हुआ, तो इसका सबसे बड़ा रोड़ा विनोवा भावे का भूदान आंदोलन ही है।"[7]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु साहित्यिक आलोचक के साथ–साथ एक उच्च कोटि के सामाजिक आलोचक भी थे। उनकी पैनी नजर समाज के प्रत्येक कोने पर पड़ी। जिज्ञासु जी एक मिशनरी लेखक थे। उनघ्का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे सिर्फ साहित्य तक ही सीमित नहीं थे बल्कि वे एटिविस्ट भी थे। वे प्रकाशक, सम्पादक के साथ–साथ नयी सामाजिक धारा के उद्भावक भी थे। 'हैहय वंश की श्रेष्ठता' जिज्ञासु जी का अंतिम व्याख्यान था, जो उन्होंने 83 साल की अवस्था में 26 दिसम्बर, 1970 ई0 को अखिल भारतीय 'हैहय क्षत्रिय महासभा' के सत्रहवें अधिवेशन राँची में दिया था। इसी व्याख्यान में उन्होंने ने कहा था– 'हमारा देश स्वतन्त्र है। देश की राजनीति में विशिष्ट स्थान प्राप्त करना आपका महान कर्तव्य है, क्योंकि समस्त सामाजिक, आर्थिक और पद–प्रतिष्ठा सम्बन्धी उन्नतियों का मूल राजनैतिक उन्नति में निहित है। इस लोकतन्त्र में राजनैतिक प्रगति का सबसे बड़ा साधन संख्या बल है। यदि 84 वर्गों के चार, पाँच या सात करोड़ भाई सुसंगठित हो जायें, तो देश की राजनीति पर आपका आधिकार हो सकता है।" जिज्ञासु जी ने इसी वैचारिकी के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ग्रन्थावली खण्ड–2 कँवल, द मर्जिन लाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ सं0–24
2. शिव–तत्व–प्रकाश, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0–12
3. चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ग्रन्थावली खण्ड–1, सम्पादक कँवल, द मर्जिन लाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ सं0–350
4. वही, पृष्ठ सं0–352
5. वही, पृष्ठ सं0–363
6. चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ग्रन्थावली खण्ड–4 सम्पादक कँवल, द मर्जिन लाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ सं0–35
7. वही? पृष्ठ सं0–24

E-mail : pradeepkumar2541987@gmail.com

Mobile No. 9565201064

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 56-61

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Innovative learning and its relevance in Education

Dr. Suparna Sharma

Associate Professor, Baba Farid College. Bhatinda.

Abstract :-

The most difficult task of every teacher is to attract students' attention and communicate information in such a way that they remember it long after they have left the classroom. For this to happen, the classroom experience must continue. Innovative ideas should be implemented to improve teaching and learning methods.[1] So, here are some new ideas. Tips to help teachers rethink their teaching approach and make their classrooms more attractive. The use of innovative ideas in educational methods not only improves education but also has the potential to empower and create people. The aim of this research article is to provide any creative learning approach that can be easily implemented to move forward with industry that is close to competitive governance and motivated efforts to achieve the human development goal of the country.[2]

Introduction :-

People work hard to analyze wars and learn new ones. Rather than teaching The e-book for textual content and engaging readers, the reason for training is to add questions and satisfaction to modern new environments.

So organizations need to develop change negotiation methods that provide accurate information. Getting consistent training methods is an important skill. Research has shown that good tactics and the ability to learn strategies can clearly embellish. Some new strategies for teaching can be a combination of different digital media styles, including text content, images, audio and video, a multi-sensory app or presentation. In education, student interaction is the diploma of interest, passion, enthusiasm, hope, and enthusiasm that professionals show when learning or teaching, reaching the level of their motivation to learn and improve in school. Is. When college students share the lessons

1 BPP, "Success in your Research and Analysis Project", (CFA Level 2nd Edition 2000).

2 https://courses.lumenlearning.com/educationalpsychology/chapter/teaching-is-different-from-in-the-past/(visited on 15 March, 2022).

taught, they explore bigger and grasp more. Participating students' drawings are more consistent and take pleasure in completing the Drawings. So make their training enjoyable.

Here are some new ideas as a way to help teachers revamp their training methods and make their training enjoyable. Provided new information to students. The words innovative teaching, learning and classroom come to mind What is Innovative education?

Innovative teaching of coaching creativity and innovation that changes the style and way of training. Everything in the field, educational institutions uses new ideas, strategies, and technological advances to embellish students' knowledge. Current and future coaching requires advanced coaching to help college students reach their full potential. Higher education is a long-term practice. Did the student's high time requirements, for example, or not providing innovative learning materials help the student gain new insights or flow into new hydro channels, renewing or adaptive thinking of new scholars? All teachers need progressive learning to meet the needs of the new academic generation. However, the ability of teachers to optimize teaching is an important factor contributing to modern teaching performance. Some studies suggest that most teachers do not have new training skills![3]

To Change training strategies :

1. Love the work you do

You can give your best pleasure if you like doing what you love. You can discover new things and get inspired when you care. Love your pictures to keep you light and give you
space to discover new ideas.

2. Audio and video equipment

These include audio and visual content for your moments. Add textbooks to model, film strips, film and more image content. Use pictures or information maps for different ideas and mind mapping machines and help your intelligence to succeed and progress. These techniques are no longer very effective in enhancing their hearing abilities, but also help them to have superior thinking. For example, you can look at history discussing construction materials, direct behavior in line discussions, or recordings of public speeches. Kindergarten has many smart apps that you can use to create a high standard slideshow or display.

3. Think carefully

Make time to assemble the classes in your head classes. Those classes are a great way to get. Old juices flowing. If you have a lot of brain working in one sense, you are sure to get several thoughts and will engage everyone in the conversation. those moments

3. Philip Dunn," Interpretation of Accounts", Uk Accountant, available at, https://www.sasaccounts.co.uk/?utm_medium=cpc&utm_source=go ogle_search&_vsrefdom=gs (visited on 11 March, 2022)

will be an excellent forum for students to talk their thoughts without worrying about what is right and wrong. Set specific rules before you start. You can cross easy negotiation or organizational mergers or affiliations to unite the mind

4. Lessons outside the classroom

Some classes are taught at the first level, but they can also be taught outside the classroom door. Prepare lessons for a possible visit with instructions or take students to call outside the classroom door. Children will find it new and interesting and will immediately learn and reflect on what is being taught. Gambling is one of the easiest roles for students of any age center. You need to customize it based on age center. You can use this teaching method in preschool children; Make sure you keep it simple so that they have a limited interest.[4]

5. Role play

Playing a role is a wise way for children to come out of their comfort zones and develop on their own. Mutual skill. This method is especially available when teaching current books, records or events. Role-playing helps the reader to see how academic information can be applied to jobs in his or her daily life.

6. Receive new ideas

Open Mind allows you to master training strategies. Although they are open minded, sometimes in the plural we are skeptical of new ideas. If you are a pastor never do this, try to adopt new ideas, even if they seem normal at first. Eight. Puzzles and Games Puzzles and games are fun to gain knowledge when it comes to training. Children may not realize that they are being distributed through video games in their classroom. Puzzles and games help children think logically and deal with difficult situations. Nine look at the books on building to become an innovative instructor where you need to do some creative research.[5]

New Learning Ways

1. Crossover Learning

Studying in informal settings, such as museums and out-of-school clubs, can link educational content with issues that are important to students in their lives. These links apply to both directions. School and college education can be an enriching experience from everyday life; Informal learning can deepen by adding questions and information from the classroom. These connections stimulate interest and motivation to learn. An effective way for the teacher to raise and discuss a question in the classroom, with responding students exploring that question during a visit to a museum or

4. Peter Tze-Ming Chou, "Advantages and disadvantages of ESL Course books," VOL. XVI (11), The Internet TESL Journal (2010).

museum tour, collecting pictures or notes as evidence, and sharing them available in class to present an individual or group response.

These crossover courses are useful for both strengths and provide students with realistic and engaging learning opportunities. As learning takes place throughout your life, using information in all its many settings, extensive support is available to students in their recording, coordination, memory and sharing of various learning events.[6]

2. Contradictory Reading

Students can improve their understanding of science as well mathematical contradictions in methods such as art scientists and mathematicians. Arguments help students pay attention to different ideas, which can deepen their learning.

It makes technical thinking public, so that everyone can learn. And allows students to refine ideas with others, to learn how scientists work together to find or refute claims. Teachers can spark meaningful discussion in the classroom by encouraging students to ask open-ended questions, re-say words in additional scientific language, and develop further use models to create meanings. When the disciples quarrel through scientific means, they learn to take turns, to listen actively, and 4 Innovating Pedagogy 2015 responds constructively for others. Professional development can help teachers to learn these strategies and overcome challenges, such as how to share their intellectual knowledge with students accordingly.

3. Automatic Reading

Accidental reading is unplanned or unintentional reading. It is possible during such work does not seem to fit the material. Preliminary research on This article discusses how people learn from their daily routine in their workplaces. For most people, mobile devices are integrated in their daily lives, offering many opportunities technically supported event learning. Unlike official education, informal learning is not led by a teacher, either whether it follows a formal curriculum, or its outcome is systematic certificate. However, it may also trigger selfconsciousness can be used to encourage students to rethink what otherwise it could be individual study episodes as part a long-term integrated learning journey.

4. Scientific Learning (remote labs)

Interaction with real scientific tools and processes such as controlling remote laboratory tests or telescopes can develop the ability to question science, to develop mental comprehension, and increased motivation.

6. R. Ryshke, "What schools can do to encourage innovation", available at http://rryshke.wordpress.com/2012/02/26/whatschoolscan-do-to-encourage- innovation/ (visited on 11 March, 2022).

Remote control access to specialized equipment, designed for the first time scientists and university students, now increasing in order teachers and students of the school. Remote lab usually contains tools or equipment, robotic arms that will work it, and the cameras provide test views as they do open. Remote lab programs can reduce participation barriers by providing an easyto-use Web interface, curriculum building materials, and teacher development for teachers. With proper support, access to remote labs can deepen understanding of teachers and students by giving hands investigation and opportunities to look into that complete book reading. Access to remote labs may not be possible and bring such experiences to the school classroom. Because for example, students can use a state-of-theart, remote telescope to look at the night sky during the daytime school science classes.[7]

5. Integrated Reading

Integrated learning involves self-awareness interact with real or imagined world support learning process. When you learn a new game, Executive summary 5 physical movements is an obvious part of learning process. In integrated education, purpose is the concept and the body works together for a physical response as well actions strengthen the learning process. The technology to aid this includes wearable sensors collect personal and environmental data, visual systems tracking movements, as well as mobile devices responding to it actions such as tilting and moving. This approach can be is used to test the features of natural science such as collision, acceleration, and force, or investigation simulated conditions such as molecular structure.

Conclusion :

This study focuses on innovative classroom teaching and learning approaches by providing students with a fresh way to practice their abilities. Encourage teachers to incorporate new methods and technology into the classroom, as well as to employ multimedia to alter the content of the course. It will assist the teacher in more effectively representing the teachings. Students are more motivated to pay attention and remember information when fresh strategies are used. The main goal of teaching is to transfer information or knowledge to the students' minds. The success of teaching is dependent on effective communication. Faculty developers and innovative teachers require each other.

In teacher improvement centers, instructional consultants serve as cheerleaders and reinforces for individuals who bring creativity to the classroom.

---

7. R. Teo, & A. Wong, "Does Problem Based Learning Create A Better Student: A Reflection?", The 2nd Asia Pacific Conference on Problem –Based Learning : Education across Disciplines, December 4-7, Singapore (2000)

References :-

- BPP (2000), Success in your Research and Analysis Project CFA Level 2 Book Edition 2000.
- Chou, P. T. (2010) 'Advantages and disadvantages of ESL Course books'. The Internet TESL Journal Vol. XVI (11).
- Dunn, Philip (2001) Interpretation of Accounts. Uk, Student Accountant January 2001.
- Ryshke, R. (2012) What schools can do to encourage innovation. Extracted fromhttp:// rryshke.wordpress.com/2012/02/26/what-schoolscan-do-toencourage-innovation/.
- Teo, R. & Wong, A. (2000). Does Problem Based Learning Create A Better Student : A Reflection? Paper presented at the 2nd Asia Pacific Conference on Problem –Based Learning: Education across Disciplines, December 4-7, 2000, Singapore.
- Vaughan, T. (1998). Multimedia: Making it Work (4thEd.), Berkeley, CA : Osborne/McGraw-Hill.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 62-66

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिक दृष्टिकोण में सत्ता और नेतृत्व : ऐतिहासिक आधार एवं आधुनिक प्रासंगिकता

प्रभात कुमार ओझा

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, सैदाबाद, प्रयागराज।

सारांश :-

वैदिक साहित्य सत्ता और नेतृत्व के सिद्धांतों का एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो धर्म, नैतिकता, और लोक–कल्याण के आदर्शों पर आधारित है। यह दृष्टिकोण केवल शक्ति और अधिकार का ही प्रतीक नहीं है, बल्कि समाज में न्याय और संतुलन बनाए रखने का एक साधन भी है। इस शोध–पत्र में वैदिक युग में नेतृत्व और सत्ता की अवधारणाओं का विश्लेषण किया गया है और यह दिखाया गया है कि ये सिद्धांत आधुनिक नेतृत्व सिद्धांतों के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। धर्म और राजधर्म के माध्यम से राजा की भूमिका को समाज का सेवक और संरक्षक बताया गया है। आधुनिक संदर्भ में, ये विचार नैतिक नेतृत्व, ट्रांसफॉर्मेशनल लीडरशिप, और सर्वेंट लीडरशिप जैसे सिद्धांतों के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यह अध्ययन ऐतिहासिक वैदिक आदर्शों की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है और यह दर्शाता है कि कैसे प्राचीन विचारधारा समकालीन नेतृत्व और शासन व्यवस्था के लिए प्रेरणा का स्रोत हो सकती है।

मुख्य शब्द :- वैदिक साहित्य, सत्ता, नेतृत्व, धर्म, राजधर्म, नैतिकता, शासन, ट्रांसफॉर्मेशनल लीडरशिप, सर्वेंट लीडरशिप, आधुनिक प्रासंगिकता।

परिचय :-

प्राचीन भारतीय समाज ने सत्ता और नेतृत्व की जो अवधारणा विकसित की, वह केवल राजनीतिक शक्ति पर आधारित नहीं थी, बल्कि नैतिकता और आध्यात्मिकता के गहरे सिद्धांतों से प्रेरित थी। वैदिक साहित्य में यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से झलकता है, जहाँ सत्ता को धर्म और न्याय का पालनकर्ता माना गया है। राजा या शासक को केवल अधिकारों का प्रतिनिधि नहीं, बल्कि एक ऐसा सेवक समझा गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रजा की भलाई करना और समाज में संतुलन बनाए रखना है। यह दृष्टिकोण आधुनिक नेतृत्व सिद्धांतों से कई मायनों में साम्यता रखता है, जो नैतिकता और सामूहिक हित को नेतृत्व का आधार मानते हैं।

1. परिचय :-

प्राचीन भारतीय सभ्यता, विशेष रूप से वैदिक युग (लगभग 1500–500 ईसा पूर्व) के दौरान, अधिकार और नेतृत्व की एक जटिल और सूक्ष्म दृष्टि विकसित हुई जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में सहस्राब्दियों से

राजनीतिक विचार और सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित किया है। वैदिक संग्रह, जिसमें मुख्य रूप से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शामिल हैं, में भजन, अनुष्ठान और दार्शनिक चर्चाएँ शामिल हैं जो नेतृत्व, शासन और शासकों के दायित्वों के मूलभूत लोकाचार में अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। ये ग्रंथ, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद जैसे बाद के कार्यों द्वारा पूरक हैं, एक विश्व दृष्टि को प्रकाशित करते हैं जिसमें नेतृत्व धर्म (धार्मिकता / कर्तव्य) और नेता और समुदाय दोनों के नैतिक–आध्यात्मिक उत्थान पर आधारित है। अपनी प्राचीनता के बावजूद, अधिकार और नेतृत्व के बारे में वैदिक विचार आधुनिक दुनिया में भी गूंजते हैं। नेतृत्व और राजनीति विज्ञान के समकालीन विद्वान नेतृत्व के नैतिक, आचारिक और सेवा–उन्मुख आयामों पर अधिक जोर देते हैं, ऐसे आयाम जो वैदिक साहित्य में मजबूत समानताएं पाते हैं। इस पत्र का उद्देश्य है वेदों में अधिकार और नेतृत्व के वैचारिक आधार का विश्लेषण करना, प्रारंभिक वैदिक समाज के सामाजिक–राजनीतिक संगठन में उनकी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति का पता लगाना, और इन अंतर्दृष्टि की आधुनिक प्रासंगिकता का, विशेष रूप से नैतिक शासन, कॉर्पोरेट नेतृत्व मॉडल और परिवर्तनकारी नेतृत्व रूपरेखा के संबंध में मूल्यांकन करना है।

1.2 अध्ययन का महत्व :–

अधिकार और नेतृत्व पर वैदिक दृष्टिकोणों की खोज एक दीर्घकालिक बौद्धिक विरासत को उजागर करती है जो नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी और कर्तव्य पर जोर देती है, ऐसे मूल्य जो आधुनिक शासन और संगठनात्मक संदर्भों के लिए गहराई से प्रासंगिक हैं। प्राचीन पाठ्य स्रोतों और समकालीन सैद्धांतिक रूप रेखाओं को जोड़कर, यह शोधपत्र क्रॉस–कल्चरल लीडरशिप अध्ययनों के बढ़ते हुए समूह में जुड़ता है। इसके अतिरिक्त, नेतृत्व के वैदिक मॉडलों की गहरी समझ नैतिक दर्शन और सामुदायिक कल्याण में डूबे हुए गैर–पश्चिमी दृष्टिकोण की पेशकश करके नैतिक नेतृत्व पर वैश्विक प्रवचन को समृद्ध करने में मदद कर सकती है।

2. साहित्य समीक्षा :–

अधिकार और नेतृत्व पर वैदिक विचारों की विद्वत्तापूर्ण खोज कई अकादमिक क्षेत्रों से जुड़ी हुई है : इंडोलॉजी, तुलनात्मक दर्शन, धार्मिक अध्ययन, राजनीतिक सिद्धांत और नेतृत्व अध्ययन। यह साहित्य समीक्षा तीन प्रमुख धाराओं में संगठित है : (1) वैदिक शासन मॉडल का पाठ्य अध्ययन, (2) वैदिक और पश्चिमी नेतृत्व प्रतिमानों का तुलनात्मक विश्लेषण, और (3) समकालीन समाज में वैदिक नेतृत्व सिद्धांतों का अनुप्रयोग।

2.1 वैदिक शासन मॉडल का पाठ्य अध्ययन :–

19वीं सदी में मैक्स मूलर जैसे इंडोलॉजिस्टों के नेतृत्व में वेदों पर प्रारंभिक शोध मुख्य रूप से सामाजिक–राजनीतिक संरचनाओं के बजाय भाषाई और भाषाविज्ञान संबंधी पहलुओं पर केंद्रित था। हालाँकि, 20वीं सदी में राधाकृष्णन और ए.एल बाशम जैसे बाद के कार्यों ने इस बात की जाँच करके क्षितिज का विस्तार किया कि वैदिक ग्रंथ किस तरह राजत्व और सार्वजनिक जीवन के लिए नैतिक और अनुष्ठानिक ढाँचा प्रदान करते हैं। राधाकृष्णन ने अपने अनुवादों और टिप्पणियों में व्यक्तियों और शासकों दोनों का मार्गदर्शन करने वाले नैतिक सिद्धांत के रूप में धर्म की धारणा पर जोर दिया। इस बीच, बाशम ने वैदिक विचारों के सामाजिक–ऐतिहासिक निहितार्थों की खोज की, जिसमें रक्षक और अनुष्ठान संरक्षक के रूप में राजा (राजा) की अवधारणा शामिल थी, जिसकी वैधता धार्मिकता और लोगों के कल्याण से निकटता से जुड़ी हुई थी।

2.2 वैदिक और पाश्चात्य नेतृत्व प्रतिमानों का तुलनात्मक विश्लेषण :-

तुलनात्मक शोध ने शास्त्रीय भारतीय विचार और समकालीन नेतृत्व सिद्धांतों के बीच संरेखण को तेजी से पहचाना है। उदाहरण के लिए, नैतिक कर्तव्य पर वैदिक जोर और सेवक नेतृत्व की अवधारणा के बीच समानताएं खींची गई हैं, जिसे रॉबर्ट के. ग्रीनलीफ ने 20वीं सदी में लोकप्रिय बनाया। बालोधी और वर्मा जैसे विद्वानों ने धर्म को नैतिक नेतृत्व से जोड़ा है, उनका तर्क है कि वैदिक ग्रंथ आधुनिक सिद्धांतों को दर्शाते हैं जो नैतिक जिम्मेदारी और सामुदायिक उत्थान पर जोर देते हैं। इसके अतिरिक्त, राजा–धर्म की धारणा, जो समाज के लिए शासक की सेवा को रेखांकित करती है, परिवर्तनकारी नेतृत्व के पश्चिमी विचारों के साथ प्रतिध्वनित होती है, जिसमें नेता सामूहिक बेहतरी के लिए रोल मॉडल और प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं।

2.3 वैदिक नेतृत्व सिद्धांतों का समकालीन समाज में अनुप्रयोग :-

संगठनात्मक और राजनीतिक सेटिंग्स में वैदिक सिद्धांतों को लागू करने के आधुनिक प्रयासों में भारतीय प्रबंधन विद्वानों के कार्य शामिल हैं, जो नेतृत्व के ढाँचों में संस्कृत ग्रंथों को शामिल करते हैं, जो आत्म–नियमन, अखंडता और हितधारक जुड़ाव की भूमिका पर प्रकाश डालते हैं। अध्ययनों ने संकेत दिया है कि नेतृत्व के लिए एक धार्मिक दृष्टिकोण दीर्घकालिक संगठनात्मक स्वास्थ्य, सामाजिक जिम्मेदारी और हितधारक प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को बढ़ावा दे सकता है। इसके अलावा, समकालीन भारतीय राजनीतिक प्रवचन में, राज–धर्म के संदर्भ समय–समय पर सामने आते हैं, जो सार्वजनिक कार्यालय में नेताओं द्वारा निभाए जाने वाले नैतिक दायित्वों को रेखांकित करते हैं।

संक्षेप में, जबकि शोध के एक महत्वपूर्ण निकाय ने भाषाई, ऐतिहासिक और दार्शनिक कोणों से वैदिक विचारों का पता लगाया है, आधुनिक सैद्धांतिक मॉडल के संदर्भ में अधिकार और नेतृत्व पर वैदिक दृष्टिकोणों का स्पष्ट विश्लेषण अभी भी एक विकासशील क्षेत्र है। यह पेपर एक विस्तृत पाठ्य व्याख्या प्रस्तुत करके और इसे समकालीन नेतृत्व छात्रवृत्ति के साथ जोड़कर उस संवाद में योगदान देता है।

वैदिक नेतृत्व के सिद्धांत प्राचीन भारतीय समाज के राजनीतिक और सामाजिक ढाँचे को समझने का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। इन सिद्धांतों की जड़ें धर्म और ऋत (सार्वभौमिक व्यवस्था) में हैं, जो वैदिक जीवन का आधार हैं। ऋग्वेद और यजुर्वेद जैसे ग्रंथों में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि राजा का दायित्व केवल शासन करना नहीं, बल्कि समाज में नैतिक और सामाजिक संतुलन बनाए रखना है। प्राचीन विद्वानों ने सत्ता को धर्म के अधीन रखा और यह सुनिश्चित किया कि शासक अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे।

भारतीय विद्वानों ने वैदिक दृष्टिकोण को नैतिक नेतृत्व के आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। काणे ने अपने धर्मशास्त्र का इतिहास में विस्तार से यह समझाया है कि कैसे राजधर्म केवल शासक के कर्तव्यों तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें न्याय, दया, और सेवा जैसे नैतिक आदर्श भी शामिल थे। राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन को सत्ता और नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करते हुए यह बताया कि धर्म के बिना सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। पाश्चात्य विद्वानों ने भी वैदिक नेतृत्व के सिद्धांतों को आधुनिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है। ग्रीनलीफ की सर्वेंट लीडरशिप और बर्न्स की ट्रांसफॉर्मेशनल लीडरशिप, वैदिक आदर्शों के साथ सामंजस्य रखती हैं। जहाँ ग्रीनलीफ ने नेतृत्व को सेवा का माध्यम माना, वहीं बर्न्स ने इसे नैतिक प्रेरणा का स्रोत बताया।

इस प्रकार, वैदिक और आधुनिक नेतृत्व सिद्धांतों में कई समानताएँ हैं, जो यह दिखाती हैं कि प्राचीन

भारतीय विचारधारा आज भी प्रासंगिक है।

शोध पद्धति :–

इस शोध में वैदिक ग्रंथों के पाठ–विश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति अपनाई गई है। वैदिक साहित्य के प्रमुख स्रोतों जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद के विशिष्ट सूक्तों का चयन किया गया है, जो सत्ता और नेतृत्व के सिद्धांतों से संबंधित हैं। आधुनिक नेतृत्व सिद्धांतों जैसे सर्वेंट लीडरशिप और ट्रांसफॉर्मेशनल लीडरशिप के साथ इन विचारों की तुलना की गई है। इसके अलावा, ऐतिहासिक संदर्भों का अध्ययन किया गया है, ताकि वैदिक नेतृत्व सिद्धांतों की प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में समझा जा सके।

परिणाम एवं विश्लेषण :–

वैदिक नेतृत्व का आधार :

वैदिक साहित्य में नेतृत्व की अवधारणा धर्म और नैतिकता पर आधारित है। शासक को धर्म का पालनकर्ता और समाज का रक्षक माना गया है। वैदिक काल में धर्म केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक न्याय, सत्य, और मानवता के उच्च आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता था। शासक का कर्तव्य था कि वह अपने निजी हितों से ऊपर उठकर समाज के लिए कार्य करे।

राजधर्म में राजा को लोकपाल माना गया है। यह विचार वैदिक साहित्य में बार–बार प्रकट होता है कि शासक का अधिकार उसके कर्तव्यों और नैतिक आचरण पर निर्भर करता है। ऋग्वेद में ऋत का उल्लेख एक सार्वभौमिक नियम के रूप में किया गया है, जो केवल प्राकृतिक घटनाओं को ही नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक जीवन को भी संचालित करता है। इसी आधार पर, राजा को यह सुनिश्चित करना होता था कि वह समाज में सत्य, न्याय, और शांति स्थापित करे।

नेतृत्व गुण और आधुनिक प्रासंगिकता :

वैदिक साहित्य में शासक के गुणों को विस्तार से वर्णित किया गया है। इनमें सेवा, त्याग, और आत्म–अनुशासन जैसे गुण शामिल हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक नेतृत्व सिद्धांतों, विशेषकर सर्वेंट लीडरशिप और ट्रांसफॉर्मेशनल लीडरशिप, के साथ गहराई से मेल खाता है।

सर्वेंट लीडरशिप का मूल विचार यह है कि नेता को अपने अनुयायियों की सेवा करनी चाहिए। वैदिक शासक का दायित्व भी यही था कि वह समाज की सेवा करे और अपने कार्यों से लोक–कल्याण सुनिश्चित करे। ट्रांसफॉर्मेशनल लीडरशिप, जिसमें नेता अपने अनुयायियों को प्रेरित करता है और उन्हें उच्चतर नैतिक उद्देश्यों की ओर ले जाता है, वैदिक राजधर्म के सिद्धांतों से मेल खाती है।

आधुनिक संदर्भ में, वैदिक नेतृत्व सिद्धांत संगठनात्मक और राजनीतिक नेतृत्व के लिए प्रेरणा का स्रोत हो सकते हैं। ये सिद्धांत नेताओं को सेवा, त्याग, और नैतिकता के साथ नेतृत्व करने की दिशा में प्रेरित कर सकते हैं।

निष्कर्ष और सुझाव :–

वैदिक दृष्टिकोण में सत्ता और नेतृत्व एक नैतिक और धर्म–आधारित प्रणाली है, जो समाज में संतुलन और न्याय सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। यह दृष्टिकोण आधुनिक समय में भी प्रासंगिक है, जब नैतिक नेतृत्व और सेवा–प्रधान दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस की जा रही है। वैदिक सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत नेतृत्व

के लिए उपयोगी हैं, बल्कि वे संगठनों और सरकारों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

सुझाव :–

1. **शैक्षणिक पाठ्यक्रम में समावेश :** वैदिक नेतृत्व सिद्धांतों को प्रबंधन और राजनीति विज्ञान के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए।
2. **नेतृत्व विकास कार्यक्रम :** वैदिक दृष्टिकोण के आधार पर नेतृत्व विकास कार्यक्रम शुरू किए जा सकते हैं, जो नैतिकता और सेवा–प्रधान नेतृत्व को बढ़ावा दें।
3. **समकालीन नेतृत्व मॉडल :** आधुनिक नेतृत्व मॉडल में वैदिक सिद्धांतों का समावेश किया जा सकता है, ताकि नेतृत्व अधिक नैतिक और जिम्मेदार हो सके।
4. **वैश्विक संवाद :** वैदिक नेतृत्व सिद्धांतों को वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए, ताकि अन्य समाज भी इनसे प्रेरणा ले सकें।

संदर्भ सूची :–

1. अर्थशास्त्र, कौटिल्य – (चाणक्य) प्राचीन भारतीय शासन कला और राजनीतिक विचार. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1956।
2. महाभारत, वेदव्यास – शांति पर्व और राजधर्म. वाराणसी : गीता प्रेस, 2001।
3. भगवद्गीता, कृष्ण – धर्म और नेतृत्व के सिद्धांत. गोरखपुर : गीता प्रेस, 2015।
4. ऋग्वेद, संपादक : मैक्स मूलर – वैदिक समाज और सत्ता का आधार. ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1890।
5. यजुर्वेद, टीकाकार : सायणाचार्य – वैदिक सत्ता और धर्म. वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज, 1942।
6. गांधी, महात्मा – सत्याग्रह और स्वराज. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन, 1928।
7. नेहरू, जवाहरलाल – भारत की खोज (डिस्कवरी ऑफ इंडिया). नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1946।
8. राधाकृष्णन, एस. – भारतीय दर्शन और राजनीतिक विचार. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1953।
9. अरस्तू (Aristotle) – राजनीति (Politics). लंदन : पेंगुइन क्लासिक्स, 1981।
10. प्लेटो (Plato) – रिपब्लिक. ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003।
11. हॉब्स, थॉमस – लेविथान (Leviathan). लंदन : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1651।
12. मैकियावेली, निकोलो – द प्रिंस. न्यूयॉर्क : पेंगुइन क्लासिक्स, 1961।
13. लॉक, जॉन – टू ट्रिटीज ऑफ गवर्नमेंट. लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1689।
14. रॉबर्ट ग्रीनलीफ – सर्वेंट लीडरशिप : ए जर्नी इनटू द नेचर ऑफ पावर एंड ग्रेटनेस. न्यूयॉर्क :पॉलिस्ट प्रेस, 1977।
15. जे. एम. बनर्स – लीडरशिप. हार्पर एंड रो, न्यूयॉर्क, 1978।
16. अंबेडकर, बी. आर. – संविधान निर्माण और सामाजिक न्याय. दिल्ली : प्रकाशन विभाग, 1949।
17. लोहिया, राममनोहर – भारतीय राजनीति की दिशा. वाराणसी : समाजवादी विचारधारा प्रकाशन, 1967।
18. बाशम, ए. एल. – द वंडर दैट वाज इंडिया. लंदन : सिडग्विक एंड जैक्सन, 1954।
19. गुप्ता, एस. पी. – भारतीय शासन प्रणाली और लोकतंत्र. दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट, 1985।
20. बाली, वी. एस. – राजनीतिक नेतृत्व और प्रशासन. लखनऊ : साहित्य भवन, 1995

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 67-71

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. नरेश सिहाग के बाल काव्य में प्रकृति के विविध रूप

डॉ. लता एस. पाटिल

सहायक प्राध्यापक, राजीव गांधी बी. एड. कॉलेज, धारवाड़, कर्नाटक।

डॉ. नरेश सिहाग का जन्म 1 अगस्त 1978 को हरियाणा प्रांत के छोटे से गांव बोहल जिला भिवानी के एक समृद्धशाली किसान चौधरी गिरधारीलाल सिहाग के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामकला सिहाग एडवोकेट के जेष्ठ पुत्र के रूप में हुआ। आपको लिखने–पढ़ने का शौक बचपन से ही रहा है, जब आप कक्षा 10 में पढ़ते थे तभी से आपकी बाल कविताएं, पहेली, चुटकले, लेख आदि दैनिक ट्रिब्यून, हंसती दुनिया, शांतिधर्मी, मधुरलोक, टंकारा समाचार, परोपकारी आदि में प्रकाशित होने लगे थे। आपके एक आलेख का पंजाबी अनुवाद टोरंटो से प्रकाशित पंजाबी पत्रिका में हुआ है। आपकी बाल काव्य पुस्तक, तितली का उर्दू अनुवाद जम्मू एवं कश्मीर के पांचवी तक के स्कूलों में पढ़ाया जाता है। आपकी एक पुस्तक 'साहित्य एवं अनुवाद प्रक्रिया' सम्पूर्ण भारत के केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालयों की शास्त्री एवं आचार्य कक्षाओं में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढाई जाती है। आप एक उच्च शिक्षा प्राप्त वकील, साहित्यकार, सम्पादक है। आपने समाजशास्त्र, हिन्दी, लोक प्रशासन, पत्रकारिता, शिक्षा में एम.ए, एम. लिव, एम.फिल समाजशास्त्र एवं हिन्दी विषय, पी.एच–डी. हिन्दी तथा डी.लिट् (मानद नेपाल) डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), एल.एल.बी. ऑनर्स के साथ–साथ विभिन्न विषयों में प्रमाण पत्र, डिप्लोमा कोर्स उत्तीर्ण किए हुए हैं।

आप बोहल शोध मंजूषा, गिना शोध संगम, शोध समालोचन के सम्पादक, प्रधान सम्पादक तथा शांतिधर्मी मासिक के कानूनी सलाहाकार हैं। आप कानून की गहरी जानकारी रखते हैं। आप हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड भिवानी, भारतीय जीवन बीमा निगम के साथ–साथ अनेक संस्थाओं के कानूनी सलाहाकार रह चुके हैं। वकालत के माध्यम से आपने अनेक लोगों को इंसाफ दिलाया है।

आपकी लेखनी से 22 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपके लेखक, कविता, गजल कैनेडा, नेपाल, अमेरिका आदि से प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी कविता, लघुकथा, बोधकथा बालकाव्य, गजल, लघुकथा, बोधकथा संग्रहों पर देश अनेक विद्यार्थी, शोधार्थी, अध्यापक शोध आलेख लिखकर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित करना चुके हैं।

डॉ. नरेश सिहाग की बाल कविताएं बच्चों के मन पर प्रकृति के प्रति प्रेम, संवेदनशीलता और जिज्ञासा जगाने का अद्भूत माध्यम है। उनकी कविताएं सरल, सजीव और शिक्षाप्रद है, जो प्रकृति के विविध रूपों और

अनुभवों को उजागर करत हैं। आपकी नदी की कहानी, जंगल के रंग, घनघोर घटाएं, गर्मी आई, आई सर्दी, चिड़िया रानी, जंगल का खेल, पेड़ों की छांव, सुबह का संदेश और सागर का गीत जैसी कविताएं आपके काव्य कौशल का उत्कृष्ट प्रमाण है।

प्रकृति का मानवीकरण :-

आपकी कविता नदी की कहानी में नदी को एक जीवंत पात्र के रूप में चित्रित किया गया है :-

''पर्वत की गोदी से निकल पड़ी,
नदी अपनी राह पे चल पड़ी।
छोटे–छोटे पत्थर चूमती,
कल–कल ध्वनि में गीत सुनाती।।''[1]

जो पर्वत से लेकर सागर तक की अपनी यात्रा में विभिन्न स्थानों और प्राणियों की जीवन देती है।

''किसानों की प्यास बुझाई,
धरती जो उसने हरी बनाई।
बच्चे खेले उसके किनारे,
सुनकर उसके सुर लहरों के प्यारे।।''[2]

आपकी यह कविता न केवल नदी के महत्व को समझाती है, बल्कि जल संरक्षण का सदेश भी देती है।

ऋतु परिवर्तन का वर्णन :-

आपने 'गर्मी आई' और 'आई सर्दी' जैसी कविताओं में ऋतु परिवर्तन का मनोहारी वर्णन है। गर्मी आई में तेज धूप, पसीने और पेड़ की छाँव की शरण का सुन्दर चित्रण अपनी कविता में किया है।

''गर्मी आई, गर्मी आई,
भागे कम्बल और सजाई।
सूरज बना आग का गोला,
उगल रहा शोले का गोला।।''[3]

– – – –

''पसीने से सब है तरबतर,
छांव के नीचे लगे ठिकाने पर।
आम के पेड़ मुस्कुराते है,
मीठे आम सबको ललचाते हैं।।''[4]

– – – –

''गर्मी सिखाती धीरज रखना,
हर मौसम में मस्ती करना।
सूरज की आग से घबराओ मत,
पेड़ की छांव का आनंद भूलाओ मत।''[5]

आपने अपनी कविता आई सर्दी में ठंडी हवाओं, गर्म कपड़ों और धुंध से बच्चों का परिचय करवाया है।

''किट–किट दांत बजाने वाली,
आई सर्दी ठिठुरन भारी।
भाग गई सब पतली चादर,
निकली रजाई गर्म सारी।''[6]

– – – –

''सूरज भी अब शर्माता है,
कोहरे का घूंघट छाता है।
सुबह–सवेरे ठंडी बयार,
करती सबको परेशान बार–बार।।''[7]

प्रकृति के रंगों का जीवंत चित्रण :-

आपकी कविता ''जंगल के रंग'' और ''जंगल का खेल'' में जंगल की सुंदरता और जीवंतता को चित्रित करती है।

''जंगल के रंग निराले हैं,
पीले, लाल, बंसती प्याले हैं।
हरी–भरी साखें लहराती,
जीवन को नित नई राहें दिखाती।।''[8]

– – – –

पेड़ हमें छांया देते,
फलों से जीवन सजाते हैं।
जंगल की महिमा मत भूलो,
इनको बचाने का पाठ पढ़लो।''[9]

पक्षियों का चहचहाना, पेड़ो की हरियाली और जानवरों का खेल बच्चों के लिए मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धक है।

''शेर, लोमड़ी, भालू, बंदर,
बल्ला लेकर आए।
सबने मिलकर खेला क्रिकेट,
जोर–जोर से शोर मचाए।
पहले आई लोमड़ी प्यारी,
छक्का खूब जमाया।
भालू ने फिर धीमी गति से,
सिंगल रन बनाया।।''[10]

आपकी यह कविताएँ जगल के महत्व और उसके संरक्षण की ओर ध्यान आकर्षित कराती है। इसी प्रकार से आपकी कविता घनघोर घटाएं में वर्षा ऋतु की सुंदरता और ठंडक का वर्णन मिलता है। बारिश के समय

धरा का सजीव होना और प्रकृति की नई काया बच्चों के मन में उत्साह भर देती है।

''घिरी घटाएँ काली–काली,
हवा चली है मतवाली।
बादल गरजे बड़े जोर से,
धरती झूमे जोर–शोर से।।''[11]

– – – –

''बूंदे गिरें तो धरती गाए,
हरियाली का चोला पाए।
मिट्टी से महक उठे संसार,
बरसात करे जीवन का श्रृंगार।।''[12]

इसी प्रकार से ''सुबह का संदेश'' कविता सूरज की पहली किरण और नई उर्जा का संदेश देती है।

''भोर हुई सूरज ने लाली,
चारों ओर बिखेरी खुशहाली।
रात गई सब फूल खिल गये,
धरती ने अपनी हँसी बिखेर दी।।''[13]

– – – –

''प्यारी सुबह, नई उमंग लाई,
प्रकृति में हर ओर खुशी छाई।
आओ हम सब इसे निहारे,
नवजीवन के गीत गुनगुनाएँ।''[14]

पक्षिओं और समुद्र का महत्व :–

आपकी कविता ''चिड़िया रानी'' पक्षियों के जीवन और उनके संघर्षो का मानवीय दृष्टिकोण से वर्णन करती है।

''चींचीं करती चिड़िया रानी,
आई मेरे घर के आंगन।
फुदक–फुदक कर इधर–उधर,
ढूंढे दाना हर एक क्षण।।''[15]

– – – –

थोड़ा चावल, थोडा गेहूं,
जो भी पाऊं, उसको दूं।
पंख फड़फड़ाती उड़ जाती,
फिर भी प्रेम से लौट के आती।।''[16]

यह कविता बच्चों को पशु–पक्षियों के प्रति दया और संवेदनशीलता का संदेश देती है।

आपकी कविता हमें ''सागर का गीत'' में समुद्र के महत्व और रहस्यमयी सौंदर्य का परिचय कराती है।

''इस धरती पर बड़े गर्व से,
लहर–लहर सागर लहराता।
नीला आंचल ओढ़े हरदम,
सपना जैसे वह दिखलाता।।''[17]

– – – –

''सागर तुम हो अद्भुत उपहार,
धरती का अमूल्य श्रृंगार।
तुमसे ही तो जीवन चलता,
तुमसे ही ये संसार।।''[18]

आपकी कविता ''पेड़ों की छाँव'' पेड़ों के संरक्षण और उनके जीवनदायी गुणों को उजागर करती है।

''तन–मन को सुख देने वाले,
हरियाले पेड़ लहराते।
झूम–झूम कर कहे हवाओं से,
हम धरती को महकाते।।''[19]

& & & &

''छांव फूल और मीठे फल,
सबको खूब भाते।
ऐसे प्यारे वृक्ष हमेशा,
सबके दिल में बस जाते।।''[20]

यह कविता बच्चों को पेड़ लगाने और उनकी रक्षा करने के लिए प्रेरित करती है।

निष्कर्ष :–

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 72-75

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० नरेश सिहाग की लेखन यात्रा : सर्वभौमिकता एवं प्रासंगिकता

डॉ० रीना अग्रवाल

(भाषा वैज्ञानिक–बी), विभाग पतंजलि हर्बल अनुसंधान हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

साहित्य की शर्तों पर ही 'साहित्य' साहित्य, कहलाता है। वह किसी विचार को वहन करने का माध्यम नहीं होता है। रचनाकार को किसी वैचारिकता के आईने में देखने की कोशिश अनुत्तरित है। यदि रचना में संवेदनाओं का विश्लेषण हो तो वह सर्वोत्तम है। साहित्य और साहित्यकार दोनों ही समाज को रेखांकित करते हैं, अखबारों के अच्छे निबंध और ब्लॉक की साहित्यिक सामग्री से संकलित होते हैं। आधुनिक लेखन में नैतिकता के समावेशन की मांग जोर–जोर से उठ रही है। वर्तमान में स्त्री मुक्ति के लिए आगे बढ़ने का काम जोर–जोर से हो रहा है किंतु व्यवहारिक जीवन में आंदोलन धर्मिता से अधिकतर महिला रचनाकारों की दूरी है किंतु मुख्य धारा में महिला रचनाकार आंदोलन के नाम से दूरी बनाती हैं, जीवन, विचार संवेदना और चारों दिशाओं में लेखकगण आगे हैं।

इसी कड़ी में एडवोकेट डॉ० नरेश सिहाग जिनके नाम से ही एडवोकेट होने का भान हो जाता है, हरियाणवी, राजस्थानी, हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के लेखक एवं कवि होने के साथ–साथ, कानूनी सलाहकार, शिक्षाविद्, प्रोफेसर और समालोचना, साहित्य संचय, गिना शोध संकलन संपादक के रूप में राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हैं। उन्हें उपनाम डॉ० सिहाग के नाम से जाना जाता है। उनका नाम आज किसी परिचय का मोहताज नहीं। उनका लेखन कार्य न केवल हिंदी, अंग्रेजी अपितु विविध भाषाओं में संकलित है। राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर में फैले हुए उनके विपुल रचना संसार में विभिन्न विषयों का समावेशन देखा जा सकता है। धार्मिक प्रवृत्ति के डॉ० नरेश ने अपने कथा–लेखन बोहल की कविताएँ, बोहल की कथाएँ, बोहल की लघुकथाएँ, सिंहल देश की राजकुमारी के अंतर्गत अनेक गीत, बाल–गीत, प्रेम–गीत, लघु कथाएँ और साहसिक बाल–कहानियों का सृजन किया है। हरियाणा–पंजाब की सोंधी महक, परिवेश, जीवन एवं भाषा शैली और संस्कृति के साथ उन्होंने अपने विशिष्ट रूप में अभिव्यक्ति देते हुए हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण लेखक, कथाकार, बाल गीतकार और कवि के रूप में संरेखित किया है। धर्म के प्रति अज्ञानता और धर्म को दूषित करने वाली अपवाहों के विरोधी अथवा सनातन धर्म को पोषित करती उनकी सृजनधर्मिता का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनका अंतिम लक्ष्य नैतिकता का संचार करके प्रभु से साक्षात्कार कराने का भाव निहित है। उनकी पद्धतियाँ अलग–अलग हो सकती हैं, रचना बोहल की लघुकथाओं' में संकलित कहानियों का उद्देश्य एक ही है।

कहानी 'नसीहत' में उसके बहुमुखी उपलब्धि को देखते मां ने प्रतीक को अंकुश मुक्त कर दिया है। गर्मी की छुट्टी चल रही है। एकाएक प्रतीक अस्वस्थ हुआ। उसे महात्मा गांधी मेडिकल कॉलेज और हॉस्पिटल में भर्ती कराया गया। बौखलाहट में वह अनाप–शनाप बकता है। स्वजनों की भीड़ लग गई। उसे मानसिक रोग वार्ड में शिफ्ट कर दिया गया है। विशेषज्ञों का कहना है कि रात–रात भर जगकर मोबाइल पर पबजी, सबवे सर्फर, क्लैश ऑफ क्लेंश आदि गेम खेलने के कारण दिमाग पर प्रतिकूल असर पड़ा है। बेहतर इलाज हेतु सीएमसी मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल, भेलोर, तमिलनाडु के लिए अनुशंसित किया गया है।'' प्रतीक ने मां से मिली सीख को अपने हृदय में धारण किया हुआ है कहानी में बड़प्पन को नजाकत–नफासत से प्रस्तुत किया गया है। उनके व्यक्तित्व का खुलापन कहीं सामान्य जीवन शैली या फिर अनौपचारिक सोच, जिसके चलते वे अपने कथा साहित्य में नैतिकता, मानवता, धर्म के प्रति आस्था और बाल–जीवन को अलग अभिव्यंजना के साथ प्रस्तुत किया है। ऐसे में सुप्रसिद्ध डॉ० सिहाग की साहित्यिक यात्रा का आगाज होता है। विभिन्न कहानी, उपन्यास, निबंध, व्यंग विधाओं और समसामयिक विषयों पर लेखन के माध्यम से उनकी लेखन रथ यात्रा जारी है, ''परमपिता से उम्मीद निष्काम भक्त कहाँ है माँगता धन–दौलत यश–ऐश्वर्य देह से देह को भोगने के लिए कंचन–कानन मृगनयनियाँ परमपिता से वह है माँगता आत्मा की पावनता निश्छलता दयालुता सन्मार्ग दिखाने की चाह उठते–बैठते खाते–पीते उसका सुमिरन प्रदीप्त ज्योतित किरणें जो मिटा सकें अज्ञान अँधेरा सदियों का!'' उन्होंने प्रार्थना, नर–नारी के प्रसंग में भी अनेक देवी–देवताओं, शिव, सूर्य, विष्णु, दुर्गा, राधाकृष्ण, एवं मीरा इत्यादि देवी–देवों की वंदना की है। उनके पात्र, साधारण स्त्री–पुरुष, राधा और कृष्ण की भांति पारस्परिक प्रेम करते प्रतीक होते हैं।

उन्होंने कहानी के नाम का प्रयोग आराध्या के लिए नहीं किया अपितु साधारण नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका लक्ष्य वर्तमान निरूपण को सार्थक करना है। रचना सिंहल द्वीप की राजकुमारी का सृजन नैतिकता, शिक्षा, बाल मनोविज्ञान पर आधारित है, ''सहयोग की भावना, चालाक लोमड़ी की कहानी, चूहे की चतुराई, लालच का अंत, उल्लू का इलाज, लाल मुर्गे की चतुराई, जादू का पिटारा, भूखा मर गया, साहसी राजवुफमार, सराय का मालिक, सच्चा ज्ञान आदि हैं। सिंहल द्वीप की राजवुफमारी में सीख है, ''कहानी से यह सीखने को मिलता है कि सच्चे नेता वे होते हैं जो अपनी शक्ति और धन से नहीं बल्कि अपने साहस, बुद्धिमानी और प्रेम से दूसरों के दिलों को जीतते हैं।'' भाषा ही तीर और तलवार है, हमारी लड़ाई का हथियार है। सरल–सहज भाषा अलग इसलिए है क्योंकि वह कभी विरोध और कभी स्वप्न की भाषा बनती है, भाषा में धार होती है, विचार एक लंबे सामाजिक प्रक्रिया से आते हैं जो उसके चिंतन का परिणाम होते हैं। लेखन में किसी विचार से प्रभावित जीवन आता है। इसलिए तत्काल से आगे या पीछे हो जाता है, अपनी रचना में यदि हम सभी को समझाने में कामयाब हो गए तो हमारी रचना में समय ठहर जाती है, जैसे नैतिकता हमारे दिल में ठहरती है, ''रामजन्म–कथा, होली का दिन, रेशम वेफ बाल, चालाक लोमड़ी, पपीहरा, स्वर्ग का अधिकारी मित्रताम्, अनूठे वस्त्र, बड़ों की सीख, सच्चा ज्ञान, माँ की ममता, माली और बाग–बगीचा, हारिल पक्षी।'' आधुनिक समय में उनका कथा साहित्य लाभप्रद होने के साथ–साथ एक साधारण मध्यम वर्ग के परिवार की सहज, सरल भाव, सभ्य समाज के विकारों की संज्ञा को दर्शाता है। मनमोहक अंदाज में प्रस्तुत विषय पर लेखन करना निश्चय ही उनके लिए चुनौतीपूर्ण रहा है। उन्होंने समाज के बंद दरवाजों पर मानस दस्तक देने का प्रयास किया है जहाँ भारतीय

समाज दोगलीपन का शिकार है वहाँ उनकी कृतियाँ समाज के बंद दरवाजे खोलकर ज्ञान चक्षु खोलने का प्रयास करती दिखती हैं, ''सहयोग की भावना, शेर ने मिंटी की चतुराई की सराहना की और उसे उसका इनाम दिया लेकिन इस बार उसे यह भी समझ में आ गया कि हर जानवर की अपनी ताकत और बुद्धि होती है जो अपनी स्थिति को बदलने में मदद कर सकती है। मिंटी ने अपनी चतुराई से न केवल शेर से अपनी जान बचाई बल्कि उसे यह भी सिखाया कि ताकत और बुद्धिमानी का सही संयोजन ही सफलता का रास्ता है।'' पारंपरिक और धार्मिक पर्यावरण, साहित्यिक वातावरण वंचित वर्ग की चुनौतियों जैसे विभिन्न विषयों के माध्यम से देश के बनते–बिगड़ते सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पहलुओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में साकार किया है।

उनकी रचनात्मक यात्रा प्रस्थान से लेकर अब तक अनवरत रूप गतिमान है, ''आकाश–महल कहानी एक विशाल, सच्चे और दयालु दिल से युक्त है। इस कहानी से यह सीखने को मिलता है कि सच्चा महल बाहरी रूप से नहीं बल्कि हमारे भीतर होता है। जब हम अपने दिल में प्रेम, करुणा और दया का अनुभव करते हैं तो हम आकाश के समान विशाल और शक्तिशाली बन जाते हैं।'' किसी के भी अधिकार के आंदोलन को भौगोलिक सीमाओं को नापना कठिन है। ऐसा अनुभव होता है कि नैतिक संघर्ष का तोल एक ही हो सकता है। पश्चिम में इसे समझा और हम आज इसको समझ पाएँ हैं। स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी यदि हम अपने अस्तित्व का बोध कराने में सफल नहीं है तो उसका कारण भी हम स्वयं हैं, ''गाँव के एक संपन्न व्यक्ति, रामलाल जी ने मोहन की हालत देखी। वे एक अच्छे दिल वाले आदमी थे, जिन्होंने मोहन और उसके परिवार की मदद करने का फैसला किया। रामलाल जी ने मोहन को अपने घर में ठहराया और उसके परिवार के लिए भोजन और कपड़े भी भेजे। उन्होंने मोहन को कुछ धन भी दिया ताकि वह अपना घर फिर से बना सके। मोहन ने दिल से धन्यवाद किया लेकिन रामलाल जी ने कहा, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए। अगर कभी तुमसे किसी को मदद देने की ज़रूरत पड़े तो तुम जरूर मदद करना, यही मेरे लिए सबसे बड़ा उपहार होगा।'' साहित्य और कवि दोनों ही समाज को प्रभावित करते हैं। लेखन जीवन विचार संवेदना यह चारों दिशाओं में विस्तारित हैं। सार्थक बदलाव संभव है।

इस दिशा के उदाहरण उनके लेखन में कदम मिलाते हैं। अपने निजत्व को पाने की खामोशी 'बोहल की विभिन्न कविताओं' में देखी जा सकती है, ''बहुमूल्य है ना जाने कब जीवन की कला, शेष यादें, संवाद आवश्यक है जिज्ञासा, सकारात्मक सोच कर्मों की समस्या, जीवन के अनुभव और जानकारी के अभाव में समर्पण ईमानदारी अभाव क्यों? सुख मिलता है, मनोदशा की स्थिति, अनुभूतियों का एहसास, सच्चाई के साथ अपरिचित, अद्वितीय विश्वास है, चंचलता संस्कार और संस्कृति कर्म प्रधान, पता नहीं क्या–क्या भूलें?, रास्तों की भटकनें, अविनाशी है, वो सहारा मेरा, रुकना मना है, त्याग आवश्यक है, अद्वितीय विश्वास है, चंचलता संस्कार और संस्कृति, रास्तों की भटकनें अविनाशी है, वो सहारा मेरा, रुकना मना है, त्याग आवश्यक है और पशु–पक्षी हमारे मित्र।'' उनकी भाषा में जो नफासत, सोखी, चुलबुलापन, हाजिरजवाबी और संवाद है, छोटे–छोटे वाक्य चुटकुले संवाद हैं। उनमें परस्पर तालमेल स्थापित है, ''घर और पुस्तकालय, मार्ग भटक न जाऊँ, आत्मा और मैं, परम पिता से चाह, मृगनयनियाँ और मृगछाला, घर की छत, पराली और पटाखे, पता नहीं क्यों और भूलना मना है।'' उनकी भाषा सरल–सहज है। उन्होंने भारतीय साहित्य की कई विधाओं पर सर्वोपरि लेखन कार्य किया है, ''कविता मैं और आत्मा, बुरा नहीं मैं, न तुम ये, न वो और न कोई भी, सबमें वही शाश्वत आत्मा चेतन स्वरूप है विराजमान।''

उनका निजत्व स्वयं को परिपूर्णता में जीवन के विविध अनुभवों से समृद्ध है। उनकी कविता दार्शनिक या रहस्यात्मकता न होकर जीवन के विभिन्न अनुभवों से समृद्ध है। वह स्वयं उन कहानियों में और उन रचनाओं में जीते हैं। इसलिए दृश्य घटनाओं से उनकी गहरी सलंग्नता है जो सनातन की ही उपज है, बिना सलंग्नता के आत्मनिर्भरता की कल्पना करना बेमानी होगा। इसलिए आवश्यकता है हमारे आसपास उपलब्ध सभी सत्य को संध्या की दृष्टि से देखा जाए और उसकी पुर्नव्याख्या की जाए। इसके लिए छोटे से छोटे स्तर पर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि कोई साहित्य वाकई में जन–जागरण की भूमिका निभा रहा होता है तो समझा जाएँ अच्छी रचनाएँ लिखी गई हैं। हिंदी के लेखक अक्सर स्वयं को लेखक कहलवाने से कतराते हैं। उनके साहित्य में नैतिकता और स्त्री सरोकार साफ दिखता है अक्सर अलग सोच होती है। सुप्रसिद्ध कथा साहित्यकार डॉ० नरेश सिहाग की रचनाओं में जो गत्यात्मकता निरंतर दिखती है वहाँ विकास की जिस ऊँचाई तक वह पहुँचते हैं उस अनुपात में उनके वक्तव्य में परिवर्तन दिखाई नहीं देता।

अतः डॉ० नरेश सिहाग की साहित्यिक लेखन यात्रा विभिन्न विधाओं के साथ–साथ विभिन्न समसामयिक विषयों पर आज भी जारी है।

मेल आईडी – reena_itc@rediffmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 76-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जीवदया प्राणी कल्याण परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म की महत्ता : सिरोही जिले के विशेष संदर्भ में

सुरेश कुमार

सीनियर रिसर्च फेलो एवं शोधार्थी, इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर।

शोध-सार :-

इस प्रस्तुत शोध–पत्र में जैन धर्मावलम्बियों द्वारा किए गए जन समुदाय में प्राणीयों के प्रति जीवदया के आत्मीय भाव को बताया गया है। जिन शासन में किस प्रकार प्राणीयों की की जा रही निस्वार्थ भाव को जैन मंदिरों के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिपेक्ष्य में सेवा की महत्ता को प्रकट करता है। ये जैन मंदिर सिर्फ पूजा–पाठ, साधना व आराधना के ही स्थल न होकर मंदिर में पौशाला, गौशाला, चिकित्सालय, उपाश्रय, पेढ़ी और रोजगार साधन के साथ कई समाज में प्राणी सेवा के कार्यो में सर्वप्रथम भूमिका का निर्वाह करते है। ऐतिहासिक परिवेश में जैन मंदिर सीमित परिधि में न होकर विशेष आयाम रखते है। जैन धर्म में प्रमुख चौबीस तीर्थंकर हुए है, जिन्होंने अपने जीवन–काल में कई प्राणी उपयोगी कार्यो को स्वयं ने भी किया व अन्य को भी प्रेरित किया। इस प्रेरणा का विस्तार आज भी जैन साधु–मुनि अपने प्रवचनों के माध्यम से देते है। इस प्रकार देखा जाता है, कि जैन धर्म में मानव व पशु सेवा का घनिष्ठ सम्बंध रहा है। इस शोध पत्र के माध्यम से सिरोही जिले के विशेष संदर्भ में जीवदया प्राणीयों के कल्याण का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

संकेताक्षर : जीवदया, जैन, मंदिर, सिरोही, प्राणी, अहिंसा, कल्याण, धार्मिकता महत्ता।

प्रस्तावना :-

इस जगत में किसी भी प्राणी को जीवन जीने की स्वतंत्रता मिली हुयी है, लेकिन समाज में कहीं धर्म और जाति की श्रेणियां बनी हुई हैं, जो उन्हें आपस में अपनी–अपनी संस्कृति को आगे बढ़ाने में मदद करती हैं। भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का विशेष महत्व रहा हैं, जिन्होंने संस्कृति और सभ्यता को जैन मंदिर–तीर्थो के माध्यम से जन मानस तक पहुँचाया हैं। जैन मंदिर केवल संस्कृति और सभ्यता के केंद्र ही नहीं हैं, बल्कि प्राणी जीवदया और कल्याण के कार्यो के लिए भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। प्राणी जीव दया कल्याण का जैन धर्म में विशेष महत्व रहा हैं। जैन तीर्थंकर और साधु–साध्वी अहिंसा धर्म का पालन कठोरता से करते आये हैं, इसलिए अहिंसा परमोच्च को जैन धर्म का मूल सिद्धांत माना जाता है। इस सिद्धांत के मूल्य आधार पर ही

जैन मंदिर न केवल धार्मिक स्थलों के रूप में बल्कि जीव दया और प्राणी कल्याण के केंद्र के रूप में भी कार्य करते हैं। राजस्थान का खूबसूरत एवं रमणीय स्थल सिरोही जिला अपने प्राचीन, ऐतिहासिक और गौरवशाली जैन मंदिरों के लिए विश्व पटल पर प्रसिद्धि रखता है। इन जैन मंदिरों में विशेष रूप से माउंट आबू का देलवाड़ा, पावापुरी, मीरपुर, जीरावल, बामनवाड़ तथा अन्य स्थित जैन मंदिरों के लिए जाना जाता है, जहां प्राणी कल्याण की परंपरा मंदिर निर्माण काल से चली आ रही है।

तीर्थंकर महावीर स्वामी ने जैन धर्म के पंच सिद्धांत में से अपरिग्रह सिद्धांत द्वारा धनिक वर्ग को अपनी अतिरिक्त संपति को जनकल्याण के लिए विसर्जित करने की प्रेरणा देकर सम वितरण सिद्धांत का सूत्रपात किया।[1] आज की अर्थव्यवस्था का विभाजन प्राचीन काल जैसा नहीं था।

– **अहिंसा का सिद्धांत :–** जैन धर्म में प्राणीयों के कल्याण में अहिंसा को सर्वोपरि मानता है, अर्थात् आत्मीय भाव होना आवश्यक है। आत्मीयता का अर्थ है, प्राणीयों के मध्य सहृदयता रखना जैसे किसी भी जीव को मानसिक, शारीरिक या भावनात्मक रूप से हानि न पहुंचाना, क्योंकि हृदयहीन मनुष्य हिंसा की ओर रूख कर लेता है। हृदयहीन मनुष्य में पशुता के भाव जन्म ले लेते है, जो उसे हिंसक प्रवृति की ओर ले जाते है। जैन धर्मी करूणा, दया, पाप–पुण्य अहिंसा से ही प्राणीयों के विकास में अपना योगदान देते आये है। प्राणी–प्राणी के मध्य आत्मीय अनुभव ही उन्हें दूसरों की सहायता करने के लिए प्रेरित करती है। किसी असहाय, दुःखी और जरूरतमंदों की सहायता का भाव प्रकट कराता है। जैनियों का अहिंसा व सेवा कर्म ही महत्वपूर्ण रहा है। जैन वातावरण में पलने वाले बच्चे बचपन से ही ऐसी शिक्षा में ढाला जाता है, कि वो भूलकर भी हिंसा न कर सके और अपने जीवन में दूसरे प्राणीयों की सेवा निःस्वार्थ भाव से कर सके। इस संस्कार का ही महत्व है, जो उन्हें पर सेवा का भाव स्वतः ही पैदा हो जाता है। जैन समुदाय अल्प मात्रा में होने के बावजूद भी प्राणी सेवा में सर्वप्रथम स्थान रखता है। उनका योगदान अन्य सभी समुदायों से निश्चित ही आगे रहा है। जैन अपनी संस्कृति व सभ्यता की परम्परा को आगे बढाने के लिए भव्य, गौरवशाली मंदिरों के निर्माण के साथ ही सर्व जनपयोगी कार्यो में औषधालय–चिकित्सालय, विद्यालय, पुस्तकालय, अनाथालय, छात्रावास, धर्मशालाएं, गौशाला और पशु–पक्षियों के लिए दाने–भोजन की उचित व्यवस्था का प्रबंधन करते है।[2]

ये उनके अहिंसा का ही पाठ है, जो उनके मंदिरों के आस–पास नगर में जीव हत्या की घोर निंदा करते है और उन्हें पूर्णतया प्रतिबंधित करने की ठोस कोशिश करते है। जैन मंदिरों में इस सिद्धांत का पालन करते हुए, पशु–पक्षियों की देखभाल और संरक्षण के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं। आज भी जैन धर्मी व जैन साधु–साध्वियां अहिंसा सिद्धांत के लिए नियमित रूप से प्रवचन देते समय अपने मुख पर कपड़ा बांधते है, ताकि वातावरण में जो सूक्ष्म जीव विचरण कर रहे है, वो भूल से भी हिंसा के शिकार न हो पायें।

– **जीवदया के माध्यम से मोक्ष का मार्ग :–** जैन धर्म में माना जाता है, कि जीवों की सेवा से आत्मा को शुद्ध किया जा सकता है, जो मोक्ष प्राप्ति का साधन है। मंदिरों के साथ–साथ गौशालाएं, पक्षी चिकित्सालय और

जलाशय भी बनाए जाते हैं। पर्यावरण संरक्षण में जैनों का विशेष योगदान रहा है, इन्होंने जगह–जगह पेड़–पौधो को संरक्षित करने का कार्य किया है। जैन साधु–मुनि भी प्राणी जीवदया का उपदेश देते है और स्वयं भी अपने जीवन में इसे धारण करते है। वह नंगे पैर चलते है, ताकि भूल से भी सूक्ष्म जीव हिंसा का शिकार न हो। ये समाज से केवल जीवन रक्षार्थ के लिए भोजन लेते है व लौटाकर देते है, समाज में अपना जीवनदान। जैन धर्मियों द्वारा वैसे तो सम्पूर्ण भारत व राजस्थान में कई प्राणी कल्याणक के कार्य किए है।

समाज के सर्वांगीण विकास के लिए 1970 में वर्द्धमान सेवा समिति का गठन किया गया, जिसमें शिक्षा के लिए जरूरतमंद व मेधावी छात्रों को छात्रवृति प्रदान की जाती है। इसके साथ ये संस्था व्यवसाय व रोजगार के साधन मुहाया करने का कार्य करते है। महिलाओं के लिए स्वालंबन प्रदान करती है।[3] **इसमें सिरोही जिले में जैन मंदिर और उनकी महत्ता :–**

– **पावापुरी जीव मैत्री धाम :–** जैसा की नाम से ही विदित होता है, जीव मैत्री धाम जो जीव कल्याणक के प्रति सबसे बड़ा स्थल है। इस तीर्थ की महिमा यहां आये हुई गौशाला से लगा सकते है, इस गौशाला में विभिन्न किस्म की गायों का संरक्षण नित्य नियमित रूप से किया जाता है। यहां गौ–संरक्षण के लिए मंदिर परिसर में ही पशु चिकित्सालय बनवाया गया है, जो यहां स्थित गायों व आस–पास के अन्य पशुओं की सेवा भाव से चिकित्शल्य सुविधा उपलब्ध कराती है। यहां आने वाले दर्शनाथियों के रूकने के लिए सम्पूर्ण सुविधा युक्त धर्मशालाओं की भी उचित व्यवस्था की हुई है। इन मंदिर परिसर व गौशाला में कार्य करने के लिए व्यवस्थापकों एवं मजदूरों को भी लगाया हुआ है, जिनसे उनको उचित रोजगार का भी सर्जन होता है। ये सभी कार्य कहीं न कहीं जैन धर्म का प्राणी जगत के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक क्रियाओं के कल्याण के लिए काफी सहयोगी बनाता है।[4]

– **श्री महावीर भगवान का मंदिर, मीरपुर :–** यहां पर धर्मशाला, भोजनशाला के साथ बकराशाला भी आयी हुई है। बकराशाला से आशय है, कि जिन बकरों की बली नहीं दे सकते थे, उन्हें अमर कर लिए जाते थे अर्थात् बकरों को बली होने से बचा दिया जाता था। इन बकरो को यहां बकरशाला में लाकर जीवदया यानी बकरों को अभयदान दिए को रखते है।

– **श्री आदिनाथ भगवान का मंदिर, कोलारगढ़ :–** यह मंदिर जीवदया के प्रमुख केंद्रों में से एक है। यह एक किलेनुमा मंदिर है, यहाँ नियमित रूप से पक्षियों और अन्य छोटे जीवों के लिए भोजन और पानी की व्यवस्था की जाती है। यहां धर्मशाला, भोजनशाला, उपाश्रय व गौशाला है।

– **श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, अन्दोर :–** इस मंदिर के पीछे कृत्रिम रूप से पहाड़ी का दृश्य है, जिन पर पेड, पशु–पक्षियों के बैठने के लिए स्थान बनाये गये है। इसके साथ कृत्रिम रूप से पशु–पक्षीयों को बैठाया गया है, जो जीवदया की भावना का चित्रण करता है।[5]

– **जैन मंदिर, सिरोही :–** यह मंदिर प्राणी कल्याण और शिक्षा के प्रसार के लिए जाना जाता है। यहां गरीबों

और जरूरतमंदों के लिए भोजन वितरण और जानवरों के लिए चारा उपलब्ध कराया जाता है। यहां श्री जय विजय ज्ञान भण्डार पुस्कालय है।

- **पिंडवाड़ा और शिवगंज के जैन मंदिर :-** यहाँ प्राचीन जैन मंदिर हैं, जो पर्यावरण संरक्षण और जीवदया के लिए समर्पित हैं। स्थानीय समुदायों को जीवों की देखभाल के लिए प्रेरित किया जाता है। पिंडवाडा में श्री ग्रंथ भण्डार श्री प्रेम सूरीश्वर जी उपाश्रय तथा शिवगंज में श्री पंकुबाई ज्ञान भण्डार स्थित है।[6]

- **श्री जैन बेनेफिट सोसाइटी मद्रास, शाखा सिरोही :-** यह संस्था दो प्रकार के कार्यो का संचालन करती है। एक राजकीय महाविद्यालय सिरोही के जरूरतमंद छात्रों के लिए विज्ञान संकाय से सम्बद्ध बुक बैंक, जो सभी वर्गो के छात्रों को सहायता देता है। दूसरा कार्य सिरोही के अस्पतालों के रोगियों को सहायता, जो जीव सेवा समिति के नाम से कार्य करता है। इसमें रोगी को असहाय रोगियों को दवाईयों की सहायता की जाती है।[7]

सिरोही जिले के जैन मंदिर न केवल जीवदया प्राणी कल्याण बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देते हैं :-

- **जलाशयों का निर्माण :-** जैन मंदिरों के आस-पास जलाशय के लिए बावडी व पानी की उचित व्यवस्था होती है, जिनका निर्माण भामाशाह द्वारा किया जाता है, जो न केवल लोगों के लिए बल्कि पशु-पक्षियों के भी प्यास बुझाने में मदद करते हैं।

- **वनों का संरक्षण :-** जैन धर्म के अनुयायी वनों और वृक्षों को काटने का विरोध करते हैं, क्योंकि ये पर्यावरण प्रेमी होते है, जो विस्तृत क्षेत्र में वनारोपण व वन संरक्षण का उचित प्रबंध करते है। इनके मंदिरों में पवित्र कल्पवृक्ष के साथ ही विभिन्न किस्म के पेड़-पौधों से बगीचा हरा-भरा होता है।[8]

- **समाज और जीवदया का संबंध :-** सिरोही जिले के जैन मंदिर स्थानीय समाज को जीवदया और प्राणी कल्याण के प्रति जागरूक करते हैं। त्याग और सेवा भाव के माध्यम से मानवता को नई दिशा देने का प्रयास किया जाता है।

- **स्थिरता और पर्यावरण संबंधी :-** जैन धर्म पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देता है और सिरोही में जैन समुदाय जानवरों और पर्यावरण दोनों की भलाई सुनिश्चित करने के लिए काम करके इस सिद्धांत को आगे बढ़ाता है। वे प्रदूषण को कम करने और जानवरों के साथ मानवीय व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाली पहलों पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं।

- **पशु संरक्षण एवं बचाव :-** जैन संगठन और मंदिर सिरोही में वन्य जीवों और पालतू पशुओं के संरक्षण में भी भूमिका निभाते हैं। वे घायल जानवरों को बचाकर उन्हें चिकित्सा देखभाल प्रदान करते हैं और उनके पुनर्वास में मदद करते हैं। जैन समुदाय कई गौशालाएँ चलाता है, जिनमें गायों और अन्य जानवरों की देखभाल की जाती है, खासकर उन जानवरों की जो परित्यक्त, बीमार या बूढ़े हैं। गायों को भोजन, आश्रय, चिकित्सा देखभाल प्रदान की जाती है।[9]

जैन धर्म में स्वयं के कल्याण के साथ सर्व कल्याण की बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। इसके

उदाहरण यहां आये हुए जैन मंदिर है, जैन मंदिर न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि प्राणी जीव दया और कल्याण के उत्कृष्ट मिसाल कायम करते हैं। इन मंदिरों के माध्यम से अहिंसा, सेवा और पर्यावरण संरक्षण जैसे मूल्य स्थापित होते हैं। सिरोही के जैन मंदिर यह संदेश देते हैं, कि प्राणी मात्र की सेवा ही ईश्वर की सच्ची पूजा है। प्राणी सेवा के ये कार्य करुणा, आत्म–संयम और अहिंसा के जैन मूल्यों में गहराई से निहित हैं। सिरोही और राजस्थान के अन्य हिस्सों में जैन समुदाय इन कल्याणकारी गतिविधियों को जारी रखते है, जो सभी जीवित प्राणियों की भलाई के लिए उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. कमल जैन, प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम संस्थान, वाराणसी।
2. नरेन्द्र भानावत, जैन संस्कृति और राजस्थान, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर।
3. वही से।
4. सुरेश कुमार, श्री पावापुरी तीर्थ–जीव मैत्री धाम : जीवदया का धार्मिक स्थल।
5. मोहनलाल बोल्या, सिरोही–पाली जिले के जैन मंदिर, संस्करण 2016
6. तीर्थ दर्शन, प्रथम खण्ड, श्री महावीर जैन कल्याण संघ, मद्रास, 1980
7. नरेन्द्र भानावत, जैन संस्कृति और राजस्थान, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर।
8. राजस्थान जैन संघ सिरोही संक्षिप्त रिपोर्ट, 14 जून, 1987, श्री सुधर्मास्वामी ज्ञान भंडार, सुरत।
9. दहयाभाई लक्ष्मणभाई पटेल, सामाजिक सेवाना सन्मार्ग, प्रथम आवृति, 1912

suryaparmar88@gmail.com

9610035065

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 81-84

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. नरेश कुमार सिहाग के बालकाव्य का अनुशीलन

डॉ. अलका

टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. नरेश कुमार सिहाग, श्रीगंगानगर, राजस्थान के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं, जिनका जन्म अगस्त 1978 में हुआ। उन्होंने समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिंदी, शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता में एम.ए., समाजशास्त्र और हिंदी में एम.फिल., एल.एल.बी. (ऑनर्स), एम.लिब., हिंदी में पीएच.डी., और पंचायती राज में डिप्लोमा (रजत पदक विजेता) जैसी उच्च शिक्षाएँ प्राप्त की हैं। वर्तमान में वे टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर के हिंदी विभाग में विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक के पद पर कार्यरत हैं।

डॉ. सिहाग की साहित्यिक यात्रा में बाल साहित्य का विशेष स्थान है। उनकी रचनाएँ बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए सरल, सहज और शिक्षाप्रद होती हैं, जो बच्चों के नैतिक और बौद्धिक विकास में सहायक सिद्ध होती हैं। उनकी बाल कविताएँ बच्चों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं, जो उन्हें जीवन के मूल्यों से परिचित कराती हैं।

उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियों में 'पं. चन्द्रभानुः व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शामिल है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने 'रामकाव्य में राष्ट्रीय प्रेम' जैसे लेखों के माध्यम से साहित्य में राष्ट्रीय भावना का समावेश किया है।

बाल साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए उन्हें विभिन्न मंचों पर सम्मानित किया गया है। उनकी रचनाएँ बच्चों के साथ–साथ वयस्कों के लिए भी प्रेरणादायक हैं, जो समाज में साहित्य के महत्व को दर्शाती हैं।

डॉ. सिहाग का मानना है कि बाल साहित्य बच्चों के सर्वांगीण विकास में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनकी रचनाएँ बच्चों में सृजनात्मकता, कल्पनाशीलता और नैतिक मूल्यों का विकास करती हैं, जो उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करती हैं।

उनकी साहित्यिक यात्रा और बाल साहित्य में योगदान हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

'डॉ. नरेश कुमार सिहाग के बाल काव्य का अनुशीलन'

डॉ. नरेश कुमार सिहाग हिंदी साहित्य के एक प्रतिष्ठित रचनाकार हैं, जिनका योगदान विशेष रूप से बाल साहित्य में अद्वितीय है। उनकी बाल काव्य रचनाएँ न केवल सरलता और सहजता से भरपूर हैं, बल्कि इनमें गहरी शिक्षाप्रद और मनोरंजक भावनाएँ भी निहित होती हैं। उनके काव्य में बच्चों की मानसिकता, उनकी जिज्ञासा और उनकी भावनाओं को गहराई से समझने की कला स्पष्ट रूप से झलकती है।

'बाल मनोविज्ञान की समझ'

डॉ. सिहाग की रचनाओं में बाल मनोविज्ञान का अद्भुत चित्रण मिलता है। उनकी कविताएँ बच्चों की उम्र, उनकी जिज्ञासाओं और उनकी दुनिया के अनुसार लिखी गई हैं। बच्चे उनकी रचनाओं के पात्रों, भाषा और कथानकों से खुद को जुड़ा हुआ महसूस करते हैं। यह उनके साहित्य की सबसे बड़ी सफलता है।

'भाषा और शैली'

उनकी भाषा अत्यंत सरल, सरस और बालोपयोगी है। वे सामान्य शब्दों और छंदों का उपयोग करते हुए गहरी बातें बच्चों तक पहुँचाने में सक्षम हैं। उनकी शैली लयात्मक और काव्यात्मक है, जो बच्चों को आकर्षित करती है। उनकी कविताओं में सहज हास्य, प्रकृति का चित्रण और नैतिक मूल्यों का समावेश होता है।

'शिक्षा और मनोरंजन का समन्वय'

डॉ. नरेश कुमार सिहाग के बाल काव्य में शिक्षा और मनोरंजन का अनोखा

समन्वय है। उनकी कविताएँ बच्चों को न केवल हँसाती हैं, बल्कि उनके भीतर नैतिकता, अनुशासन और जिज्ञासा को भी प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए, उनकी कविताओं में पर्यावरण संरक्षण, स्वच्छता, सहिष्णुता और कर्तव्यनिष्ठा जैसे विषयों को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

'प्रमुख विशेषताएँ'

1. 'सरलता और स्पष्टता': उनकी रचनाओं की भाषा और भाव बच्चों के लिए आसानी से समझने योग्य हैं।
2. 'प्रेरणादायक संदेश': उनकी कविताएँ बच्चों को सकारात्मकता, परिश्रम और रचनात्मकता की ओर प्रेरित करती हैं।
3. 'प्रकृति और समाज का चित्रण': उनकी कविताओं में प्रकृति के सौंदर्य और समाज की विविधताओं का सजीव वर्णन मिलता है।
4. 'भावनात्मक जुड़ाव': उनकी कविताएँ बच्चों को भावनात्मक रूप से छूती हैं और उनके मन में गहरी छाप छोड़ती हैं।

'उदाहरण'

उनकी कविताओं में बाल जीवन की सरलता और जिज्ञासा के दृश्य बहुत ही रोचक होते हैं। जैसे, एक कविता में बच्चे और पक्षी के बीच संवाद, तो दूसरी में पेड़ और बच्चे के बीच की मित्रता को उजागर किया गया है। ये कविताएँ बच्चों को प्रकृति से जोड़ने और उसमें निहित सौंदर्य को समझने की प्रेरणा देती हैं।

'निष्कर्ष'

डॉ. नरेश कुमार सिहाग का बाल काव्य बाल साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनकी रचनाएँ बच्चों के मस्तिष्क और हृदय दोनों को प्रभावित करती हैं। वे अपनी सरल भाषा, रोचक कथानक और प्रेरणादायक संदेशों के माध्यम से बच्चों को शिक्षित और प्रेरित करते हैं। उनका साहित्य न केवल बालकों के लिए बल्कि बड़ों के लिए भी प्रेरणादायक है, क्योंकि इसमें बच्चों की दुनिया के माध्यम से जीवन के बड़े पाठ छिपे हुए हैं। इस प्रकार, डॉ. सिहाग का बाल काव्य हिंदी साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1 मैं हार गई (1957) नारीवादी , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2 बोहल की कविताएं, काव्य संग्रह, डॉ. नरेश कुमार सिहाग, नई दिल्ली

3. हिन्दी काहानी डॉ. नरेश कुमार सिहाग, नई दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 85-88

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में कामकाजी महिला

प्रो० रश्मि कुमारी, विभागाध्यक्ष,
रीना नागर, शोध छात्रा,
हिंदी विभाग, कु० मायावती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ० प्र०)

शोध सारांश :-

किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है, वहाँ के नागरिकों का शिक्षित होना। विकसित राष्ट्र की आधारशिला वहाँ के परिपक्व समाज पर निर्भर करती है। एक ऐसा राष्ट्र जहाँ सभी नागरिकों को शिक्षा, रोज़गार एवं अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति समान रूप से की जाती हो। जिसमें व्यक्तिगत कल्याण एवं राष्ट्र कल्याण की भावना निहित हो किन्तु आज के इस आधुनिक युग में भी महिलाओं को स्वयं के अधिकारों के लिए जद्दोज़हद करनी पड़ती है। आज भी देश की आधी आबादी समान अवसरों और अधिकारों से वंचित है जब तक महिलाओं को भी समान अधिकार और अवसर प्राप्त नहीं होंगे राष्ट्र पूरी तरह से विकसित नहीं कहलाएगा।

पिछले दो दशकों से समाज की सोच में बहुत तेजी से बदलाव आया है, जिसमें नारी शिक्षा को प्रोत्साहन मिला है। अब घर की चौखट से बहार निकलकर महिलाओं ने भी प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कामयाबी का परचम लहराया है, उच्च शिक्षा के अवसर बढ़े हैं। महिलाओं को रोज़गार मिलने से उनमें आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान बढ़ा है, समाज में प्रतिष्ठा आदि के कारण उनकी छवि में परिवर्तन आया है। साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। आधुनिक साहित्यकारों में उषा प्रियंवदा का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने साहित्य में महिलाओं के समान अधिकारों को केंद्र में रखा है। उनके 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'भया कबीर उदास', 'नदी' तथा 'अल्पविराम' सभी उपन्यासों में कामकाजी एवं जागरूक नारी है।

मुख्य शब्द :- कामकाजी, जागरूक, आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर, बौद्धिक आदि।

आज के बदलते परिवेश में समाज में सम्माननीय स्थान पाने के लिए स्त्रियों को भी रोज़गार की आवश्यकता है। कृषि प्रधान देश होने के कारण प्राचीनकाल से ही स्त्रियों ने पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाया है। ग्रामीण अंचल में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ खेतों में काम करती हुई पाई गई हैं तो नगरों में उन्हें मजदूर बनते हुए भी देखा गया है। परिस्थितियों के अनुसार समाज के नियम भी बदले हैं। शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने मध्यवर्गीय समाज में जागरूकता फैलाई है। प्रेरणा तिवारी के शब्दों में, ''शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने स्त्री का घर की चारदीवारी के बंधन तोड़कर खुली हवा में सांस लेना सम्भव कर दिया था, स्त्रियाँ परम्पराओं व रीति–रिवाज़ों की सीमाएं लांघकर नित नए कीर्तिमान स्थापित कर रही थीं। किसी समय में आर्थिक मजबूरियों के चलते स्त्री ने घर के बहार निकलकर अपमानजनक परिस्थितियों में काम करना स्वीकार किया था, किन्तु बदलते हुए परिवेश

में वही परिस्थितियाँ अपमानजनक से सम्मानजनक बन गई थी। कठोर आर्थिक संकट में स्त्री को अर्थोपार्जन की अनुमति देने वाला समाज भी अब स्वयं आगे बढ़कर महिलाओं के लिए रोज़गार के सुअवसर प्रस्तुत कर रहा है।''

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की सुषमा अर्थोपार्जन करके अपनी और अपने परिवार की जिम्मेदारी उठती है। आर्थिक रूप से सक्षम होने के कारण सुषमा परिवार में पुरुष की केन्द्रीय भूमिका निभाती है। कॉलेज में प्राध्यापिका और हॉस्टल वार्डन होने से सुषमा को आत्मविश्वास, उसकी बौद्धिक क्षमता का विकास और जीवन के निर्णय लेने की योग्यता प्रदान करता है। अपने बल पर कमाया गया समाज में सम्मान उसके लिए किसी वरदान से कम नहीं होता है। "दो चपरासियों ने एक साथ उसे सलाम किया। पिछले साल तक तो ये दोनों काम के नाम पर दूर भागते थे और सलाम करना तो दूर, सुषमा के टिप देने पर भी काम ठीक नहीं करते थे। सुषमा को लगा कि वह सचमुच कुछ हो गयी है। वह मुस्कुराई और क्लास में चली गई।

घंटा समाप्त होने पर वह लौटी तो देखा कि इस बीच उसके कमरे के आगे नेम–प्लेट जड़ दी गई थी– मिस एस0 शर्मा, वार्डन गर्ल्स हॉस्टल। अपने नाम के आगे इतनी बड़ी पूंछ देख उसे बड़ा विचित्र–सा लगा।'' परिवार की ज़िम्मेदारी निभाते–निभाते सुषमा ने स्वयं को कहीं पीछे छोड़ दिया किन्तु जीवन में मिली सफलता उसे कभी हारने नहीं देती है।

आज की आधुनिक स्त्री बौद्धिक और तार्किक है। जिसे इमोशनल इंटेलिजेंस कहा जा सकता है। सुषमा भी ऐसी है, वह भावनाओं को बहुत ज्यादा अपने ऊपर हावी नहीं होने देती। वह यह भली प्रकार जानती और समझती है कि वर्तमान में लिए गए निर्णय का परिणाम उसे भविष्य में भोगना पड़ेगा। नील से उसे अत्यधिक प्रेम है। यह जानते हुए भी कि नील ही एक मात्र वह ज़रिया है जिसके सहारे वह हॉस्टल रुपी कारागार से स्वयं को मुक्त कर सकती है, वह नील के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है। आपने छोटे भाई–बहनों की पढ़ाई और विवाह की ज़िम्मेदारी उसी पर है वह जानती है नौकरी उसके लिये बेहद आवश्यक है। "सुषमा ने जाकर प्रिंसिपल से कह दिया था कि यदि उन्हें नील के कॉलेज आने पर आपत्ति है तो वह नहीं आएगा। उन सबको नील के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमी हुई है। प्रिंसिपल से बात कर वह आपने ऑफिस में आ गयी और इतने दिनों का इकट्ठा हुआ काम देखने लगी।" अंतः सुषमा ऐसी आधुनिक स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समान अधिकार मिलने से न केवल अपने जीवन में बल्कि समाज में भी एक सकारात्मक बदलाव लती है।

'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका सम्भ्रांत परिवार की बेटी है। जीवन में सभी भौतिक सुख–सुविधाओं से सम्पन्न राधिका अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है। अमेरिका से वापिस आने के बाद वह किराए के एक मकान में रहना पसंद करती है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र राधिका सामाजिक रूप से भी स्वतंत्र हो जाती है। समाज द्वारा बनाई गयी रूढ़िवादी मान्यताएं उसके कानों तक तो पहुँचती हैं किन्तु उसके हृदय पर उनका को प्रभाव नहीं पड़ता। उल्टा उसे ही समाज के प्रति खीज़ पैदा होती है। "मेरा मन बार–बार हुआ कि मैं चीख–चीखकर कहूँ कि तुम लोगों ने किसी स्वस्थ दिशा की और तरक्की क्यों नहीं की? माना की हम पिछड़े हुए है, पर हम कम से कम सभ्य और शिष्ट तो हो सकते हैं। अपनी ज़हालत और आलस्य को दूर कर सकते हैं। पर नहीं, यहाँ तो यह है कि जिस पर जितना बन पड़ता है सताने पर तुल जाते हैं।" राधिका का इतना तार्किक होना शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो पाया है। एक सही दिशा में कार्य करना, स्वयं पर असामाजिक तत्वों को

हावी न होने देना, घर से बाहर निकलना, नौकरी करना, तर्क करना उसके आत्मसम्मान और स्वाभिमान को उन्नति प्रदान करता है।

वहीं दूसरी ओर राधिका की मित्र शिक्षा अभाव के कारण संक्रीण मानसिकता वाली हो गई है। ऐसे लोग स्वयं तो पिछड़े हुए होते हैं ही अपने आस–पास आगे बढ़ने वालों को भी अपने वर्ग में शामिल करने के लिए लालायित रहते हैं। भारत लौटने पर राधिका की भेंट रमा से होती है। "और बताओ" रमा ने पूछा।

"मेरे पास क्या है बताने को? तुम सुनाओ।" राधिका को लग रहा था कि दोनों के मध्य जो सम–रूचियाँ, जो समवयस्क होने की एक निकटता पहले थी, वह अब खो गयी है। दोनों एक–दुसरे से बहुत दूर चली गईं हैं, इसलिए इस परिस्थिति को थोड़ी–सी त्रास भरी हो जाने की सम्भावना थी।

"न जाने कहाँ–कहाँ का सैर–सपाटा, किस–किस घाट का पानी पीकर तुम आई हो और कुछ नहीं है बताने को?" रमा का इतना क्रूर होना उसकी असभ्यता को दर्शाता है। राधिका को इन सब बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता वह इन सब से ऊपर उठ चुकी है। समर्थ, सुशिक्षित, आर्थिक रूप से स्वतंत्र राधिका का परिवार और समाज में सम्मान है।

आधुनिक युग में पुरुष भी ऐसी स्त्रियों को पसंद करते हैं जो आत्मविश्वास से भरी हों। जिन्हें बाहरी दुनिया का भी ज्ञान हो। केवल परम्परागत जीवन जीने वाली स्त्रियों की उपेक्षा घर और समाज दोनों जगह होती है। अतः महिलाओं का शिक्षित होना आज के समय में अति–आवश्यक हो गया है। स्त्रियों को चाहिए कि वह स्वयं के प्रति, समाज के प्रति जागरूक बनें। अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को जीना सीखें। ताकि मुसीबत पड़ने पर वह बिखरें नहीं बल्कि जीवन को सँवारने की और कदम बढ़ाएं। 'शेष यात्रा' की अनु जब अपने पति प्रणब से पूछती है की आपने मुझे क्यों पसंद किया था तब वह कहता है कि तुम्हें देखते ही पता चल गया था कि तुम एक मूर्ख लड़की हो। विवाह के तुरंत बाद ही वह उससे ऊबने लगता है। अब उसे ऐसी स्त्रियाँ पसंद हैं जो जीवन में कामयाब हैं। वह चाहता है की अनु भी जीवन में आगे बढ़े। ताकि वह उसकी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो सके। "मैं चाहता हूँ कि तुम मुझ पर निर्भर न रहो। मुझसे अलग अपना व्यक्तित्व बनाओ। आत्मनिर्भर बनो। तब तो तुम बच्ची थी, एकदम अबोध। अब तो यहाँ चार–पाँच साल से हो, वह बचपना अब क्यूट नहीं लगता।"

तलाक के बाद जब अनु पाती है कि उसके हाथ कुछ भी नहीं है आगे का जीवन कैसे चलेगा। वह सम्पत्ति का आधा हिस्सा मांगती है। प्रणब को आश्चर्य होता है। उसे अनु जैसी मुर्ख लड़की से यह उम्मीद नहीं थी।

"घर के दाम लग चुके हैं। तुम्हारे हस्ताक्षरों की जरूरत है।"

आगे कहने से पहले प्रणब ने गिलास खाली कर दिया, ''हमने घर नब्बे हज़ार में खरीदा था, अब सवा लाख पर बात पक्की हुई है। कुल मिलाकर हम लोगों को पैंतीस हज़ार का नफा होगा, पन्द्रह हज़ार घर खरीदते हुए दिया था, इसलिए पचास हज़ार होंगे। क्या तुम अपना आधा चाहोगी?''

प्रणब ने प्रश्न ऐसे किया, जैसे उसे उम्मीद है कि अनु मना कर देगी, पर अनु ने कुछ सोचने के बाद कहा, "हाँ, क्यों नहीं!"

प्रणब थोड़ा भौंचक उसे देखने लगा, "तुम क्या करोगी इतने पैसे का?"

"आप क्या करेंगे?"

"मुझे तो ज़रूरत है।"

अनु अपनी मित्र दिव्या से प्रेरणा लेती है। दिव्या एक शोधार्थी है। सके आत्मविश्वास से भरे व्यक्तित्व से वह प्रभावित होती है। अंत में अनु समाज में अपना एक सम्माननीय स्थान पाती है। अतः शिक्षा अभाव में नारी अपने अधिकारों से वंचित रह जाती है। उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पता है। एक नारी होने के नाते उषा प्रियंवदा नारी मन की पीड़ा और उसकी आवश्यकताओं को भली प्रकार समझती हैं इसीलिए उन्होंने आपने उपन्यासों में अपने नारी पात्रों को आत्मनिर्भर और सशक्त बनाया है। वास्तव में, उषा प्रियंवदा एक महान् साहित्यकार हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :–

1. प्रेरणा तिवारी : समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में कामकाजी स्त्री, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2014 पृ० सं० 41
2. उषा प्रियंवदा : पचपन खम्भे लाल दीवारें, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2018, पृ०सं० 10
3. वही, पृ० सं० 142
4. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, हिंदी पॉकेट बुक्स, 2019, पृ० सं० 96
5. वही, पृ० सं० 69
6. उषा प्रियंवदा : शेष यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2017, पृ० सं० 52
7. वही, पृ० सं० 78–79

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 89-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतेंदु हरिश्चन्द्र का हिंदी साहित्य में योगदान

वेदप्रकाश

सहायक आचार्य (VSY) राजकीय महाविद्यालय गोलिया जेतमाल, बाड़मेर (राजस्थान)

जीवन परिचय :-

भारतेंदु हरिश्चंद्र 9 सितंबर 1850 से 6 जनवरी 1885 आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वह हिंदी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम हरिश्चंद्र था भारतेंदु उनकी उपाधि थी हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा है। हिंदी में नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेंदु के नाटक लिखने की शुरुआत बांगला के विद्यासुंदर नाटक के अनुवाद से होती है। सत्य हरिश्चंद्र इनका पहला मौलिक नाटक है जिसका प्रकाशन वर्ष 1875 ई. है।

सारांश :-

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मौलिक और अनूदित मिलाकर कुल 17 नाटकों की रचना की। भारतेंदु जी से पहले के लिखे नाटक धार्मिक और भावुकता प्रधान थे। इसकी जगह भारतेंदु ने पोराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक नाटक लिखे। उन्होंने अपना जीवन हिंदी साहित्य के विकास के लिए समर्पित कर दिया था। भारतेंदु के साहित्य को योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेंदु युग के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु श्रेष्ठ पत्रकार भी थे उन्होंने 18 वर्ष की अवस्था में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका निकाली जिसमें उस समय के बड़े–बड़े रचनाकारों की रचनाएं छपती थी। इसके बाद 1873 में हरिश्चंद्र मेगजीन और 1874 ई. में स्त्री शिक्षा के लिए बालबोधिनी नामक पत्रिकाएं निकाली। इन पत्रिकाओं के जरिए उन्होंने लोगों में देश प्रेम भरने का प्रयास किया। उनके योगदान को देखते हुए काशी के विद्वानों ने 1880 में भारतेंदु की उपाधि प्रदान की। इसके अलावा उस समय राजकाज की भाषा फारसी थी। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था। आज की हिंदी भारतेंदु की ही देन है। इसलिए उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक भी माना जाता है। भारतेंदु जी ने मात्र 34 वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। इन्होंने नाटक, निबंध, काव्य कृतियां, आत्मकथा और वृतांत लिखकर हिंदी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इनके द्वारा लिखित मौलिक नाटक – वैदिक हिंसा हिंसा न भवति है, सत्य हरिश्चंद्र, श्री चंद्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, विशेषयविसमोसधम और अंधेर नगरी है।

अनूदित नाटक रचनाएं – विद्यासुंदर, धनंजय विजय, कपूर मंजरी, भारत जननी, मुद्रा राक्षस, दुर्लभ बंधु है।

नाटक का कालचक्र, लवी प्राणलवी, कश्मीर कुसुम, जातीय संगीत सार, हिंदी भाषा, स्वर्ग में विचार सभा आदि है।

काव्य कृतियां :– भक्त सर्वस्व, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, उत्तर भक्तमाल, प्रेमप्रलाप, होली, मधुमुकुल, राग संग्रह, वर्षा विनोद, विनय प्रेम पचास, फूलों का गुच्छा (खड़ी बोली काव्य) है। प्रेम फुलवारी, कृष्ण चरित्र, दान लीला, नए जमाने की मुकरी, बंदर सभा, (हांस्य व्यंग) बकरी विलाप (हांस्य व्यंग) है।

कहानी – अद्‌भुत अपुर्व स्वप्न।

आत्मकथा – कुछ आपबीती, कुछ जग बीती।

हिंदी गद्य के विकास में भारतेंदु का योगदान –

हिंदी गद्य के विकास का पहला युग भारतेंदु युग के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी गद्य साहित्य के प्रथम साहित्यकार माने जाते हैं। अतः भारतेंदु के नाम से इस युग का नामकरण हुआ है। इस युग में नाटक, उपन्यास, निबंध, आलोचना, पत्र पत्रिकाएं, अनुवाद आदि सभी विधाओं पर रचना की गई है। भारतेंदु ने इतिहास, भूगोल, विज्ञान पुराण आदि विषयों पर स्वयं लिखा। पत्र–पत्रिकाओं तथा समाजसेवी संस्थाओं द्वारा हिंदी गद्य एवं भाषा को एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया। भारतेंदु की प्रेरणा से अनेक साहित्यकार नाटक साहित्य की रचना के लिए प्रवृत हुए है। इस युग में बांग्ला, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषा के नाटकों का अनुवाद भी हुआ है। अनुवादको में राधा कृष्ण दास, प्रताप नारायण मिश्र प्रमुख है। हरिश्चंद्र मेगजीन, ब्राह्मण, हिंदी प्रदीप प्रमुख पत्रिकाएं इसी युग की देन है। इस युग के रचनाकारों ने जहां एक और जनमानस के मनोभावों के अनुकूल भाषा को व्यवस्थित और आदर्श रूप प्रस्तुत किया तो वहीं दूसरी ओर उसमें व्याकरण की अशुद्धियां भी रही है।

हिंदी पत्रकारिता के विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान :–

भारतेंदु हरिश्चंद्र पत्रकार भी थे। उन्होंने कवि वचन सुधा, हरिशचंद्र मेगजीन और बालबोधिनी पत्रिकाओं का प्रकाशन और संपादन कर साहित्य के अलग–अलग विषयों पर लिखा। इन पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने न केवल नई तरह की भाषा का विकास किया बल्कि आधुनिक भारत की समस्याओं का भी खुलकर चिंतन किया। वह पत्रिकाओं के माध्यम से देशवासियो में देश प्रेम की भावना विकसित करने की कोशिश किया करते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इन पत्रिकाओं में ढेर सारा निबंध आलोचना और रिपोर्ताज लिखें। आलोचकों के अनुसार इन विधाओं की स्थापना भारतेंदु और उनके साथियों के प्रयासों से हुई अपने पत्रिकाओं में विविध विषयों पर आलेख लिखकर भारतेंदु ने अन्य लेखकों को भी प्रेरित किया।

कवि वचन सुधा :–

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा संपादित यह एक हिंदी समाचार पत्र था। इसका प्रकाशन 15 अगस्त 1868 ई. को वाराणसी में आरंभ हुआ। यह एक क्रांतिकारी घटना थी। यह कविता केंद्रित पत्र था। इस पत्र ने हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता को नया आयाम प्रदान किया। हिंदी के महान समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि कवि वचन सुधा का प्रकाशन करके भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक नए युग का सूत्रपात किया। कविवचन सुधा में साहित्य तो छपता ही था। उसके अलावा समाचार पत्र में ज्ञान, विज्ञान, धर्म, राजनीति, समाज, नीति आदि विषयक लेख भी प्रकाशित होते थे। इस पत्रिका की लोकप्रियता इतनी बढी कि उसे मासिक पत्र से पाक्षिक, साप्ताहिक कर दिया गया।

हरिश्चंद्र मैगजीन :–

यह एक मासिक पत्रिका थी। इसका प्रकाशन 1873 ई. में हुआ। हिंदी गद्य का परिष्कृत रूप पहले इसी

पत्रिका में प्रकट हुआ, हिंदी का देश ने अपनी विभूति समझा जिसको जनता ने उत्कंठा पूर्वक दौड़कर अपनाया उसके दर्शन इसी पत्रिका में हुए। उन्होंने कालचक्र नाम की अपनी पुस्तक में लिखा है कि हिंदी नई चाल में ढली सन 1873 ई. इस पत्रिका के आविर्भाव के साथ ही नए–नए लेखक भी तैयार हुए हरिश्चंद्र चंद्रिका में भारतेंदु हरिश्चंद्र स्वयं तो लिखते ही थे। बहुत से और लेखक भी उन्होंने तैयार कर लिए थे। स्वर्गीय पंडित बद्री नारायण चौधरी भारतेंदु हरिश्चंद्र के संपादक कौशल की बड़ी प्रशंसा किया करते थे।

बाला बोधिनी :–

1 जनवरी 1874 को भारतेंदु ने बाला बोधिनी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह हिंदी मासिक पत्रिका बनारस से प्रकाशित होती थी। यह महिलाओं से संबंधित पत्रिका थी। महिलाओं को शिक्षित एवं जागृत करने में इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस संदर्भ में रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि सवंत 1931 में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्त्री शिक्षा के लिए बालबोधिनी पत्रिका निकाली थी।

भारतेंदु का काव्य में योगदान :–

एक कवि के रूप में उनका व्यक्तित्व कितना रहा। इसका अध्ययन हम उनके काव्य के विशेषताओं के माध्यम से कर पाएंगे। उनके रूप सौंदर्य धर्म की दर्शनिकता था। भक्ति के क्षेत्र में सूरदास उनके प्रिय कवि रहे हैं। उन्होंने भक्ति सर्वस्व (1870) वैशाख मातम (1872) आदि कविताओं में राधा कृष्ण प्रेम, प्रेम के महत्व और ईश्वर के प्रति निवेदन का वर्णन किया है।

देशभक्ति कविताओं में भारतेंदु की राष्ट्रभक्ति इस कविता के माध्यम से स्पष्ट दिखाई देती है :–

'भीतर भीतर सब रस चुसै।
हंसि हंसि के तन मन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहीं अंग्रेज।'

समाज सुधार और नवजागरण :–

भारतेंदु समाज की रूढ़िवादिता के विरोधी थे। छुआछूत, बाल विवाह, जन्म पत्री देखकर विवाह करना, विदेश गमन पर रोक, मूर्ति पूजा आदि अंधविश्वासों का खुलकर विरोध करते थे नारी को पुरुष के बराबर मानने के पक्षधर थे वह कहते हैं :–

'जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष या में कछु न विभक्ति।।'

उन्होंने अंग्रेजी के साथ निज भाषा उन्नति का भी जोर–जोर से पक्ष लिया :–

'निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।'

हिंदी निबंध के विकास में भारतेंदु का योगदान :–

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी निबंध के जनक माने जाते हैं। उन्होंने हिंदी की दशा सुधारने के लिए पद्य के स्थान पर गद्य निबंध लिखने की शुरुआत की और सभी भारतवासियों को जगाते हुए कई निबंध लिखे। उनके निबंध जन चेतना जगाने में सफल सिद्ध हुए।

दिल्ली दरबार दर्पण :–

दिल्ली में आयोजित एक दरबार का वर्णन इसमें किया गया है। यह दरबार 1877 में आयोजित किया गया था। इसमें भारत के कई छोटे–छोटे राज्यों के राज्यकर्ता उपस्थित थे। इसमें रानी विक्टोरिया के द्वारा सम्राट का पद धारण करने का उल्लेख है। साथ ही उनके साथ अन्य राजाओं का उल्लेख भी किया गया है।

स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन :–

यह निबंध भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रिका कवि वचन सुधा में लिखा गया था। यह एक जून 1885 को प्रकाशित हुआ इसमें उन्होंने अपने समय में हो रहे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों का परिचय दिया और उसके आपसी अंतर्विरोधों का भी उल्लेख किया।

संगीत सार :–

इसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गाना, बजाना, नाचना आदि के समूह को संगीत कहा है। वह कहते हैं कि कभी भारत में संगीत शास्त्रियों के प्रति आस्था व्यक्त की जाती थी। आज उनका अपमान किया जा रहा है। संगीत का लोप होता जा रहा है या लोप हो गया है। ऐसा तर्क देते हुए इस निबंध में संगीत के प्रति उस समय की धारणा को व्यक्त करते हैं।

भ्रूण हत्या :–

वर्तमान समय में भ्रूण हत्या एक सामाजिक समस्या बन गई है। इसे रोकने के लिए सरकार प्रयासरत है परंतु यह समस्या दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। इस निबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भ्रूण हत्या होने के कारण और उनके दुष्परिणाम आदि की चर्चा की है। वह यहां तक कह देते हैं कि भ्रूण हत्या समाज के लिए सबसे बड़ा कलंक है और महापाप भी है।

नाटककार के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र :–

भारतेंदु हरिश्चंद्र का सबसे बड़ा योगदान नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में है। भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी के प्रथम मौलिक नाटककार है। उन्होंने न केवल नाटक को युगीन समस्याओं से जोड़ा बल्कि नाटक और रंगमंच के आपसी संबंध को समझाते हुए रंगमच भी किया। भारतेंदु ने पारसी नाटकों के विपरीत जन सामान्य को जागृत करने, उनमें आत्मविश्वास जगाने के उद्देश्य से नाटक लिखे हैं। उनके नाटकों में देश प्रेम, न्याय, त्याग, उदारता जैसी मानवीय मूल्यों की झंकार स्पष्ट पड़ती है। उनके नाटकों में प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम दिखलाई पड़ता है। उन्होंने मौलिक और अनूदित कुल 17 नाटकों की रचना की। उनके नाटकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

वैदिक हिंसा हिंसा न भवंति :–

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित एक प्रहसन नाटक है। इसका प्रकाशन वर्ष 1873 ई. है। इसकी कथा तत्काल भारतीय समाज के सामाजिक जीवन से ली गई है। तत्कालीन जीवन में धार्मिक मतभेद का जो ब्रह्मचार फैला था। उसके कारण सामाजिक जीवन में जो बुराइयां आई थी। उन बुराइयों को प्रहसन में स्थान दिया गया है। प्रहसन का दृश्य विधान और पात्र योजना सुंदर बन पड़ा है। प्रहसन में आए हुए पात्र अधम है। जो जीवन की विकृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रेम जोगिनी :–

सन् 1875 ई में भारतेंदु ने प्रेम जोगिनी नामक नाटक लिखा था। इस नाटक के केवल चार ही अंक

भारतेंदु पूरे कर सके। नाटक का प्रत्येक अंक अपने आप में पूर्ण है। प्रत्येक अंक में भिन्न–भिन्न पात्र दिखाई देते हैं। प्रमुख पात्रों में झपटिया मिश्रा, दो गुजराती छकजी माखन दास व निता दास आदि है। इस नाटक का पहला दृश्य काशी के मंदिर के चौक का है।

भारत दुर्दशा :–

यह नाटक भारतेंदु के भारतीयता का उत्तम नमूना है। इसका प्रकाशन वर्ष 1880 ई. है। इसमें भारत के दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया गया है। नाटक को छोटे–छोटे छः अंको में विभाजित किया गया है। अर्चना में नायक तो भारत का है किंतु नायिका कोई नहीं है। न तो इसमें प्रस्तावना है और न ही अंत में भारत वाक्य है। केवल आरंभ में मंगलाचरण दिया गया है इसमें आए हुए सभी पात्र प्रतीक रूप में सामने आते हैं।

श्री चंद्रावली नाटिका :–

लेखक की सर्वोत्तम कृतियों में से एक है श्री चंद्रावली नाटिका। यह कृति सर्वप्रथम संवत 1933 में हरिश्चंद्र चंद्रिका में छपी थी। नाटक के शास्त्रीय नियमों का इसमें पूर्णता पालन किया गया है। इसे चार अंक में विभाजित किया गया है। दूसरे अंक में नाटिका के नायक श्री कृष्णा है और नायिका चंद्रभानु की पुत्री चंद्रावली और राधा दोनों है। इसकी संपूर्ण कथा चंद्रावली और कृष्ण के प्रेम को आधार बनाकर लिखी गई।

सत्य हरिश्चंद्र :–

सत्य हरिश्चंद्र का प्रकाशन वर्ष 1875 है। भारतेंदु ने इस नाटक के आरंभ में मंगलाचरण और प्रस्तावना न देकर अंत में भारत वाक्य दिया है।

भारत जननी :–

इसका प्रकाश वर्ष 1877 ई. है। नाटक के उद्देश्य के संदर्भ में चर्चा करते हुए स्वयं नाटककार ने प्रस्तावना में लिखा है। भारत भुमि और भारत संतान की यह दुर्दशा दिखाना ही इस भारत जजनी की इतिहास कर्तव्यता है। नाटक में भारतवासियों को जगाने के लिए सरस्वती, दुर्गा और लक्ष्मी प्रयास करती है।

नीलदेवी :–

इसका प्रकाशन वर्ष 1881 है। दुखांत नाटक का उत्तम उदाहरण नीलदेवी नाटक में देखा जा सकता है। नाटक के प्रति नायक अमीर धोखे से नायक सूर्य देव को कैद करता है। नील देवी नर्तकी का वेश धारण कर अमीर को मार कर सती हो जाती है।

अंधेर नगरी चौपट राजा :–

इसका प्रकाशन वर्ष 1881 ई. है। हांस्य और व्यंग्यपूर्ण शैली में अंधेर नगरी चौपट राजा नाटक लिखा। कथा संगठन में किसी भी प्रकार की शिथिलता नहीं है। नाटक की संपूर्ण कथा 6 अंकों में विभाजित की गई है। प्रस्तुत नाटक के पीछे नाटककार का उद्देश्य था कि तत्कालीन राजाओं की अंधेर करदी तथा उनकी अराजकता को जनता के सामने लाना।

अनूदित नाटक :–

विद्या सुंदर प्रकाशन वर्ष 1868 है। यह एक प्रेम कथा है। रत्नावली संस्कृत से अनूदित नाटक दुर्लभ बंधु, कपूर मंजरी, कवि राजशेखर कृत कपूर मंजरी का अनुवाद है। इसमें राज दरबार का सुंदर व्यंग्य पूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. हिंदी साहित्य का वृद्ध इतिहास– डॉ. नगेंद्र।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह।
4. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास– डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त।

वेदप्रकाश सहारण S/o श्री झिण्डुराम सहारण,

वी.पी.ओ.–थालड़का, तह. नोहर,

जिला–हनुमानगढ़, राजस्थान, पिन कोड–335524

Mobile 9828994777

Email - vedsaharan0407@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 95-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हनुमानगढ का नगरीय स्तरीकरण और पर्यावरण का बदलता स्वरूप

कल्पना

सहायक आचार्य, भूगोल, राजकीय कन्या महाविद्यालय, हनुमानगढ़ जक्शन (विद्या संबल)

सांराश :-

पृथ्वी के धरातल और उसकी सभी प्राकृतिक दशाओं–प्राकृतिक संसाधन, भूमि, जल, मैदान, खनिज, पैड. –पौधे, जीव–जन्तु एवम् सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियाँ मनुष्य जीवन को प्रभवित करती है।

प्रस्तुत शोध पत्र मे नगरीय स्तरीकरण व उसके क्षेत्रीय विकास का पर्यावरण पर किस प्रकार प्रभाव डालता है। उसका अध्यनरत किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र राजस्थान के हनुमानगढ जिले को संदर्भित करते हुए प्रस्तुत किया गया है, कि किस प्रकार हनुमानगढ जिले मे बढता नगरीकरण का स्तर पर्यावरण के स्वरूप को बदल रहा है।

प्रस्तावना :-

वर्तमान समय में सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या पर्यावरण का विकास को बढ़ावा देने हेतु नगरीकरण का प्रसार इत्यादि मानी जाती है। पर्यावरण का विकास तथा नगरीकरण का विस्तार अनियोजित तरीके से होना विकासशील देशों की प्रमुख समस्या माना जाता है। नगरीकरण मे प्रादेशिक–विकास तथा उसके ध्रुवीकरण को प्रमुख बल दिया जाता है। भारत में नगरीकरण की संकल्पना का प्रयोग सरकारी तथा गैर सरकारी स्तरों पर भी किया जाता है। जिन प्रदेशों में तृतीयक व चतुर्थक क्रियाएं अधिक पाई जाती हैं। उन क्षेत्रों में नगरीकरण का विस्तार अत्यधिक मात्रा में होता है।

नगरीकरण मुख्य रूप से उच्च शिक्षा केन्द्रों, शोद्य, श्द्वितीयक सेवाओं की विशिष्टता का आधार रखते है।

कोलकता, दिल्ली, जयपुर, मुम्बई, हैदराबाद या इसके सामान अन्य कोई प्रादेशिक विकास का क्षेत्र नगरीकरण को प्रक्रिया को सारगर्भित रूप से प्रस्तुत करता है। ये नगर अन्य नगरों के विकास स्तर का ध्रुव भी माने जाते हैं। नगरीय केन्द्रों को अभिवृद्धि एक ओर विकास का सूचक मानी जाती है। तो दूसरी ओर पर्यावरण अवनयन का भी प्रमुख आधार मानी जाती है।

शहरीकरण नगरीकरण का अभिवृद्धि क्रम अत्याधिक औद्योगिक इकाइयों को जन्म देता है। जिसके परिणाम इनसे निकलने वाले बहिस्त्राव के पदार्थ नियोजित तरीकों से निस्तारित नहीं किए जाते जिसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले तत्वों का विकास होता है। जो पर्यावरण को क्षति पहुंचाने में अपनी

महत्वपुर्ण भूमिका निभाते है। जो जीव तथा जैविक विकास की भूमिका अवधारणा को प्रभावित करते है।

अध्ययन का उद्देश्य :–

1. हनुमानगढ जिले में नगरीकरण का विकास व इसको प्रभावित करने वाले कारको का मूल्याकंन करना।
2. अध्ययन क्षेत्र में भौतिक एंव सांस्कृतिक पर्यावरण का विशेषणात्मक अध्ययन करना।
3. अध्ययन क्षेत्र में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं को जानना तथा उसके निस्तातरण के उपाय खोजना।
4. पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं का समाधान तलाश कर क्षेत्र के भावी विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।
5. शहरीकरण से नगरीकरण की ओर बढ़ते बदलावों को अध्ययन करना तथा उनका पदानुक्रम जानना।

अध्ययन क्षेत्र का चयन :–

हनुमानगढ जिले का प्राचीन नाम भटनेर था। 1805 मे बीकानेर के शाषक सूरत सिंह ने भटनेर पर मंगलवार को विजय प्राप्त की। जिसके कारण इसका नाम भगवान् हनुमान के नाम पर हनुमानगढ रखा गया। हनुमानगढ क्षेत्र पहले श्रीगंगानगर का भाग था बाद में यह 12–07–1994 को श्रीगंगानगर से अलग होकर राजस्थान का 31वां जिला बना।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र राजस्थान के उतरी भाग में स्थित है। तथा यह 29°5′ उतर से 30°6′ उतर व 74°0′ पूर्वी से 75°3′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसके उतर में पंजाब तथा पूर्व हरियाणा राज्य की सीमा लगती है तथा पश्चिमी सीमा पर श्रीगंगानगर जिला स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 9656 कि.मी. हैं जो राज्य का 2.82 प्रतिशत है। अध्ययन क्षेत्र प्रशासनिक दृष्टि से 7 उपखण्डों व 7 तहसीलों विभक्त है। जिले में 6 कस्बे तथा 1905 गाँव है। इसमें से 1773 आबाद और 132 गैर आबाद गाँव है। सर्वाधिक (381) आबाद गाँव हनुमानगढ तहसील में तो सबसे न्यूनतम (179) आबाद गाँव संगरीया तहसील में कस्बों की संख्या शून्य है। जिले में 3 उप तहसील, 33 गिरदावरी सर्किल, 276 पटवार सर्किल, 251 ग्राम पंचायत, 1749 विद्युतीकृत गाँव, 11 पुलिस थाने, 6 चौकियां, 2 कारागृह है। सन् 2011 की जनगणना के आधार पर जिले की कुल जनसंख्या 424619 थी। 2001 से 2011 के मध्य जनसंख्या वृद्धि दर 21.30 प्रतिशत रही। जिले का औसत जनसंख्या घनत्व 184 व्यक्ति प्रति वर्ग कि॰मी॰ है। तथा लिगांनुपात 901 है। यहां की साक्षरता दर 61.13 प्रतिशत रही है।

शोध विधि तन्त्र :–

प्रस्तुत शोध पत्र में हनुमानगढ जिले में नगरीकरण के विकास तथा इससे पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। आंकड़ों के संकलन हेतु प्राथमिक, द्वितीयक आंकड़ों का संग्रहण किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों का संग्रहण करने के लिए विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित सरकारी तथा गैर सरकारी आंकड़ों का संग्रहण किया गया हैं। शोध कार्य में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है। जो शोध विधि तन्त्र में आंकड़ों को यथा स्थान प्रयोग किया गया है।

नगरीय स्तरीकरण :–

नगरीय स्तरीकरण का तात्पर्य समाज में लोगों या समूहों को धन, आय, जाति, शक्ति जैसे कारको के आधार पर पदानुक्रमित किया जाता है।

पी. सी. लूमिश के अनुसार :–

नगर एक ऐसा समाज है। जिसे अन्य समाजों से जनसंख्या के आकार और घनत्व, व्यवसाय की प्रकृति तथा सामाजिक सम्बन्धों की भिन्नता जैसी विशेषताओं के आधार पर अलग किया सकता है।

दुर्खीम के अनुसार :–

नगर एक ऐसा समाज है। जिसके सदस्य सावयवी एकता द्वारा आपस में बन्धे हुए होते है। इन परिभाषाओं से सिद्ध होता है कि नगरीय समाज विभिन्नताओ का एक समाज होता है। जिसमें विकसित प्रौद्योगिकी, आर्थिक क्रियाओं का आचार, व्यक्तिवादिता, घनी आबादी, प्रतिस्पर्द्धा के कारण जहां नियंत्रण के औपचारिक साधनों द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित किया जाता है।

नगरीय स्तरीकरण के प्रभाव :–

सामाजिक प्रभाव :

नगरीय स्तरीकरण की क्रियाओं के परिणामस्वरूप आवास, शिक्षा, तथा सार्वजनिक सेवाओं जैसे संसाधनो का असमान वितरण होता है।

– इससे शहर की योजना तथा मास्टर प्लान प्रभावित होते हैं।
– सामाजिक नगरीकरण के स्तर को समझने के लिए योजनाकारों को अधिक न्याय संगत शहर व नगर बनाने में मदद मिलती है।
– नगरीय समाज में परिवार का आकार छोटा हो जाता है और व्यक्ति तथा सामुदायिक जीवन में परिवार का महत्व कम हो जाता है।
– जाति लिंग सामाजिक स्तरीकरण के साथ मिलकर शहरी परिवेश में व्यक्तियों के लिए विशिष्ट चुनौतियां उत्पन्न करते हैं।
– महिलाओं को रंग भेद, नौकरी बाजार में नस्लीय भेदभाव और लैगिक पूर्वाग्रहों दोनों का सामना करना पड़ता है।
– स्त्रियों की स्थिति में अधिकारों की प्राप्ति नगरीकरण की प्रक्रिया के साथ सर्वोच्च रही है तथा स्त्री चेतना का विकास हुआ है।
– समाज में बाल विवाह कम हुए है तथा प्रेम विवाहों का प्रचलन बढा है।

पर्यावरणीय प्रभाव :–

पर्यावरण प्रदूषण :

पर्यावरण विभिन्न अर्न्तनिर्भर घटकों के मध्य सामंजस्य की अवधारणा मानी जाती है। नगरीकरण के परिणामस्वरूप मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों के कारण पर्यावरण प्रभावित होता है। सामान्य रूप से प्रदूषण अनेक प्रकार के स्वरूपों में पाया जाता है। वर्तमान शोध में ध्वनी प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि के स्त्रोंतो व इनके प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

वायु प्रदूषण :–

विश्व स्वास्थय संगठन के अनुसार वायु प्रदूषण वह स्थिति है। जब वायु में मनुष्य तथा उसके पर्यावरण के हानिकारक तत्व पहुंच जाते है। सामान्य शब्दों में वायु में हानिकारक गैंस, तरल, ठोस पदार्थो के मिश्रण से

वायु प्रदूषण होता है। सामान्य शब्दों में जब पर्यावरण में नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा ऑक्सीजन की मात्रा में उतार चढ़ाव आने लगता है। जो वायु प्रदूषण होना शुरू होता है।

अध्ययन क्षेत्र में वायु प्रदूषण दिन–प्रतिदिन एक विकट समस्या बनता जा रहा है। जिसका प्रमुख कारण शहरीकरण से नगरीकरण का स्तर धीरे–धीरे बढ़ता जाना है। फैक्ट्रियों से निकलने वाला धआँ, ईट उद्योग में आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल, परम्परागत तकनीक से अधिक प्रदूषण उत्पन्न कर रहा है। सिंगल युज प्लास्टिक निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न वायु प्रदूषण के स्तर को बढ़ रहे है। नवम्बर 2023 के आंकड़े के अनुसार प्रदुषण में हनुमानगढ जिला प्रथम स्थान पर रहा था तथा 27 नवम्बर 2023 को प्रकाशित आंकड़ो के अनुसार देश के सबसे प्रदुषित शहर था जिसकी प्रदुषण स्तर की माप 416 AQIrd पहुंच गई थी।

ध्वनी प्रदूषण :–

मनुष्य सामान्य रूप से अपने कानो से ध्वनि को एक निश्चित सीमा तक सुन सकता हैं। परन्तु जब कान सुनने के लिए तैयार न हो तो वही ध्वनि प्रदूषण है।

हनुमानगढ जिले के वातावरण में ध्वनि प्रदूषण एक विकट समस्या बनता जा रहा है। शहरी व नगरीकरण के बढते स्तर के कारण ध्वनि की तीव्रता (डेसीबल माप) अधिक बढती जा रही है। जिससे बहरापन, चिड़चिड़ापन, तनाव, अनिद्रा जैसी समस्याओं का शिकार व्यक्ति हो जाता है।

हनुमानगढ औद्योगिक क्षेत्रो में ध्वनि की तीव्रता 104 डेसीबल से अधिक थी जो सर्वाधिक स्थिति का विषय है। इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में औसत ध्वनि का माप सामान्य रूप से 95 से डैसीबल के मध्य रहता है। जो भविष्य की गंभीर बीमारियों को नियंत्रण दे रहा है।

जल प्रदूषण :–

जल में अंवाछित पदार्थो का मिलना तथा उसके गुणों को नष्ट करना जल प्रदूषण कहलाता है।

अध्ययन क्षेत्र रीको औद्योगिक क्षेत्र की फैक्ट्रियों खुले में अपशिष्ट छोड़ती है। जो नालियों के जरीये भूमिगत को भी प्रदूषित करता है। इन्दिरा गाँधी नहर तथा इसकी वितरिकाओं से आने वाले जल में वांछित मल, व अन्य रासायनिक पदार्थो के मिश्रण के कारण जल के प्रदूषण की मात्रा बढती जा रही है। जिससे टाइफाइड, चेचक, पीलिया, संखिया, इत्यादि रोगों के रोगियो की संख्या दिन–प्रतिदिन बढती जा रही है।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रभाव :–

1. पर्यावरण प्रदूषण से सांस रोगियो की संख्या में वृद्धि।
2. प्रदूषित जल से हैजा, पिलिया, तपेदिक, टाइफाइड जैसे अनेक प्रकार की बीमारियां उत्पन्न होती है।
3. ध्वनि प्रदूषण से मनुष्य संवेदनाओं व सोने की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
4. वायु प्रदूषण से परिस्थितिकी तन्त्र असंतुलित हो जाता है।
5. वायुमण्डल का प्रभाव मौसम तथा बादलों, तापमान, वर्षा आदि पर भी पड़ता है। जिसमें नगरों में कोटरे की समस्या का जन्म होता है।

प्रदूषण नियंत्रण के उपाय :–

1. विभिन्न उद्योगों की चिमनियों में प्रदूषण नियंत्रण लगाने चाहिए।
2. वन विनाश की रोकथाम करना तथा वृक्षारोपण करना।

3. दूषित जल को उपचारित करके उसे विभिन्न क्रियाओं में प्रयोग करना।
4. पर्यावरण प्रदूषण के प्रति लोगों को जागरूक करना।
5. अधिक प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों के लिए स्थान निश्चित करना।

सन्दर्भ :-

1. डॉ॰ रविन्द्र नाथ कुमार (2016)– पर्यावरण प्रदूषण एक अध्ययन।
2. गुर्जर आर॰ के॰ एव जाट बी॰ सी॰ (2004)– पर्यावरण भूगोल पंचशील प्रकाशन।
3. खुल्लर डी॰ आर॰– प्रयोगात्मक भूगोल के तत्व (2002) जालन्धर पब्लिकेशन।
4. YADAV RN. (2007) "IMAPACT OF GORUND WATER DEPLECTION ON SCOIO-ECONOMIC CONDITION IN SOUTH WEST HARYANA CASE", VOL. 24, NAGI, NEW DELHIण
5. भल्ला एल॰ आर॰– राजस्थान का भूगोल।
6. तिवारी ए॰ (2014) – जनसंख्या वृद्धि एंव पर्यावरण सुरक्षा, कृष्ण कम्प्यूटर्स एंव प्रिटिंगस सागर, पृ॰ क्र॰ 237–238।
7. श्रवण कुमार प्रजापत, संजीव बंसल (2018)– राजस्थान में पर्यावरण समीक्षात्मक अध्ययन।
8. भारत में उर्जा समीक्षा का परिदृश्य 2047 का उपभोग।
9. अमजोध एल॰ आर॰ और बावनेश (2022)–नवीकरणीय उर्जा के रूप में बायोमास और पवन एक समीक्षा।
10. जैव विविधता संरक्षण अधिनियम – 2002
11. त्रिपाठी, शिलप्रिय– पर्यावरण और वन विनाश योजना, 1994
12. पर्यावरण विकास – राष्ट्रीय मासिक पत्रिका, सितम्बर, 2021
13. शर्मा योगेन्द्र– पर्यावरण संरक्षण, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2005

ई–मेल – pawan.suthar.pawan225@gmail.com

Mob. No. 7597058859

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 100-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में दांपत्य संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन

नयना जैन, शोधार्थी
डॉ० सुमन कौशिक, मार्गदर्शिका
सी० एम० आर विश्वविद्यालय, बैंगलुरु।

तुलनात्मक अध्ययन : अर्थ एवं स्वरूप :–

तुलनात्मक साहित्य, तुलनात्मक अध्ययन आदि शब्द विद्वानों के व्यापक विचार–विमर्श के विषय रहे हैं। अंग्रेजी कवि 'मैथ्यू आर्नल्ड' ने सन् 1848 में अपने एक पत्र में सबसे पहले 'कंपैरेटिव लिटरेचर' शब्द का प्रयोग किया था। हमारे देश में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का पहला विभाग 'जादवपुर विश्वविद्यालय' में 1956 ई. में स्थापित हुआ था। 'तुलनात्मक साहित्य' और 'तुलनात्मक अध्ययन' इन दोनों ही पदों के प्रयोग को लेकर विद्वानों में शुरू से मतभेद रहे है। प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी ने तुलनात्मक शब्द पर विचार करते हुए कहा है कि तुलनात्मक शब्द में तुलना करने की प्रक्रिया जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे उनमें साम्य या वैषम्य का पता लग सके। अतः कहा जा सकता है कि तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत किसी भी साहित्य या कृति को श्रेष्ठ या निकृष्ट घोषित करने का यत्न नहीं होता बल्कि उन दोनों का ही कुछ समान तथा असमान आधारों पर अध्ययन करते हुए उनके प्रभाव स्त्रोतों को जानने का प्रयत्न किया जाता है।

तुलनात्मकता एक विशेष प्रकार की मानसिकता अथवा मानसिक दृष्टि है जो एक ही भाषा में लिखित साहित्य के अध्ययन, दो या उससे अधिक भाषाओं में रचित साहित्य के अध्ययन तथा दो अलग–अलग राष्ट्रों की भाषाओं में लिखित साहित्य के अध्ययन के समय अलग–अलग दृष्टिकोण से कार्य करती है।

उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्यों के बीच रहकर ही किसी कृति की रचना करता है। हिंदी साहित्य अकादमी पुरस्कृत महिला उपन्यासकार कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी तथा चित्रा मुद्गल ने अपने कथा साहित्य में मानवीय संबंधों के महत्व को प्रतिपादित किया है। मानव जीवन में व्याप्त विविध संबंधों को सूक्ष्मता के साथ अंकित किया है। इस शोध आलेख में दांपत्य संबंधो के विविध पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

मानव जीवन, सुख–दुख, हर्ष–विषाद एवं द्वेष–प्रेम का समष्टिगत रूप है। मानवीय संबंध रुचिकर और अरुचिकर दोनों प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म मनोभावों से निर्मित इन संबंधों को तथा संबंधों में उलझे मानव को

निश्चित शब्दों में लिखना बहुत कठिन कार्य हैं। इसलिए किसी भी साहित्यकार के लिए दांपत्य संबंधों के स्वरूप को निश्चित रूप में पहचानना चुनौतीपूर्ण कार्य रहा हैं।

दांपत्य संबंधो का तुलनात्मक अध्ययन :-

पति–पत्नी का संबंध समाज तथा परिवार की नींव होता है। यह संबंध केवल दो व्यक्तियों का नहीं बल्कि दो परिवारों का मिलन होता है। भारतीय संस्कृति में विवाह एक पवित्र बंधन माना गया है, जिसमें पति–पत्नी जीवनभर साथ रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। इस संबंध में प्रेम, सम्मान, विश्वास, सहयोग, त्याग और समर्पण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परंतु आधुनिक जीवन शैली की विविध विसंगतियों और विषमताओं के यथार्थ स्वरूप पति–पत्नी के संबंधों में परिवर्तन आया है। प्राचीन काल में पत्नी अपने पति को परमेश्वर का दर्जा देती थी, लेकिन वर्तमान में वह अपने पति को एक सहयोगी के रूप में देखती है। पत्नी अपने पति से प्रेम सहयोग तथा सम्मान की अपेक्षा रखती हैं। कुछ विषम परिस्थितियों से प्रभावित होकर पति–पत्नी एक दूसरे की उम्मीद पर खरे नहीं उतर पाते हैं तथा संबंधों में दरार पैदा हो जाती है। इसी बनते–बिगड़ते मानवीय संबंधों को महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है।

सौहार्द्रपूर्ण संबंधो के अंतर्गत 'जिंदगीनामा' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने पति–पत्नी के मधुर संबंधों का चित्रण किया है। शाहजी तथा शाहनी एक दूसरे से बहुत प्रेम करते हैं। शाहजी अपनी पत्नी की सारी इच्छाएं पूर्ण करने में तत्पर दिखाई देते हैं। शाहनी जब पुत्र न होने पर लड़का गोद लेने की बात अपने पति से कहती है तो शाहजी उसकी पीड़ा समझते हैं और कहते हैं– जो तेरे मन को अच्छा लगे वह कर ले। इस प्रकार पति–पत्नी का प्रेम तथा सम्मान पूर्ण संबंध इस उपन्यास में चित्रित किया गया है।

नासिरा शर्मा ने 'शाल्मली' उपन्यास में भी एक कामकाजी पत्नी का चित्रण किया है। लेकिन इस उपन्यास में शाल्मली अपना घर तथा नौकरी दोनों अच्छे ढंग से संभालती है। शाल्मली अपने पति से भी अधिक वेतन पाकर पूरे घर का संपूर्ण भार–व्यय अपने कंधों पर लेती है। लेकिन शाल्मली के पति नरेश को शाल्मली का नौकरी करना पसंद नहीं है। शाल्मली के अधिक वेतन पाने से नरेश कुंठित हो जाता है। वह बार–बार शाल्मली को अपने दोस्तों के सामने अपमानित करता है। वह शाल्मली के वेतन से अय्याशी करता है और शाल्मली के दफ्तर के कार्य से विदेश जाने पर पराई औरत को भी घर लेकर आता है। शाल्मली यह सहन नहीं कर पाती हैं तथा नरेश को तलाक देने का सोचती है। लेकिन अंत में वह नरेश को तलाक न देकर उसके साथ ही रहती है। एक भारतीय पत्नी ही अपने पति की सारी गलतियों को माफ कर अपनी धैर्यता का परिचय दे सकती है। कई बार पति के अत्याचार की वजह से दांपत्य संबंधों में मनमुटाव या दरार पड़ जाती है। शाल्मली एक शिक्षित नारी होने पर भी अन्याय सहती है तथा धैर्य के साथ अपने पति को सही रास्ते पर लाती हैं।

आधुनिक दाम्पत्य जीवन को असौहार्द्रपूर्ण संबंधो की दृष्टि से कई श्रेणियों में बांटा जा सकता है। 'मिलजुल मन' उपन्यास में गुल और शमित परिवार की रजामंदी से प्रेम विवाह करते हैं। शादी के आठ महीने बाद ही उन्हें जुड़वां बच्चे होते हैं। गुल बच्चों की परवरिश में व्यस्त हो जाती है तथा शमित को समय नहीं दे पाती है। गुल अपने विवाह को चुकने से बचाने की खातिर हर संभव प्रयास करती है। लेकिन शमित शराब पीकर घर में देरी से आने लगता है। वह गुल की घर के कार्य में या बच्चों की देखभाल करने में तनिक भी सहयोग नहीं करता है। करवाचौथ के दिन भी शमित शराब पीकर देरी से घर आता है और गुल उसके इंतजार में व्रत

नहीं खोल पाती। इस प्रकार दोनों के संबंधों में मनमुटाव हो जाता है।

मृदुला गर्ग के 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में पति–पत्नी के संबंधों के टूटने की व्यथा अभिव्यक्त हुई है। मनीषा विवाह के कुछ वर्ष पश्चात जितेन को छोड़कर अपने प्रेमी मधुकर के साथ चली जाती है। चार वर्ष बाद जितेन के वापस होटल में मिलने से वह उसके साथ संबंध बनाती है तथा मधुकर को छोड़ वापस जितेन के पास जाने का मन बनाती है। यहां पति–पत्नी के संबंधों का अलग ही रूप दिखाई देता है। जितेन अपनी पत्नी से प्रेम करता था इसलिए बिना कुछ कहे वह मनीषा के निर्णय को स्वीकार कर उसे जाने देता है। मनीषा प्रेम की तलाश में कभी मधुकर तो कभी जितेन से संबंध बनाती है लेकिन अंत में उसे अपनी गलती का एहसास होता है तथा वह मधुकर के साथ ही रहती है। इस प्रकार पति–पत्नी के संबंध में तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति संबंधों को तोड़ देती है।

महानगरीय जीवन में आधुनिक शिक्षा संस्कृति व नवीन मूल्य के प्रभाव से पति–पत्नी के बीच परस्पर भावुकता व आत्म त्याग का स्थान बौद्धिकता तथा भौतिक सुख–सुविधा ने अनिवार्य रूप से ले लिया है। अलका सरावगी के 'कलि–कथा : वाया बाईपास' उपन्यास में पति–पत्नी संबंधों में धैर्य तथा आपसी समझ की कमी के दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। किशोर बाबू का लड़का अपने पिता से कहता है– "अरुण की पत्नी ने आत्महत्या कर ली क्योंकि अरुण उसे अपनी शादी की सालगिरह पर 'ताज बंगाल' नहीं ले गया था 'सेलिब्रेट करने'। और कांता भाभी का तो सबको मालूम ही है– नए फर्नीचर और गहनों केसेट का दाम दिया नहीं भैया जी ने, इसलिए ऐन दिवाली के पहले जहर खा लिया।... क्या आप चाहते हैं कि जो भैयाजी के साथ हुआ, मेरे साथ भी वही हो?" इस प्रकार आज मानवीय संबंधों में अर्थ (धन) के बढ़ते महत्व का संबंधों पर अभूतपूर्व प्रभाव इस उपन्यास में देखा जा सकता है।

'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने पत्नी की मृत्यु हो जाने पर पति की परवशता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। नरेंद्र के पिता, पत्नी की मृत्यु के बाद जब अपने पुत्र के साथ रहने जाते हैं तो उन्हें समझ आता है कि पत्नी का जीवन में क्या मूल्य होता है– "नरेंद्र की अम्मा के न रहने पर यह भी समझ में आया कि उनका अक्सर ऊबकर यह सोचने लगना कि उसके न रहने पर ही उनके दिन चैन से कटेंगे, कितना बड़ा भ्रम था।" नासिरा शर्मा के 'पारिजात' उपन्यास में सांस्कृतिक असमानता के कारण पति–पत्नी के संबंध टूट जाते हैं। रोहन की मां अपनी डायरी में रोहन की शादी के संबंध में लिखती है–"दोनों की तबीयत में बहुत फर्क है। एक अंदर यात्रा करता है, दूसरा बाहर। दो कल्चर का यह गठबंधन जाने क्यों मुझे शंकित करता है।" रोहन की मां की शंका आगे चलकर सच साबित होती है। रोहन की विदेशी पत्नी ऐलेसन उनके बच्चे टेसू को लेकर घर से भाग जाती है तथा रोहन को झूठे केस में जेल में डलवा देती है। ऐलेसन धन के लालच में नौकरी करती है तथा अपने बेटे टेसू की देखभाल भी नौकरी की वजह से नहीं कर पाती है। वह अपनी नौकरी व दोस्तों में व्यस्त रहती है तथा रोहन को भी समय नहीं देती हैं, जिससे उनका दांपत्य जीवन चरमराने लगता है और अंत में ऐलेसन रोहन का सारा धन तथा टेसू को लेकर घर से भाग जाती है। अतीव धन की लालसा उनके संबंधों को तोड़कर रख देती है।

निष्कर्षत दांपत्य संबंधों को सुचारू रूप से चलाने के लिए पति–पत्नी में प्रेम और सम्मान की भावना होना अति आवश्यक है। एक स्त्री को वैवाहिक जीवन में पत्नी होने के साथ–साथ मां, बहन, सहेली, बहू, भाभी

आदि भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। अगर स्त्री में भावुकता व प्रेम है, तो वह विविध भूमिकाओं का बखूबी से निर्वाह कर सकती है। यह सभी संबंध पति–पत्नी के बीच मधुरता का निर्माण करने में भी सहायक होते हैं। पति–पत्नी के संबंधों में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति व सम्मान का होना अनिवार्य है। पति–पत्नी को अपने वैवाहिक जीवन में कर्तव्यों का भली–भांति पालन करना अति आवश्यक है। पति को धन कमाने के अतिरिक्त पत्नी की जरूरतों का ध्यान रखना भी जरूरी है। तभी पति–पत्नी के संबंध अटूट व प्रेमपूर्ण हो सकते हैं।

वर्तमान में दांपत्य संबंधों में आपसी समझ एवं विश्वास की कमी दिखाई दे रही है। हर सुख–दुःख में साथ निभाने का वादा करने वाले पति–पत्नी दुःख में साथ छोड़कर भाग रहे हैं। आज पति–पत्नी अपने संबंधों को निभाना चाहते हैं और उन्हें सहेज कर रखना चाहते हैं लेकिन धैर्य के अभाव में संबंध टूट कर बिखर जाते हैं। महानगरीय जीवन में आधुनिक शिक्षा–संस्कृति व नवीन मूल्य दृष्टि के प्रभाव से भावुकता व प्रेम का स्थान बौद्धिकता और स्वार्थ ने ले लिया है, जिससे दांपत्य जीवन में अलगाव और तनाव की स्थितियां पैदा हुई है। पति–पत्नी के अहं की आग में मासूम संतान झुलस रही है। तलाक की स्थिति आने पर संतान की परवरिश आज बड़ी समस्या बन गई है। इस प्रकार दांपत्य संबंध अर्थ–लालसा, नारी की परिवर्तित दृष्टि, स्वतंत्र अस्तित्व की चाह, पाश्चात्य संस्कृति तथा पुरुष की अहंकारवादी प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति के जीवन में विभिन्न प्रकार के संबंधों का अस्तित्व पाया जाता है। हिंदी साहित्य अकादमी पुरस्कृत महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मानवीय संबंधों के विविध पहलुओं का सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके द्वारा चित्रित प्रत्येक संबंध वर्तमान युग के ढांचे में सही बैठता है।

आज दांपत्य संबंधों में आ रहे बदलाव को भी उक्त उपन्यासों में उभारा गया है। आज संबंधों में आत्मीयता व विश्वास की कमी के कारण संबंध टूटने की कगार पर दिखाई देते हैं। आज अधिकतर मानवीय संबंध स्वार्थ वृत्ति व अहंकार के रस में डूबे दिखाई देते हैं। महानगरीय जीवन शैली ने मनुष्य को स्वार्थी व अमानवीय बना दिया है तथा आत्मीय संबंधों में अलगाव पैदा कर दिया है।

दांपत्य संबंधों का अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य हमारे समक्ष आता है कि आज हमारे संबंधों के निर्धारण की धुरी सामाजिक–नैतिक नियमों से परे हटकर आर्थिक धरातल पर टिक गयी है। संबंधों की टूटन से मानव तनाव, कुंठा व अकेलेपन से घिरता जा रहा है।

संदर्भ सूची :–

1. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा।
2. मृदुला गर्ग, मिलजुल मन।
3. नासिरा शर्मा, शाल्मली।
4. नासिरा शर्मा, पारिजात।
5. अलका सरावगी, कलि–कथा : वाया बाईपास।
6. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 104-111

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कोरोना महामारी और उसका शिक्षा पर प्रभाव

डॉ. चमन सिंह

.....

21वीं सदी के दूसरे दशक के अंतिम चरण में चीन के वुहान शहर से चीन की सीमाओं से बाहर निकल कर कोरोना जब दुनियाभर में फैलने लगा तब किसी को अंदाजा नहीं था कि कोरोना इस तरह से एक वैश्विक महामारी का रूप धारण करेगा और विश्व के तमाम देशों के लाखों लोगों की अकस्मात मृत्यु का कारण बनेगा। लेकिन देखते ही देखते जिस तरह से कोरोना वायरस ने इटली, जर्मनी, फ्रांस, कनाडा, अमेरिका, इंग्लैंड तथा ब्राजील आदि विभिन्न समृद्ध देशों को बुरी तरह प्रभावित किया। उससे पूरा विश्व यह सोचने के लिए मजबूर हो गया कि इस महामारी से अपने नागरिकों को कैसे बचाया जाए। जब कोरोना अपने प्रारंभिक चरण में था उस समय किसी को यह मालूम नहीं था कि कोरोना कुछ महीनों के पश्चात इतना विकराल रूप धारण करेगा। कोरोना तीव्र गति से दुनिया के विभिन्न देशों में फैलने लगा। इस प्रकार जब कोरोना महामारी ने विश्व के कई समृद्ध देशों के आम जनजीवन को बुरी तरह से प्रभावित करके रख दिया तो फिर विकाशशील और अविकसित देशों की स्थिति क्या रही होगी इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। इन देशों में लाखों लोग कोरोना से संक्रमित हुए और लाखों लोगों की जान चली गई। विश्व के यह समृद्ध देश अपनी पूरी ताकत झोंकने के बावजूद भी कोरोना के भयंकर दुष्प्रभावों को रोकने में असफल रहे। इस कोरोना महामारी के कारण विश्व भर में सड़कें, बाजार, पर्यटन स्थल और धार्मिक स्थल इत्यादि हर जगह एकदम सन्नाटा पसरा हुआ था और कहीं चहल–पहल की कोई भी संभावना नहीं रह गई थी। कोरोना महामारी ने पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को बुरी तरह से प्रभावित कर दिया था।

कोरोना से बचने के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर जारी किए गए दिशा निर्देशों का अक्षरशः पालन करना अत्यंत आवश्यक था। ऐसे समय में एक व्यक्ति की लापरवाही कई लोगों के जीवन को खतरे में डाल सकती थी। इसके लिए कोरोना से बचने के लिए सोशल डिस्टेंसिंग, निरंतर साबुन से हाथ धोते रहना, घर से बाहर नहीं निकलना तथा मास्क पहनना अत्यंत आवश्यक हो गया था। इसके साथ–साथ अपनी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने पर भी बल दिया जाने लगा। इस दिशा में लोगों को जागरूक करने के लिए योगगुरु स्वामी रामदेव जी ने निरंतर योगाभ्यास और प्राणायाम से संबंधित कार्यक्रमों का आयोजन किया जिसके बहुत ही सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए। इस प्रकार कोरोना काल में विभिन्न सावधानियों के अतिरिक्त शुद्ध शाकाहारी भोजन ग्रहण करना भी उतना ही आवश्यक माना गया क्योंकि मांसाहार पर कोरोना वायरस को लेकर हुए शोधों से प्राप्त आंकड़ों से यह पता चला कि देश और दुनिया में जो लाखों लोग कोरोना से संक्रमित हुए या

जिनकी मृत्यु हुई उनमें शाकाहारी व्यक्तियों की अपेक्षा मांसाहारी ज्यादा पाए गए। इस प्रकार इससे यह सिद्ध हुआ कि हमें संयमित होकर शुद्ध शाकाहारी भोजन ग्रहण करना चाहिए।

वैश्विक महामारी कोरोना ने लाखों लोगों की तो जान ली ही लेकिन इसके साथ–साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी बहुत नुकसान पहुँचाया और कई देशों की अर्थव्यवस्था को बहुत पीछे धकेल दिया। समाज का कोई भी अंग कोरोना के बुरे प्रभाव से अछूता नहीं रहा क्योंकि कई महीनों तक जिस तरह से पूरी दुनिया लॉकडाउन में चली गई उससे सारे कामकाज प्रभावित हुए। कोरोना महामारी के कारण उस समय के आंकड़ों पर यदि नजर डालें तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वर्क फ्रॉम होम की अवधारणा ने भारतीय ही नहीं बल्कि संपूर्ण वैश्विक मानवीय कार्यशैली को बदल कर रख दिया। इसके परिणामस्वरूप आज संपूर्ण विश्व में वर्क फ्रॉम होम के माध्यम से विभिन्न कार्यों को सफलता पूर्वक ढंग से किया जा रहा है। कोरोना महामारी के इस संकट भरे दौर में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुचारु रूप से आगे बढ़ाने के लिए इसके अतिरिक्त और दूसरा कोई सर्व सुलभ मार्ग नहीं हो सकता था। इस प्रकार वैश्विक संकट के इस दौर में शिक्षा के अतिरिक्त कई अन्य कार्यों को करने का भी दूसरा कोई विकल्प मौजूद नहीं था।

शिक्षा के क्षेत्र में कोरोना काल ने दुनिया को जो एक नई कार्यशैली प्रदान की वह है ई लर्निंग, ऑनलाइन प्रणाली जिसके माध्यम से आज हमारे देश में शैक्षणिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं। हालांकि भारत जैसे विकासशील और विशाल देश में विभिन्न समस्याओं के चलते समस्त भारतीय छात्रों को ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करना इतना सरल नहीं है लेकिन तमाम समस्याओं और चुनौतियों का सामना करते हुए दृढ़ संकल्प और मजबूत इच्छाशक्ति के साथ जिस तरह से देश आगे बढ़ रहा है उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि हम यथाशीघ्र इसमें सफल होंगे और भारत दुनिया के समृद्ध देशों की तरह दुर्गम से दुर्गम क्षेत्रों में पढ़ रहे बच्चों को भी बेहतर इन्टरनेट सुविधा उपलब्ध कर ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था प्रदान करने में कामयाब होगा।

आज वैश्विक महामारी कोरोना के दुष्प्रभावों को देखते हुए विभिन्न स्तरों पर ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को विकसित करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल एवं रोचक बनाने के लिए तथा सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए विभिन्न स्तरों पर योजनाएं बनाई जा रही है। कोरोना महामारी ने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में ऑनलाइन शिक्षण, ई लर्निंग तथा अन्य आधुनिक तकनीकों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के नए रास्ते खोजने के लिए सभी को मजबूर कर दिया।

भारत में विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा शिक्षा से जुड़ी विभिन्न संस्थाओं द्वारा कोरोना महामारी के शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों पर राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय वेबीनार और सम्मेलन आयोजित किए गए जिसमें देश और विदेश के महान शिक्षाविद, प्रोफेसर तथा कई महान शिक्षक एवं विचारक कोरोना के भारतीय शिक्षा पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों पर अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किए। कोरोना काल में और इसके पश्चात भारतीय शिक्षा की दिशा और दशा क्या होगी और भविष्य में कौन–कौन से साधनों का प्रयोग करते हुए हम अपने शैक्षिक उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं, इन सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं पर निरंतर सार्थक संवाद और चर्चाएं हुई। हमारे देश में इस समस्या के समाधान के लिए विभिन्न स्तरों पर किए गए प्रयासों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि निश्चित रूप से संकट के इस दौर में भी हम शिक्षा के क्षेत्र में एक बेहतरीन योजना का निर्माण करने

में सफल हुए जो देश के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

वैश्विक महामारी कोरोना ने विश्व के अन्य देशों की तरह ही भारतीय शिक्षा प्रणाली को बुरी तरह प्रभावित किया। भारत में कोरोना काल में ऑनलाइन टीचिंग तथा ई लर्निंग की अवधारणा को मजबूती मिली और शिक्षकों ने वर्क फ्रॉम होम की अवधारणा को अपनाकर अपने–अपने घरों से ही अपने विद्यार्थियों को विभिन्न माध्यमों से शिक्षा प्रदान करने का महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय कार्य किया।

कोरोना काल में यूट्यूब पर ऑडियो, वीडियो के माध्यम से विद्यार्थियों तक पहुँचना या फिर ऑनलाइन शिक्षण के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरे जूम एप, वेबैक्स, गूगल मीट आदि कई ऐसे माध्यम सामने आए जिनके द्वारा ऑनलाइन शिक्षण की प्रक्रिया को सफलता पूर्वक ढंग से आगे बढ़ाने की दिशा में हम तेजी से आगे बढ़े और अब यह वर्तमान समय की एक आवश्यक मांग बन चुका है।

मगर यह बात सच है कि इन साधनों का प्रयोग करते हुए ऑनलाइन शिक्षण प्रक्रिया को सुचारू रूप से संपन्न करने के लिए सभी भारतीय शिक्षण संस्थान, शिक्षक और शिक्षार्थी अभी पूरी तरह तैयार नहीं थे। अचानक कोरोना महामारी के भयानक संकट ने ऑनलाइन टीचिंग के बारे में सोचने के लिए हम सभी को बाध्य कर दिया।

भारत एक विशाल देश है और इसकी अधिकांश आबादी गाँव में रहती है। भारत के कई गाँवों में आज भी निर्धनता है और बेहतर शिक्षा संस्थानों और सुविधाओं का अभाव है। बहुत सारे गाँव ऐसे हैं जहाँ आज भी अच्छी इंटरनेट सुविधा नहीं है और विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों के पास लैपटॉप या एंड्रॉयड स्मार्टफोन नहीं है। इस प्रकार ऐसी परिस्थितियों में इन आधुनिक उपकरणों के अभाव में कैसे शत प्रतिशत छात्रों तक ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से पहुँचा जाए और उन्हें बेहतर ढंग से ऑनलाइन शिक्षा प्रदान की जाए यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न था।

हमारे देश में आज भी लाखों परिवार ऐसे हैं जो अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दिन भर मजदूरी करते हैं, दूसरों के घर काम करते हैं और अपना गुजारा करते हैं। हमारे देश के किसान दिन भर खेतों में काम करते हैं और उससे जो धन अर्जित करते हैं उसी से अपने परिवार का पालन पोषण करते हैं तथा अपने बच्चों की शिक्षा का भी प्रबंध करते हैं। ऐसी स्थिति में हर विद्यार्थी के पास ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के माध्यम से अपनी पहुँच बनाना शिक्षकों के लिए अत्यंत कठिन कार्य अवश्य रहा क्योंकि हमारे देश का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी गरीबी रेखा के समीप या गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है। इस प्रकार ऐसे परिवारों के उन बच्चों तक ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के माध्यम से पहुँचना बहुत कठिन है जिनके पास एंड्रॉयड स्मार्टफोन नहीं है तथा जिनके पास लैपटॉप नहीं है या जहाँ बेहतर नेटवर्क नहीं है। ऐसे लोग जिनके पास इस तरह की आधुनिक सुविधाएं नहीं हैं और अगर किसी के पास है भी तो वहाँ इंटरनेट की बेहतर सुविधा नहीं है और कई जगह बिजली की उचित व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार इन सभी सुविधाओं के अभाव में ई लर्निंग तथा ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को विकसित करना बहुत ही कठिन कार्य है।

फेसबुक पर किए गए एक सर्वे के आधार पर कई चौंकाने वाले आंकड़े सामने आए हैं। इस सर्वेक्षण में देश के विभिन्न प्रांतों के शिक्षकों ने तथा शिक्षार्थियों और अभिभावकों ने भाग लिया। जिसमें अधिकांश लोगों ने यह माना कि भारत में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऑनलाइन शिक्षा तथा ई लर्निंग की अवधारणा को आगे बढ़ाना बहुत

कठिन कार्य है क्योंकि अधिकांश लोगों के पास उस तरह की सुविधाएं नहीं है, कहीं बिजली नहीं है, कहीं इन्टरनेट नहीं है और कहीं एंड्रॉयड फोन और लैपटॉप नहीं है जिससे हम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को आगे बढ़ा सकें और सफलता पूर्वक संपन्न कर शैक्षणिक उपलब्धियों, उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

प्राथमिक शिक्षा पर विभिन्न अभिभावकों तथा शिक्षकों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जिस तरह से छोटे बच्चों को ऑनलाइन टीचिंग के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है वह उनके शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास के लिए बहुत घातक सिद्ध हो सकती है क्योंकि होमवर्क करने के लिए घंटों तक लैपटॉप या एंड्रॉयड फोन के आगे बैठकर काम करना छोटे बच्चों को बुरी तरह प्रभावित करता है। छोटे बच्चों के लिए एंड्राइड फोन का अधिक प्रयोग उनकी आंखों को भी हानि पहुँचा सकता है। इस तरह से कोरोना काल में जिस तरह से हमारी शिक्षा प्रणाली प्रभावित हुई उसके लिए फिलहाल किसी अंतिम निष्कर्ष तक पहुँचना बहुत ही कठिन कार्य है।

इस सम्बन्ध में कई शिक्षित विद्वत जनों, बुद्धिजीवियों तथा शिक्षाविदों का मानना है कि कोरोना काल में प्राथमिक स्तर पर बच्चों को अध्यापकों द्वारा जो गृहकार्य दिया गया उससे उन छोटे बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नकारात्मक प्रभाव पड़ा। जिस बाल्यावस्था में हम अपने बच्चों को एंड्राइड फोन से दूर रखना चाहते थे कोरोना महामारी ने हमें उसी एंड्रॉयड फोन को अपने बच्चों को देने के लिए मजबूर कर दिया।

हिमाचल प्रदेश से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार हिमाचल प्रदेश में स्कूली स्तर तक बच्चों के लिए ऑनलाइन शिक्षण का प्रावधान किया गया था जो कुछ दिनों तक निरंतर चलता रहा लेकिन इसके जब नकारात्मक परिणाम तथा कई दुष्प्रभाव सामने आने लगे तो इस पर सवाल उठने लगे और अभिभावकों को जब महसूस हुआ कि इसका बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है तो उन्होंने ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के प्रति अपना विरोध जताया और सरकार से मांग की कि इस तरह से प्राथमिक स्तर के बच्चों को ऑनलाइन पढ़ाना उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करने जैसा है। इसीलिए बच्चों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए ऑनलाइन शिक्षण को तुरंत प्रभाव से बंद कर देना चाहिए। हिमाचल प्रदेश के हजारों अभिभावकों तथा शिक्षकों के सुझावों को हिमाचल प्रदेश सरकार ने स्वीकार किया और वहाँ कुछ समय के लिए प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को ऑनलाइन पद्धति के माध्यम से शिक्षा देना बंद कर दिया गया जिसके कारण बच्चों के साथ–साथ अभिभावकों ने भी राहत की सांस ली। इस प्रकार इस सम्बन्ध में उस समय सोचने वाली बात यह थी कि यदि कोरोना का प्रभाव लंबे समय के लिए रहता है तो लंबे समय के लिए बच्चों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कैसे रखा जा सकता है। अभिभावकों का यह कहना था कि दिन भर हमारे छोटे–छोटे बच्चे एंड्रॉयड फोन के सामने बैठे रहते हैं और शिक्षक ऑनलाइन पढ़ाते रहते हैं। समाज के जागरूक शिक्षित वर्ग का मानना था कि ऐसी शिक्षा के बहुत ही खतरनाक दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। इसलिए सरकार ने लोगों के सुझावों को स्वीकार किया और हिमाचल प्रदेश में ऑनलाइन शिक्षा को कुछ समय के लिए बंद कर दिया गया। कोरोना काल में इस स्थिति से निपटने के लिए कोई और विकल्प मौजूद नहीं था। इस प्रकार भारत के विभिन्न प्रांतों में भी यही स्थिति बनी हुई थी।

कोरोना काल में देश के सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ कि विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में परीक्षाएं कैसे संचालित की जाए और उसके मूल्यांकन की प्रक्रिया को कैसे सफलता पूर्वक संपन्न किया जाए। इसके लिए देशभर के महान शिक्षकों तथा शिक्षाविदों ने अपने–अपने महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत

किए जिन पर गहन विचार विमर्श करने के पश्चात परीक्षाओं के आयोजन के लिए सरकार के साथ–साथ तमाम स्कूल शिक्षा बोर्ड और विश्वविद्यालयों ने विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य को ध्यान में रखते हुए इसके संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय लिए। कोरोना के बढ़ते खतरों को देखते हुए परीक्षाओं के सफल आयोजन तथा संचालन के सम्बंध में कुछ बुद्धजीवियों ने माना कि बिना परीक्षा के विद्यार्थियों को प्रमोट कर अगली कक्षा में प्रवेश दिया जाए लेकिन कुछ शिक्षक उच्च शिक्षाशास्त्री, बुद्धिजीवी वर्ग ऑनलाइन परीक्षा कराने के पक्षधर रहे।

वैश्विक महामारी कोरोना ने विश्व की बड़ी–बड़ी व्यवस्थाओं को धराशाई कर दिया। कोरोना ने बड़े–बड़े महान चिंतकों और विचारकों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि किस तरह से देश की अर्थव्यवस्था को संभाला जाए, किस तरह से देश के नागरिकों को इससे बचाया जाए और उन्हें सुरक्षित रखा जाए तथा किस तरह से देश की शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाया जाए ताकि देश का भविष्य अन्धकारमय न हो जाए। इस तरह के बहुत सारे प्रश्न दुनिया के लगभग सभी देशों के सामने खड़े हुए जिनका स्थायी समाधान खोजना किसी के लिए भी आसान नहीं था।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने कोरोना संकट के बीच भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में तेजी से आगे बढ़ाने के लिए भारत के समस्त नागरिकों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने 135 करोड़ देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा कि हमें आत्मनिर्भर बनने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ना होगा स इसके लिए उन्होंने लोकल यानी स्वदेशी को बढ़ावा देने का सुझाव प्रस्तुत किया। लोकल से उनका अभिप्राय है कि हम स्वदेशी वस्तुओं का अधिक से अधिक प्रयोग करें, अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रयास करें और स्वावलंबी बनें।

हमारे देश में कोरोना के संकट भरे काल में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अन्य शिक्षण संस्थानों द्वारा शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए, तथा ज्ञानवर्धन के साथ–साथ शिक्षकों को आधुनिक तकनीकी से जोड़ने के लिए विभिन्न तरह के राष्ट्रीय वेबीनार, अंतरराष्ट्रीय वेबीनार, संगोष्ठी, कार्यशाला तथा संकाय संवर्धन कार्यक्रम संचालित किए गए। इस प्रकार इस संबंध में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि वैश्विक महामारी कोरोना ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नए युग का सूत्रपात किया। हमारे देश के बड़े–बड़े शिक्षाशास्त्री, प्रोफेसर तथा विषय विशेषज्ञ अपने बहुमूल्य विचार शिक्षार्थियों तथा शिक्षकों तक पहुँचा रहे हैं।

सोशल मीडिया के आधार पर प्राप्त आंकड़ों से यह पता चलता है कि कोरोना काल में ज्ञान का आदान–प्रदान तीव्र गति से हो हुआ। इसे कोरोना काल के एक सकारात्मक पक्ष के रूप में देखा जा सकता है। कोरोना महामारी के इस दौर ने हमें शिक्षा में आधुनिक तकनीकी, आधुनिक संसाधनों का सफलतापूर्वक प्रयोग करने के लिए बाध्य कर दिया। हर शिक्षक ने ऑनलाइन शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों तक अपने विचारों को पहुँचाने के लिए अथक प्रयास किए।

कोरोना काल में जिस तरह से विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों द्वारा राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों और कार्यशालाओं का आयोजन किया गया उतनी अधिक मात्रा में उससे पहले कभी नहीं देखा गया था। इसलिए यहाँ यह कहना तर्कसंगत होगा कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है और यह बात यहाँ निश्चित रूप से सत्य सिद्ध होती है। कोरोना ने वैश्विक कार्यशैली को तथा मानवीय जीवनचर्या को पूरी तरह से बदल कर रख दिया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विश्व ऑनलाइन शिक्षण तथा व्यक्ति

की कार्यशैली और विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिक तकनीकी विकास की ओर तेजी से बढ़ा क्योंकि कोरोना काल में विश्व मानवता के सामने इसके सिवा कोई दूसरा और विकल्प नहीं था।

इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए वर्क फॉर्म होम की आवश्यकता, महत्व और उपयोगिता को समझा गया। राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य की तस्वीर को सामने रखते हुए हम इन साधनों के साथ किस तरह से वैश्विक प्रतिस्पर्धा में तेजी से आगे बढ़ सकते हैं, उन महत्वपूर्ण विषयों पर गहनता से विचार किया गया।

कोरोना काल में शिक्षा प्रक्रिया को कैसे आगे बढ़ाया गया और इसके लिए शिक्षा विभाग द्वारा क्या कदम उठाए गए, इस संबंध में अरुणाचल प्रदेश शिक्षा सचिव निहारिका राय जी से न्यूज चौनल द्वारा लिए गए साक्षात्कार के कुछ अंश प्रस्तुत हैं.....।

शिक्षा प्रकिया की भावी रणनीति के संबंध में पूछे गए सवाल का जवाब देते हुए शिक्षा सचिव ने कहा कि ष्आज के परिवेश में जो हम सोच रहे हैं वह यह है कि भविष्य में विभिन्न स्तरों पर कक्षाओं का संचालन करने के लिए सोशल डिस्टेंसिंग का पूरा ध्यान रखा जाएगा। हमने टीवी बेस्ट ऑनलाइन एजुकेशन सिस्टम भी शुरू किया है। स्वयं प्रभा चैनल पर 9 से 12 स्टैंडर्ड की क्लासेस रोज सुबह 7:00 से दोपहर 1:00 बजे तक आती है जिसमें रिकॉर्डिंग लेसन स्टूडेंट्स को दिए जाते हैं। इस के माध्यम से हम बच्चों को ऑनलाइन शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इसी तरह के कुछ प्रावधान कक्षा छह से आठ तक के छात्रों के लिए भी किए गए हैं। हमारे राज्य में इंटरनेट की पहुँच बहुत कम है इसलिए हम टीवी पर ज्यादा फोकस कर रहे हैं। अगर इंटरनेट वर्सेस टीवी की बात करें तो हमने यह पाया है कि टीवी की तुलना में इंटरनेट कनेक्टिविटी ज्यादा घरों में नहीं होगी। इसलिए टीवी ही एक माध्यम है जिसके द्वारा हम शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए प्रयासरत हैं। हमने टीवी का मैकेनिज्म अडॉप्ट किया है। मुझे यकीन है कि टीवी एक ऐसा माध्यम है जिससे घर में सोशल डिस्टेंसिंग के साथ यह सम्भव हो पायेगा। यदि किसी घर में टीवी नहीं है तो दो–तीन बच्चे भी एक टीवी के जरिए शिक्षा ग्रहण करें तो इसको प्रमोट करने का प्रयास किया जाएगा। जब स्कूल फिर से पूरी तरह से खुलेंगे तो इसमें सेफ्टी गाइडलाइंस क्या होंगे इसके बारे में हम यह सोच रहे हैं कि छोटे–छोटे सेक्शन बनाए जाएंगे। एक कक्षा में 15 से 20 से अधिक बच्चे नहीं बैठेंगे। बच्चों के लिए सैनिटाइजर, हैंडवाश तथा मास्क की सुविधा रहेगी। बच्चों के लिए जो भी बेस्ट सिचुएशन में शिक्षा प्रणाली हो सकती है हम उसे बनाएंगे और बच्चों को बेस्ट एजुकेशन देने की कोशिश करेंगे। हमने जो ऑनलाइन मैकेनिज्म तैयार किया है बच्चे उसका भरपूर फायदा उठाएं।'

कोरोना महामारी ने पूरे विश्व को बहुत बुरी तरह से प्रभावित किया। दैनिक जागरण, वाराणसी 29 मई 2020 से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार पूरे विश्व में उस समय 5821077 लोग कोरोना से संक्रमित थे जिसमें अमेरिका के 1747781 (सत्रह लाख सैंतालीस हजार सात सौ इक्यासी) तथा ब्राजील में 414661 (चार लाख चौदह हजार छह सौ इकसठ) लोग संक्रमित थे। कोरोना वायरस से मरने वालों की संख्या पर अगर नजर डालें तो 29 मई, दैनिक जागरण के अनुसार इस समय अमेरिका में सर्वाधिक लोग कोरोना महामारी के प्रकोप से अपनी जान गवां चुके थे। उस समय कोरोना महामारी के शुरुआती दौर में ही अमेरिका में कोरोना महामारी से मरने वालों की संख्या एक लाख दो हजार एक सौ सतानवे थी। वहीं ब्राजील में पच्चीस हजार छह सौ सतानवे लोग अपनी जान गवां चुके थे। इसी तरह अगर भारत की बात करें तो आरोग्य सेतु, 29 मई 2020 से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार भारत में 165799 (एक लाख पैंसठ हजार सात सौ निन्यानवे) लोग संक्रमित हो चुके थे जिनमें से 4706 (चार हजार

सात सौ छह) लोग इस महामारी से अपनी जान गंवा चुके थे। इस प्रकार इस महामारी ने भारत में 2020 में आते ही मार्च के अंतिम सप्ताह और अप्रैल महीने में ही अपना वीभत्स रूप दिखाना शुरू कर दिया था।

हमारे देश में कोरोना काल में इस महामारी से लोगों की जान बचाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। इस प्रकार शिक्षा प्रक्रिया को भी सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिए तथा शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए निरंतर प्रयास किए गए। इस संदर्भ में अमर उजाला, वाराणसी 29 मई 2020 में प्रकाशित समाचार के अनुसार मानव संसाधन विकास मंत्री श्री रमेश पोखरियाल निशंक ने कहा कि नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार हो गया है और संसद की मंजूरी के बाद इसे देश भर में लागू किया जाएगा। बड़े पैमाने पर विचार–विमर्श के बाद ऐसी शिक्षा नीति तैयार की गई जिसमें करोड़ों शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षाविद तथा महान विचारक शामिल हुए। इसमें ग्राम पंचायत से लेकर कई महान शिक्षकों, शिक्षाविदों, नेताओं, वैज्ञानिकों, छात्रों और अभिभावकों से भी राय ली गई। उन्होंने कहा कि दूरदर्शन और रेडियो के जरिए ग्रामीण इलाकों तक ऑनलाइन शिक्षा पहुँचाई जाएगी। इस संबंध में निशंक ने कहा कि स्वयं प्रभा चौनल दुनिया का सबसे बड़ा प्लेटफार्म है। हमने ऑनलाइन शिक्षा को काफी मजबूत बनाया है और आज स्वयं प्रभा चौनल दुनिया का सबसे बड़ा शिक्षा प्लेटफार्म बन गया है। इसके अलावा दीक्षा और ई पाठशाला जैसे प्लेटफार्म भी है लेकिन दूरदराज के छात्रों को नेट की समस्या है इसलिए हम टीवी और रेडियो के माध्यम से उन्हें जोड़ रहे हैं। कोई भी छात्र पढ़ाई से वंचित नहीं रहेगा।

आज भारत में ई लर्निंग की अवधारणा तेजी से बढ़ रही है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिए कई आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं। राज्य सरकारें तथा केंद्र सरकार ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को विकसित कर हर छात्र तक शिक्षा पहुँचाने के लिए रणनीति तैयार कर रही है। भारत में ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली विकसित करना आसान कार्य नहीं है। ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के मार्ग में बहुत सारी समस्याएं, बाधाएँ तथा चुनौतियाँ हैं लेकिन यदि हम दृढ़ संकल्प और मजबूत इरादों के साथ आगे बढ़ेंगे तो निश्चित रूप से हम इन सभी समस्याओं, बाधाओं और चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना करते हुए सफलता प्राप्त कर मंजिल तक पहुँच सकते हैं।

कोरोना काल में देश के गरीब, मजदूर, किसान, दलित, अभावग्रस्त वर्ग के बच्चों तथा दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले सभी बच्चों तक ऑनलाइन शिक्षा को पहुँचाना निश्चित रूप से बहुत बड़ी चुनौती थी। कई स्थानों पर इंटरनेट की सुविधा नहीं थी तथा कहीं निर्धनता के कारण लोगों के पास एंड्राइड फोन तथा लैपटॉप नहीं थे। ऐसी स्थिति में यह सफर मुश्किल जरूर था मगर नामुमकिन बिल्कुल नहीं था। स्वयं प्रभा चैनल के माध्यम से टी. वी. के माध्यम से निश्चित रूप से हर बच्चे को ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली से जोड़ने के प्रयास किए गए। वर्तमान समय में बहुत कम घर ऐसे होंगे जहाँ पर टीवी नहीं है। इसलिए टीवी पर विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण से संकट के इस दौर में हर बच्चे तक शिक्षा पहुँचाई जा सकती है। इस तरह हम ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से अपने शैक्षिक उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ सकते हैं।

कोरोना महामारी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली को बहुत बुरी तरह से प्रभावित किया है। कोरोना महामारी ने जिस समय मार्च में भारत में दस्तक दी उस समय भारत में स्कूल स्तर पर विद्यार्थियों की परीक्षाएँ चल रही थी। कोरोना के वैश्विक खतरों को देखते हुए देश में अचानक लॉकडाउन लागू करना पड़ा जिसके कारण देश में लाखों परीक्षार्थी परीक्षा नहीं दे पाए। इसके साथ–साथ उच्च स्तरीय शिक्षा को भी कोरोना ने बुरी तरह प्रभावित

किया है। महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में विभिन्न स्तर पर जून, जुलाई में होने वाली परीक्षाओं पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। कोरोना काल में विभिन्न स्तर पर छात्रों की परीक्षाओं का सफल संचालन करना बहुत कठिन कार्य था। परीक्षा के समय हमारे देश में कोरोना तीव्र गति से फैल रहा था। हर दिन हजारों की संख्या में लोग कोरोना से संक्रमित हो रहे थे। ऐसी स्थिति में जोखिम लेकर परीक्षाओं का संचालन करना किसी खतरे से खाली नहीं था। उस समय विभिन्न शिक्षाविदों, अधिकारियों तथा शिक्षा से जुड़े बुद्धिजीवियों का मानना था कि हमें धैर्य के साथ चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ना चाहिए। इस प्रकार इस सम्बंध में अभी किसी भी तरह का जोखिम उठाने की जरूरत नहीं है। इसलिए सुरक्षित रास्ते तलाशे जाने लगे जिससे किसी भी तरह का कोई नुकसान ना हो। इस प्रकार कोरोना महामारी ने हमारी कार्य प्रणाली तथा शिक्षा व्यवस्था को पूर्णतया बदल कर रख दिया। कोरोना काल में नये रास्ते खोजने और उन रास्तों पर चलने की आवश्यकता महसूस की गई। हमने अविलंब आवश्यकता के अनुसार नये रास्ते खोज कर नई कार्य प्रणाली विकसित की।

इस प्रकार विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हुए हम निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर रहे और हमने संकट की इस घड़ी में भी कई कीर्तिमान स्थापित किए। हम आपदा में अवसर खोजने की दिशा में मजबूती के साथ आगे बढ़े जिसके कई सकारात्मक परिणाम सामने आए।

सन्दर्भ सूची :–

1. अमर उजाला, वाराणसी, 29 मई 2020।
2. राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश शिक्षा वेबीनार समूह।
3. टी. वी. से प्राप्त जानकारी।
4. राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय वेबीनार।
5. आरोग्य सेतु।
6. दैनिक जागरण, वाराणसी, 29 मई 2020।
7. विभिन्न शिक्षकों तथा शिक्षाविदों से प्राप्त जानकारी।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 112-116

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यासों का विकासक्रम और समाज

उमाकान्त

शोधार्थी, हिंदी विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखंड।

हिंदी उपन्यास भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरा और समय के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तनों को अपने अंदर समेटते हुए एक सशक्त माध्यम बन गया। यह न केवल साहित्यिक कला का रूप है, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं, जटिलताओं और संवेदनाओं का प्रभावी चित्रण भी है। हिंदी उपन्यासों ने अपने पाठकों को न केवल मनोरंजन दिया, बल्कि समाज की वास्तविकता से भी परिचित कराया। उपन्यासकारों ने न केवल मानव जीवन के व्यक्तिगत और पारिवारिक संघर्षों को उजागर किया, बल्कि समाज में व्याप्त असमानताओं, अत्याचारों और विषमताओं को भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

हिंदी उपन्यासों के विकास का इतिहास एक लंबा और विविधतापूर्ण यात्रा है। इसके विकास में समाज, संस्कृति और राजनीति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

हिंदी उपन्यासों का प्रारंभिक विकास :–

हिंदी साहित्य में उपन्यास की परंपरा की शुरुआत ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के दौरान हुई, जब भारत में पश्चिमी साहित्य और विचारधारा का प्रभाव बढ़ा।

1. 19वीं सदी का उत्तरार्ध : उपन्यास का प्रारंभ :–

हिंदी उपन्यास का आरंभ 19वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ, जब भारतीय समाज में सामाजिक सुधार की लहर चल रही थी और अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा था। इस समय, हिंदी साहित्य में नई विचारधाराओं और यूरोपीय साहित्य की विधाओं का प्रवेश हुआ। हिंदी उपन्यास की शुरुआत धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक बुराइयों की आलोचना से हुई।

पहले हिंदी उपन्यासों में धार्मिक कथा और ऐतिहासिक घटनाओं को मुख्य रूप से लिया गया। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में लिखे गए उपन्यासों में मुख्यतः ऐतिहासिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य में लिखे गए थे। इन उपन्यासों में समाज की दशा, संस्कृति, और परंपराओं का गहन चित्रण किया गया, लेकिन इनकी गहरी संवेदनशीलता और पात्रों की मानसिक स्थिति का उद्घाटन नहीं हुआ था।

2. प्रेमचंद और समाजवादी दृष्टिकोण (20वीं सदी के प्रारंभ) :–

20वीं सदी में हिंदी उपन्यास में एक नया मोड़ आया, जब प्रेमचंद ने उपन्यास विधा को एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया। प्रेमचंद का उपन्यास समाज के विभिन्न वर्गों की स्थितियों और उनके संघर्षों

को उजागर करने का प्रयास था। उनका उपन्यास 'गोदान' (1936) हिंदी साहित्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ। इसमें उन्होंने भारतीय गांवों की दुर्दशा, किसानों की गरीबी, और समाज की सांस्कृतिक विडंबनाओं को संवेदनशीलता से चित्रित किया।

प्रेमचंद के उपन्यासों में मनुष्य की सामाजिक स्थिति और उसके मानसिक संघर्षों का गहरा चित्रण था। उनके लेखन में वर्णित पात्रों की आंतरिक दुनिया, उनकी समस्याएँ और संघर्ष साहित्य के नए आयामों की ओर इशारा करते थे। उनके साहित्य का उद्देश्य समाज को जागरूक करना था, और उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं और विडंबनाओं को उजागर किया।

3. प्रेमचंद के बाद की पीढ़ी : सामाजिक और राजनीतिक बदलाव :–

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यासों में एक नए यथार्थवाद का उदय हुआ, जिसमें समाज के निचले वर्गों, खासकर ग्रामीणों, दलितों और महिलाओं के मुद्दों पर अधिक ध्यान दिया गया। इस दौर के प्रमुख उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में समाज की बुराइयों और संघर्षों को चित्रित किया।

4. 1947 के बाद : स्वतंत्रता संग्राम और राजनीतिक परिवर्तन :–

1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, हिंदी उपन्यासों में नए विचार और मुद्दे सामने आए। स्वतंत्रता के बाद की समस्याएँ, जैसे कि देश की राजनीतिक स्थिति, सामाजिक असमानताएँ, और आर्थिक बदलाव, उपन्यासों में प्रमुख विषय बने। यशपाल, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, और सृजनात्मक लेखकों ने इस समय के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों पर अपनी कलम चलाई। इन लेखकों ने समाज के विभिन्न पहलुओं को रचनात्मक रूप में प्रस्तुत किया और उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक चेतना को जागृत करने का प्रयास किया।

5. समकालीन दौर (1970–2000) : विविधता और प्रयोग :–

1970 और 1980 के दशक में हिंदी उपन्यास में और अधिक विविधता और प्रयोग देखने को मिले। इस समय में राजेंद्र यादव, उदय प्रकाश, और मृदुला गर्ग जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल समाज की वास्तविकताओं को उजागर किया, बल्कि उन्होंने साहित्यिक शैली में भी नवाचार किया। इस दौर में हिंदी उपन्यास में मनोविश्लेषण, आधुनिकतावाद, और नई सत्ताओं के प्रति प्रतिक्रिया जैसे विषय प्रमुख हो गए। उपन्यासकारों ने पाश्चात्य विचारधाराओं के प्रभाव में समाज के नए रूपों, यथार्थों और संघर्षों का चित्रण किया।

6. उत्तर–आधुनिक युग (2000 के बाद) :–

2000 के बाद हिंदी उपन्यास में उत्तर–आधुनिकता का प्रभाव देखा गया। इस समय में उपन्यासों की शैली में प्रयोग, विभिन्न साहित्यिक रूपों का मिश्रण और सामाजिक मुद्दों का विश्लेषण किया गया। लेखकों ने अब पुराने विषयों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, और साथ ही, सत्ताओं और सत्ता संरचनाओं के प्रभाव पर भी चर्चा की। विनोद कुमार शुक्ल, नंदकिशोर आचार्य, अल्का सरावगी, और आलोक श्रीवास्तव जैसे लेखकों ने हिंदी उपन्यास को नया रूप दिया।

इन उपन्यासकारों ने उन सामाजिक और व्यक्तिगत मुद्दों को उजागर किया जिनका सामना समकालीन समाज कर रहा था। डिजिटल युग के प्रभाव, मीडिया का भूमिका, और तकनीकी बदलाव इन उपन्यासों के प्रमुख विषय बने।

हिंदी उपन्यासों का महत्व केवल उनकी साहित्यिक गुणवत्ता में ही नहीं, बल्कि उनके समाज, संस्कृति और राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव में भी है। उपन्यासों ने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक असमानताओं, जातिवाद, और स्त्री उत्पीड़न जैसे मुद्दों को चुनौती दी। इन रचनाओं ने न केवल समाज के अंधविश्वासों, आस्थाओं और बुराइयों को उजागर किया, बल्कि पात्रों के मानसिक और भावनात्मक संघर्षों के माध्यम से समाज की वास्तविकताओं को बयां किया।

हिंदी उपन्यासों में समाज :–

हिंदी उपन्यासों का समाज में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल एक साहित्यिक विधा के रूप में उभरा, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं, उसकी समस्याओं और संघर्षों को उजागर करने का एक सशक्त माध्यम भी बन गया। हिंदी उपन्यासों ने भारतीय समाज की विविधताएँ, उसके सामाजिक संघर्ष, असमानताएँ, मानसिकताओं और मूल्यों को चित्रित किया है। इन उपन्यासों के माध्यम से समाज के भीतर व्याप्त जटिलताओं और मुद्दों पर चर्चा हुई है, जो पाठकों को न केवल साहित्यिक आनंद प्रदान करते हैं, बल्कि उन्हें समाज की सच्चाईयों से भी परिचित कराते हैं।

हिंदी उपन्यासों का सामाजिक योगदान इस प्रकार है कि इनसे समाज के विभिन्न मुद्दों पर ध्यान आकर्षित हुआ है, जैसे कि जातिवाद, स्त्री उत्पीड़न, गरीबी, शोषण, सामाजिक असमानताएँ, और शहरी और ग्रामीण जीवन के बीच का अंतर। उपन्यासों ने न केवल समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं को उजागर किया, बल्कि लोगों को सामाजिक सुधार की दिशा में जागरूक भी किया।

1. सामाजिक असमानता और जातिवाद का विरोध :–

हिंदी उपन्यासों ने समाज में व्याप्त असमानताओं और जातिवाद की गहरी आलोचना की है। भारतीय समाज में जातिवाद एक सदियों पुरानी समस्या रही है, जिसने समाज में एक गहरी खाई बना दी थी। हिंदी उपन्यासों ने इस मुद्दे को प्रमुखता से उठाया और इस पर सामाजिक चेतना पैदा करने का प्रयास किया।

प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में समाज की असमानताओं को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। यहाँ पर एक साधारण किसान होरी के माध्यम से यह दिखाया गया है कि कैसे जातिवाद और वर्गभेद के कारण गरीब और मेहनतकश वर्ग को लगातार शोषण और अपमान का सामना करना पड़ता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज के उच्च वर्ग के भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण को उजागर किया और इसे चुनौती दी।

इसके अलावा, 'कर्मभूमि' जैसे उपन्यासों में प्रेमचंद ने समाज में व्याप्त भेदभाव और अमीरी–गरीबी की खाई को चित्रित किया। इन उपन्यासों ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं को चुनौती दी और समानता का संदेश दिया।

2. स्त्री विमर्श और महिलाओं के अधिकार :–

हिंदी उपन्यासों ने स्त्री के समाज में उत्पीड़न, शोषण और उसकी भूमिका को लेकर गहरी चर्चा की है। भारतीय समाज में महिलाओं को अक्सर हाशिए पर रखा गया, उनके अधिकारों का उल्लंघन किया गया और उन्हें सीमित भूमिका तक ही सिमित कर दिया गया। हिंदी उपन्यासों ने इस स्थिति को स्पष्ट रूप से चित्रित किया और महिलाओं के अधिकारों के प्रति समाज में जागरूकता पैदा करने का प्रयास किया।

शिवानी जैसी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में महिलाओं की स्वतंत्रता, अधिकारों और संघर्षों पर ध्यान

केंद्रित किया। इनके उपन्यासों में एक महिला के मानसिक संघर्ष, अकेलेपन और समाज से उत्पीड़न के अनुभवों को संवेदनशीलता से दिखाया गया है।

इसके अलावा भी कई ऐसे रचनाकार हुए जिन्होंने भारतीय समाज में दलितों और महिलाओं की स्थिति को चित्रित किया। यहाँ पर महिलाओं की शारीरिक और मानसिक स्वतंत्रता की बात की गई है और उन पर होने वाले दमन को उजागर किया गया है।

हिंदी उपन्यासों ने स्त्री की मानसिकता, उसकी आकांक्षाओं, संघर्षों और समाज में उसकी जगह को चित्रित किया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि समाज में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष कितना आवश्यक था।

3. सामाजिक न्याय और गरीब वर्ग का उत्थान :–

हिंदी उपन्यासों ने समाज के गरीब और हाशिए पर पड़े वर्गों के मुद्दों को उठाया है। इन उपन्यासों में गरीबों के साथ होने वाले शोषण, उनकी बेरोजगारी, आर्थिक तंगी और उनके जीवन के संघर्ष को प्रमुखता से चित्रित किया गया है।

प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में एक गरीब किसान होरी की कहानी के माध्यम से भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त गरीबी, शोषण और अत्याचार की तस्वीर प्रस्तुत की गई है। होरी का संघर्ष केवल अपनी जमीन और संपत्ति के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक असमानताओं के खिलाफ भी है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में किसानों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को बारीकी से दर्शाया है और उनका संदेश था कि बिना समाज में समानता और न्याय के कोई भी समाज प्रगति नहीं कर सकता।

4. भारतीय समाज की सच्चाई और यथार्थवाद :–

हिंदी उपन्यासों ने भारतीय समाज की यथार्थवादी तस्वीर पेश की। उपन्यासकारों ने समाज के भीतर व्याप्त भ्रष्टाचार, कुरीतियों, अशिक्षा, अंधविश्वास, और अत्याचारों को बिना किसी सजावट के दर्शाया। इस यथार्थवाद ने समाज के मुद्दों को स्पष्ट रूप से सामने रखा और लोगों को जागरूक करने का काम किया।

5. जाति, धर्म और सांप्रदायिकता पर प्रभाव :–

हिंदी उपन्यासों ने भारतीय समाज में जाति, धर्म और सांप्रदायिकता के मुद्दों को भी अपने लेखन का हिस्सा बनाया है। भारतीय समाज में जातिवाद और धर्म के आधार पर बंटवारा समाज को खंडित करता है और मानवता के मूल्यों को आहत करता है।

'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने भारतीय समाज की जातिवादी मानसिकता और इससे होने वाले उत्पीड़न को उजागर किया। उन्होंने यह दिखाया कि कैसे समाज में जातिवाद का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन को प्रभावित करता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास के माध्यम से जातिवाद के खिलाफ जागरूकता फैलाने की कोशिश की।

इसके अतिरिक्त, 'आधा गाँव' में राही मासूम रजाने भारत में धर्म और जाति के आधार पर बंटे समाज की समस्याओं को उजागर किया। उनका उपन्यास भारत के विभाजन के समय के मानसिकता को समझाता है, जब धार्मिक और सांप्रदायिक भेदभाव ने समाज में असहमति और विभाजन पैदा किया था।

हिंदी उपन्यासों का सामाजिक योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण और बहुआयामी है। इन उपन्यासों ने समाज

के विभिन्न पहलुओं, जैसे कि जातिवाद, स्त्री उत्पीड़न, गरीब वर्ग का शोषण, और सांप्रदायिकता, पर गहरी और प्रभावशाली चर्चा की है। उपन्यासों ने समाज की सच्चाइयों को बिना किसी छलावे के सामने रखा और लोगों को जागरूक करने का काम किया। इन रचनाओं ने साहित्य को एक सशक्त माध्यम बनाया, जो न केवल मनोरंजन का साधन था, बल्कि समाज में सुधार लाने और सामाजिक चेतना फैलाने का भी कार्य करता था। हिंदी उपन्यासों ने भारतीय समाज को अपनी असलियत दिखायी, उसके संघर्षों और समस्याओं को सामने रखा, और उन्हें सुधारने की दिशा में प्रेरित किया।

1. **समाजवादी दृष्टिकोण :** प्रेमचंद और उनके बाद के उपन्यासकारों ने समाज के गरीब और निचले वर्गों की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक बदलाव का आह्वान किया।
2. **स्त्री विमर्श :** 20वीं सदी के अंत और 21वीं सदी की शुरुआत में, हिंदी उपन्यासों ने स्त्री की भूमिका और उसके अधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया। मृदुला गर्ग और स्मिता घोष जैसे लेखकों ने महिला पात्रों के मानसिक संघर्षों और समाज में उनके स्थान पर चर्चा की।
3. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :** हिंदी उपन्यास में समय–समय पर मनोविश्लेषण का प्रयोग किया गया, जिसमें पात्रों के मानसिक द्वंद्व, संघर्ष और विकास को प्राथमिकता दी गई। मोहन राकेश के उपन्यासों में पात्रों की मानसिक स्थिति का गहरा चित्रण हुआ है।

समग्रत : हिंदी उपन्यासों का विकास क्रम भारतीय समाज के बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को दर्शाता है। यह साहित्यिक विधा समय के साथ साथ न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से उभरी, बल्कि उसने समाज के वास्तविक मुद्दों को सामने लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी उपन्यासों ने पात्रों के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक संघर्षों के माध्यम से समाज की सच्चाइयों को उजागर किया, और पाठकों को उनके आसपास की दुनिया से परिचित कराया। इसके साथ ही, हिंदी उपन्यासों ने भारतीय साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया, जो आज भी समृद्ध और प्रभावशाली बना हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण २०१४
2. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण २०१६
3. सूरज पालीवाल, इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक और हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण २०२३
4. विशाला शर्मा, 21वीं सदी का हिंदी उपन्यास साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण २०१६

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 117-120

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शोध समालोचन : 'अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका'

डॉ. सरला जांगिड़

सहायक प्रोफेसर, हिन्दुस्तान कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, कोयम्बतूर।

शोध पत्रिका का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसी पत्रिका जिसमें अनुसंधान और अध्ययन से संबंधित लेख प्रकाशित किए जाते हैं।'

यह दो शब्दों से मिलकर बना है :

1. **शोध :** जिसका अर्थ है अनुसंधान, अध्ययन, या गहन जांच।
2. **पत्रिका :** जिसका अर्थ है पत्रों या लेखों का संग्रह, अर्थात एक ऐसा प्रकाशन जो नियमित अंतराल पर प्रकाशित होता है।

इस प्रकार, शोध पत्रिका एक ऐसा प्रकाशन है जिसमें वैज्ञानिक, अकादमिक, या अन्य अनुसंधान से जुड़े लेख और सामग्री प्रकाशित की जाती हैं। यह पत्रिका विशेष रूप से ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में नई खोजों और विचारों को प्रस्तुत करने के लिए उपयोग की जाती है।

किसी शोध पत्रिका की गुणवत्ता, प्रचलन, सफलता, लोकप्रियता और उद्देश्य को निम्न बिंदु सुनिश्चित करते हैं :–

1. **उद्देश्य और विषय क्षेत्र**
   - पत्रिका का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए, जैसे विज्ञान, समाजशास्त्र, मानविकी, चिकित्सा आदि।
   - पत्रिका का विषय क्षेत्र विशिष्ट और केंद्रित होना चाहिए।

टिप्पणी :–

शोध समालोचना के विषयों में विविधता और उसका उद्देश्य जन–सामान्य को नए और उत्तम ज्ञान से अभिभूत करना है। इसके अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी, संस्कृत आदि भाषाओं के शोध–पत्रों का प्रकाशन होता है। पत्रिका सभी विषयों के शोध–पत्रों के माध्यम से नए–नए विचार सामने लाने के लिए सदैव प्रयासरत रहती है। यह शोध–पत्रिका शिक्षा व अनुसंधान के प्रति समर्पित है।

2. **संपादकीय बोर्ड :–**
   - एक योग्य संपादकीय बोर्ड का गठन किया जाना चाहिए।
   - विशेषज्ञों और विद्वानों को शामिल करना आवश्यक है।
   - संपादक और समीक्षक विषय के विशेषज्ञ हों।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय व विदेशी विश्वविद्यालयों में कार्यरत लगभग 40 विद्वानों की टीम के साथ डॉक्टर नरेश सिहाग एडवोकेट अपने कुशल संपादन के साथ, प्रतिष्ठा व सम्मान दिलवाने के संकल्प के साथ प्रयत्नशील हैं।

3. समीक्षा प्रक्रिया (पियर रिव्यू) :-

- पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों की समीक्षा पियर–रिव्यू प्रक्रिया के माध्यम से होनी चाहिए।
- यह गुणवत्ता और विश्वसनीयता बनाए रखने में सहायक है।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड (हरियाणा) द्वारा प्रकाशित अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका शोध समालोचन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। यह एक अन्तरराष्ट्रीय पीयर रिव्यूड एवं रेफर्ड शोध पत्रिका है, जो अन्य शोध पत्रिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

4. शोध लेखों की गुणवत्ता :-

- लेख मौलिक और नवीन शोध पर आधारित हों।
- भाषा और प्रस्तुति स्पष्ट और सटीक हो।
- अनुसंधान पद्धति और परिणामों का सही वर्णन हो।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना में शोध के स्तर व गरिमा के अनुरूप ही शोध–पत्रों का प्रकाशन कर रही है।

5. संदर्भ और ग्रंथ सूची :-

- लेखों में उचित संदर्भ और ग्रंथ सूची का समावेश अनिवार्य है।
- उद्धरण मान्यता प्राप्त मानकों के अनुसार दिए जाने चाहिए।

टिप्पणी :- शोध समालोचना में।

6. प्रकाशन की नियमितता :-

- पत्रिका नियमित रूप से (मासिक, त्रैमासिक, या वार्षिक) प्रकाशित होनी चाहिए।
- यह पाठकों और शोधकर्ताओं के लिए विश्वसनीयता बढ़ाती है।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना का प्रकाशन त्रैमासिक होता है। इसमें आज तक किसी भी तरीके का व्यवधान नहीं आया है।

7. प्रामाणिकता और मौलिकता :-

- सभी लेख मौलिक और किसी अन्य स्रोत से बिना अनुमति के नकल किए हुए नहीं होने चाहिए।
- प्लेजरिज्म जांच के लिए सॉफ्टवेयर का उपयोग करना चाहिए।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना में मौलिक चिन्तन, प्रमाणिक तथ्यों पर आधारित तथा प्रासांगिक विषयों पर लेख लिखे होते हैं और ज्ञान–विज्ञान में किसी नई अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं।

8. पाठकों और शोधकर्ताओं तक पहुंच :-

– पत्रिका ओपन–एक्सेस या सब्सक्रिप्शन आधारित हो सकती है।

– डिजिटली उपलब्ध कराना आज के समय में महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना में शोध–पत्रों के प्रस्तुतीकरण में शोध–पत्र का सारांश एवं मुख्य शब्द पहले दिए जाते है, जो पाठकों की सुविधा की दृष्टि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

9. अंतर्राष्ट्रीय मानकों का पालन :-

– पत्रिका के लिए आईएसएसएन (ISSN) नंबर प्राप्त करना।

– शोध लेखों के लिए डीओआई (DOI) संख्या देना।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना का ISSN 2348-5639, IMPACT FACTOR 6.521 है। शोध–विषय चयन, वस्तु चयन, उत्कृष्ट प्रस्तुतीकरण और शोधपरक सामग्री से युक्त यह शोध पत्रिका पिछले दो दशक से शोध मानकों पर खरी उतरने के साथ–साथ शोध–क्षेत्र में एक बड़ी कमी को पूरा करती है।

10. अनुशासन और नैतिकता :-

– लेखकों और समीक्षकों को शोध नैतिकता का पालन करना चाहिए।

– फर्जी डेटा और झूठे दावों से बचना अनिवार्य है।

टिप्पणी :-

शोध समालोचना में शोध गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए यूजीसी द्वारा निर्धारित मानकों पर विश्वविद्यालयों में प्रकाशन की व्यवस्था के साथ–साथ सेमिनारों, कार्यशालाओं व अन्य प्रकार की शोध सहायक गतिविधियों का भी आयोजन किया जाता रहा है।

इन सभी बिंदुओं का पालन करने से शोध पत्रिका की गुणवत्ता और प्रभावशीलता में वृद्धि होती है, और यह शोधकर्ताओं व पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। वर्तमान सदी के परिदृश्य में जो विसंगतियां एवं विद्रूपताएं हमारे समक्ष हैं वे हमारी शिक्षा व्यवस्था की कमियों के कारण ही पैदा हुई हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो हम साक्षर तो हुए हैं लेकिन शिक्षित नहीं। हमारी शिक्षा में नैतिक मूल्यों के अभाव ने केवल हमारे वर्तमान को संकट ग्रस्त किया है बल्कि हमारे भविष्य को भी मुसीबत में डाल दिया है। शिक्षा से भावी पीढ़ी के व्यवसायिक हितों के साथ–साथ उनके चहुंमुखी विकास को सुनिश्चित करने हेतु जिस एक अति आवश्यक पक्ष को हमारे शिक्षाविदों ने रेखांकित किया है, वह हमारी शिक्षा प्रणाली में अनुसंधान पर बल देने की बात है। अनुसंधान के प्रति हमारी शिक्षा संस्थाओं की संवेदनशीलता में वृद्धि का यही कारण है।

शोध के क्षेत्र में गुणात्मक तथा परिमाणात्मक सुधारों को ध्यान में रखते हुए महाविद्यालायें में स्नातक व स्नातकोतर पर प्रोजेक्ट के रूप में तथा पीएचडी के लिए पंजीकृत किए जाने वाले शोधार्थियों के लिए लिखित एवं मौखिक परीक्षा की व्यवस्था की गई है। वह एक सराहनीय कदम है। दूसरी ओर पीएचडी में पंजीकृत हो चुके शोधार्थियों के लिए भी न्यूनतम दो शोधपत्रों के प्रकाशन की अनिवार्यता शोध की गुणवता में सुधार करने के लिए उठाया गया कदम है।

इसी के अन्तर्गत इस संबंध में कुछ साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा शोध–पत्रिकाओं का प्रकाशन मुख्य स्थान रखता है। जबकि ऐसी शोध–पत्रिकाओं का भी अभाव नहीं है जो स्वच्छ तथा प्रामाणिक अनुसंधान गतिविधियों में लगी है। अतः बिना किसी व्यावसायिक उद्देश्य के इस पत्रिका में केवल उन्हीं शोध–पत्रों को स्थान दिया जाता है, जो यह यह शोध पत्रिका शोधार्थियों के साथ–साथ प्राध्यापकों के लिए भी काफी उपयोगी है।

अतः शोध रूपी यज्ञ में जुटी संस्था गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड (हरियाणा) में अपनी आहुति देकर शिक्षा व अनुसंधान जैसे राष्ट्रीय महत्त्व के इस पुनीत कार्य में सहभागी बनें।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 121-127

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Role of the Femme Fatale in Shaping Guru Dutt's Noir Narratives

Chinmoyee Das, Research Scholar (PhD)

Dr. Pankaj Kumar, Assistant Professor, Department of Journalism and Mass Communication, Central University of Haryana, Mahendergarh.

Abstract :

Guru Dutt was considered a man ahead of his time. He was one of the greatest icons of commercial Indian cinema. Although he made less than ten films, he got a very impressive place in the Indian cinema world. Guru Dutt's movies often show dark themes and emotional struggles of people. Many of his films had the element of the noir genre. One important part of his films is the femme fatale. A femme fatale is a type of character that is often seen in literature, films, and art. Especially in the noir genre it has shown more. The term means "fatal woman" in French and it refers to a mysterious, attractive and seductive woman who uses beautiful charm and wit to manipulate others, often leading them into dangerous or troubling situations. The main aim of this study is to understand the role of the femme fatale in Dutt's noir films. This study has focus only on Guru Dutta's movies. It will look at how Guru Dutt created these female characters in the Indian noir context. It will study their role in the movie story and how they affect the male characters. The study will show how these characters represent the Indian way of life. The aim of this paper is to understand how these characters show deep emotions and make the stories more meaningful. Guru Dutt used this character to show complex emotions and ideas. This research will study this impact on his noir narratives. This study uses qualitative research methodology to explore the femme fatale in Guru Dutt's noir narratives. The research will closely examine Dutt's films to analyze the portrayal of the femme fatale and the overall narrative structure.

Keywords : Guru Dutt, Noir, Femme Fatale, Hindi Cinema, Noir Narrative.

Introduction :

Guru Dutt, a name synonymous with Indian cinema's golden era, crafted films that continue to shape the landscape of Hindi cinema, particularly in the noir genre. Guru Dutt directed eight Hindi

films and acted in over 30 films throughout his career. Baazi (1951) was Dutt's first feature film, produced by Dev Anand's Navketan International Films. Baazi (1951) was Dutt's directorial debut and the first crime noir in India. Film noir is a type of crime film with a dark and mysterious style. It often has a gloomy atmosphere, with shady characters and shadowy photography. The term "film noir" means "dark film" in French. Film noir films are set in unpleasant or sleazy places. They use low lighting to create dark and dramatic scenes. The music and visuals make the atmosphere tense and ominous. The characters are often cynical and morally complex. The themes are dark, and the stories can include flashbacks or voice-overs to add to the suspense. The 1940s and 1950s are known as the classic period of film noir. These films show a harsh and strange world. They often mix sex and violence and focus on characters who are victims, suspects, or criminals.

Baazi was a tribute to the 1940s Hollywood film noir genre, and was an immediate success. The film was known for its shadow lighting, morally ambiguous hero, and transgressing siren. Jaal (1952) is also a successful film starring the same actors as Baazi. This was a box office success and one of the first Indian films to feature an anti-hero character. The film was known for its grey shade characters and popular music. Aar-Paar (1954) was his self-directed noir comedy. Baaz (1953) Dutt's first film was made in his own production house. Other films by Guru Dutt that exhibit a noir style include: Pyaasa (1957) C.I.D. (1956). Then Mr. & Mrs. '55 (1955), C.I.D. (1956), Sailaab (1956), and Pyaasa (1957) were blockbuster hits. Pyasa made Time magazine's 100 Greatest Movies list. Kaagaz Ke Phool (1959) was a commercial failure at the time but found critical and commercial success in the 1980s.

In Baazi (1951) movie Madan gets involved with the underworld to earn money for his sister's treatment. He falls in love with Leena but his life takes a shocking turn when he is falsely accused of her murder. The film has a dark atmosphere and moral confusion and mixes romance with suspense. It shows Dutt's early style. Jaal (1952) follows Tony, a fisherman who gets caught in a web of crime after falling in love with a woman tied to a dangerous gang. The film explores love, betrayal and moral conflict. In Aar Paar (1954), Guru Dutt plays a taxi driver who unknowingly becomes involved in crime and corruption while trying to make a living in the city. The film blends romance and crime with fast-paced action and gritty realism. In CID (1956), Inspector Shekhar investigates a murder linked to a criminal syndicate. The film features a femme fatale and themes of betrayal. Pyaasa (1957) tells the story of poet Vijay. He is struggling to find success in materialistic world. His story of love reflects the melancholic tone of classic noir. Kaagaz Ke Phool (1959) movie also follows the tragic life of filmmaker Suresh Sinha. Whose rise to fame turns into a downfall due to betrayal and failure.

The film's story and visuals give the essence of noir. Then Sahib Bibi Aur Ghulam (1962)

movie produced by Dutt tells the story of a lonely wife. The film's cinematography, themes and moral decay reflect classic noir influences.

In Dutt's films, these characters influence the journey of the male protagonists. These women represent society's darker sides for example corruption, betrayal and moral issues. Their actions often lead to tragic endings. Which are a common feature of Dutt's noir films. By looking at the relationships between the femme fatale and other characters, we can see how Dutt uses them to explore themes like love, loss and the struggles of living within societal rules.

Aim and Objectives :

The aim of this study is to understand the role of the femme fatale in Guru Dutt's noir films. It will focus on his movies to see how these characters reflect and question themes like love, gender and despair. The study will identify the traits of the femme fatale in these films. It will explore how these women influence the male leads and the story. And also examine how the femme fatale adds to the sadness and tragedy of Dutt's films.

Rationale of the Study :

Guru Dutt's films play a very important role in Indian noir cinema. Guru Dutt uniquely used the femme fatale character in his cinema. He adapted this Hollywood idea to connect with Indian audiences. The importance of studying the femme fatale in Dutt's noir narratives lies in its ability to uncover deeper cultural psychological and moral analysis layers. After independence, India faced significant changes in the 1950s and 1960s. Traditional values clashed with modern dreams. People struggled with their identity in a post-colonial world. Guru Dutt used the femme fatale to show these struggles. These characters explored ideas of disappointment, broken societies and the fight between personal wishes and social rules. By Studying these films shows how they show and shape ideas about gender, morality and social change. In Guru Dutt's movies the femme fatale reflects society's contradictions at that time. She may seem harmful, but her actions show the problematic life she faces. This makes her a tragic figure. Dutt's portrayal of the femme fatale is deep and thoughtful. Focusing on these characters, we can better understand how Indian noir cinema dealt with modern life, gender roles and social change.

Review of Literature :

The femme fatale is a central figure in film noir. It has evolved from her origins in silent cinema to become a complex symbol of sexual, social and ideological unrest. The femme fatale's representation in classic Hollywood noir reflects post-World War II anxieties about women's changing roles and economic independence (Boozer, 2000). Feminist film criticism has interpreted this figure as both an articulation of male anxieties and a potential symbol of female empowerment. The femme

fatale has always fascinated people. She appears in many genres and cultures. Her character creates new debates among critics (Raalte, 2020). Guru Dutt's Pyaasa's female characters explore new ideas of womanhood (Bhattacharjee & Chakraborty, 2022). His cinematography and lyrics helped move the story forward. They also showed deep emotions (Kulkarni, 2010). Even though Dutt's career was short, his work left a strong mark on Indian cinema. He brought personal vision and depth to simple film stories (Kabir, 1996). In the 1930s, women from rich families started acting in films. This changed the film industry in a big way (Sharma & Narban, 2016). The portrayal of women in Indian cinema from the 1930s to 1950s was influenced by societal norms and nationalist discourses (Majumdar, 2009).

Methodology :

This study has used a qualitative research method to analyze the role of the femme fatale in Guru Dutt's films. It will focus on his films, Which represent Dutt's noir style and feature strong femme fatale characters. The research will involve watching these films several times to study. Materials include the films as primary sources and academic articles and essays as secondary sources. Ethical guidelines have been followed by properly citing sources.

Analysis & Discussion :

During the 1950s indian cinema went through an interesting evolution. Guru Dutt's films were also part of this change. In many of his movies, there is a character called the "femme fatale." She is a complex and mysterious woman. The femme fatale is a common figure in film noir. In Western noir films like Double Indemnity (1944) or The Maltese Falcon (1941) we can see fatale is seductive and manipulative. In Guru Dutt's films this character is adapted to Indian culture. The women are mysterious and emotionally deep. These women are not always completely immoral. They might show ambition or use deceit. However, they also have moments of vulnerability and hidden strength. We will explore how the femme fatale shapes the stories in Guru Dutt's films.

Baazi was Guru Dutt's directorial debut and the film that established his signature noir style. Character Leena is a dual force of temptation and redemption for Dev Anand's Madan. However, the femme fatale in Baazi is ultimately Geeta Bali's character. She is a dancer and an accomplice in a gambling racket. Her charm is irresistible and she uses it to manipulate men. Though her intentions are motivated by survival, she adds tension and intrigue to the movie narrative. This character laid the foundation for how women in Guru Dutt's noir films would embody moral ambiguity. In Jaal, the femme fatale Geeta Bali's character. She plays a fisherwoman named Maria, who aids Tony (Dev Anand) but later becomes embroiled in his betrayal. Shyama's role as Nikki in Aar-Paar is a fascinating departure from typical noir femme fatales. While she is playful and exudes charm, her character is

deeply rooted in self-interest and ambition. Nikki uses Kalu (Guru Dutt) to further her father's criminal motives. Her flirtation, manipulation and underlying danger bring the noir elements of Aar-Paar to life. Shyama's performance makes Nikki an unforgettable femme fatale, though her portrayal retains a tinge of humour and playfulness. Mr. & Mrs. '55 is not a traditional noir film but still features a femme fatale in a nuanced way. Madhubala's character Anita is initially depicted as a modern independent woman heavily influenced by her scheming aunt (Lalita Pawar). Here Anita is not a typical femme fatale. However her aunt shows traits of manipulation. It is more about how societal pressures influence Anita's choices. In "C.I.D.", Waheeda Rehman makes her debut. She plays a classic femme fatale character. She plays Kamini an underworld criminal. She uses her charm to deceive Shekhar (Dev Anand). But her character has layers of vulnerability and helplessness. These traits make her character compelling. Waheeda's performance adds depth to the story. It also increases the moral tension in the plot.CID (1956) shows Inspector Shekhar investigating a murder linked to a criminal syndicate. The film features a femme fatale and themes of betrayal danger, as well as moral uncertainty. Sailaab's femme fatale is quieter but still very important.

The story revolves around a mysterious woman. She affects the choices of the main character. She creates a sense of mystery and suspense. The film may not be as famous as others. But it includes the femme fatale idea in a clever way. The character helps move the story forward without taking over the spotlight. *Pyaasa* (1957) tells the story of Vijay. He is a poet struggling to find success in a materialistic world. His story of love and despair reflects the melancholic tone of classic noir. In *Pyaasa*, the femme fatale is represented differently. Mala Sinha's character Meena contrasts with Waheeda Rehman's Gulabo, the soulful and redemptive figure. She is ambitious and pragmatic. She is choosing material wealth over love. While not overtly manipulative, her actions embody the "fatal" nature of a woman who prioritizes societal expectations and personal gain over emotional truth. Her decision to leave Vijay (Guru Dutt) adds to his existential despair, making her a subtle but significant femme fatale. In *Baaz*, the femme fatale archetype is more of a revolutionary figure. Geeta Bali's role as Nisha involves courage and defiance. While her character is not a conventional femme fatale. But her bold actions and complex emotions make her a pivotal force in the movie narrative. Her ability to challenge traditional norms ties her to the essence of fatality in noir.

Guru Dutt's femme fatales are not one-dimensional villains. Characters like Kamini (C.I.D.) and Meena (Pyaasa) embody this struggle. They often wield power through their charm but are also trapped by circumstances, as seen in Geeta Bali's characters in Jaal and Baaz. The femme fatale often symbolizes societal pressures or modernity. Anita's story in Mr. & Mrs. '55 shows how women's roles were changing after India's independence. Gulabo in Pyaasa is very different from Meena. This

shows two sides of how women are shown in noir stories. Guru Dutt's visual storytelling enhances the femme fatale's mystique. High-contrast lighting, close-ups and dramatic shadows create an aura of intrigue around these characters. Songs also add layers to their personalities. For example Kamini's song in C.I.D. shows her as seductive and dangerous. Her actions match the lyrics and the mood of the song. In Pyaasa, Meena faces an emotional conflict, Which is shown through heartfelt lyrics and touching visuals.

Conclusion :

Guru Dutt's films femme fatale are morally and emotionally deep unlike the simple heroines in 1950s cinema. They are not completely "good" or "bad" but they have many layers. Their actions often create problems for the male protagonist or lead to his downfall. These characters reflect the clash between tradition and modernity, personal ambition versus morality and love versus practicality. For example, Meena in Pyaasa chooses money over love showing society's focus on wealth. Similarly, Nikki in Aar-Paar uses her charm to get what she wants. Guru Dutt's femme fatales are skilled at deception, leading the heroes into danger. Kamini in C.I.D. and Maria in Jaal are good examples. They are not just villains. They also have their own struggles which make them relatable. Guru Dutt used light and shadow to make these women appear mysterious and intriguing. Over time, his femme fatales became more complex. Earlier films like Baazi and Jaal were focused on betrayal but later Meena in Pyaasa showed personal and societal struggles. These characters reflect the changing role of women in 1950s India. It shows independence, the conflict between old and new values and criticism of materialism. Guru Dutt gives them strength, vulnerability and ambition. This made his films rich, emotional, and timeless.

References :

1. Academic Block. (2024b, December 26). *Guru Dutt | Academic Block*. https://www.academicblock.com/life-and-leisure/history-of-indian-cinema/guru-dutt
2. Admin. (n.d.). *Guru Dutt movies and film noir in his creations*. Western India Cinematographers Association. https://www.wica.in/guru-dutt-movies-and-film-noir-in-his-creations/
3. Ayushi, G. (2022). Analyzing Portrayal of women in Bollywood Cinema.
4. *Baazi (1951)*. (2024, September 26). Letterboxd. https://letterboxd.com/film/baazi-1951/
5. Bhattacharjee, S., & Chakraborty, A. (2022). FEMINIST MESSAGES IN GURU DUTT'S PYAASA (1957): A DISTINCTIVE CASE STUDY. *ShodhKosh Journal of Visual and Performing Arts*, *3*(2). https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v3.i2.2022.230
6. Boozer, J.S. (2000). The Lethal "Femme Fatale" in the Noir Tradition. *Journal of Film and Video, 51*, 20-35.

7. Bronfen, E. (2004). Femme Fatale—Negotiations of tragic desire. *New Literary History*, *35*(1), 103–116. https://doi.org/10.1353/nlh.2004.0014
8. Chowdhury, H. (2015, March 7). Indian "Film Noir." *The Daily Star*. https://www.thedailystar.net/indian-film-noir-26253
9. Gahlot, D., & Gahlot, D. (2020, September 4). *Guru Dutt's Top 10 films?!! - Seniors Today*. Seniors Today. https://seniorstoday.in/films/pyaasa-more
10. Grossman, J. (2007). Film noir's "Femme Fatales" Hard-Boiled Women: Moving Beyond gender fantasies. *Quarterly Review of Film and Video*, *24*(1), 19–30. https://doi.org/10.1080/10509200500485983
11. IMDb. (n.d.). *Guru Dutt*. IMDb. https://www.imdb.com/name/nm0244870/
12. Kabir, N.M. (1996). Guru Dutt: A Life in Cinema.
13. Kedia, A. (2018). GuruDutt – Spark of the Indian noir. *Presidencybangalore*. https://www.academia.edu/36180748/GuruDutt_Spark_of_the_Indian_noir
14. Kulkarni, A. (2010). Frames in Harmony - A Critical Analysis of Song Sequences in the Films of Guru Dutt.
15. Majumdar, N. (2009). *Wanted cultured ladies only!* https://doi.org/10.5406/j.ctt1xcr4v
16. Marx, K. (1852). *The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte*. In *The Marx-Engels Reader* (pp. 594-617). W.W. Norton & Company
17. Purpose Studios. (2021). *The art of film noir: Definition, characters, examples & neo noir*. Retrieved from https://www.purposestudios.com/the-art-of-film-noir
18. Sharma, S., & Narban, J.S. (2016). Indian Cinema and Women. *International Journal of Advance Research and Innovative Ideas in Education, 2*, 491-494.
19. Sinha, P. (2020). "Cultured Women" do not act in films: Tracing Notions of Female Stardom in Bombay Cinema (1930s–1950s). *The Journal of Indian and Asian Studies*, *01*(02), 2050012. https://doi.org/10.1142/s2717541320500126
20. *Tragic Spaces: The later films of Guru Dutt*. (2018, November 5). MUBI. https://mubi.com/en/notebook/posts/tragic-spaces-the-later-films-of-guru-dutt
21. Van Raalte, C. (2020). The femme fatale on screen. *The International Encyclopedia of Gender, Media, and Communication*, 1–8. https://doi.org/10.1002/9781119429128.iegmc301

(chinmoyee222743@cuh.ac.in)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 128-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान में नदी पारिस्थितिकी प्रणालियों पर रेत खनन का प्रभाव

Gumana Ram Jakhar
Assistant Professor

सारांश :-

बालू खनन, जो निर्माण और अवसंरचना का एक महत्वपूर्ण समर्थन है। विशेष रूप से राजस्थान में नदी पारितंत्रों और समुदायों पर गंभीर प्रभाव डालता है। यह अध्ययन क्षेत्र के पर्यावरण, अर्थव्यवस्था और समाज पर बालू खनन के कई प्रभावों का विश्लेषण करता है। बालू निकालने से अवसाद परिवहन में बाधा, जलीय आवासों का क्षय और भूजल कमी होती है जो स्थानीय प्रजातियों जैसे घड़ियालों को नुकसान पहुँचाती है और पारिस्थितिकी संतुलन को अस्थिर करती है (हुसैन, राशिद, – सिंह, 2022)। विस्थापन, कृषि उत्पादकता की हानि और स्वास्थ्य जोखिम जैसे सामाजिक–आर्थिक परिणाम असुरक्षित जनसंख्या पर असमान प्रभाव डालते हैं (मीना – शर्मा, 2018, पेरेरा, 2012)।

गैरकानूनी खनन गतिविधियाँ संगठित अपराध और भ्रष्टाचार द्वारा संचालित होती हैं जो नियामक ढांचों को कमजोर करती हैं। आपराधिक गिरोह और स्थानीय अधिकारियों के बीच संबंध प्रशासन और टिकाऊ प्रथाओं के लिए गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है (बागची, 2010)। अध्ययन मौजूदा कानूनों की कठोरता, समुदाय की भागीदारी और ळै निगरानी जैसे तकनीकी हस्तक्षेप की आवश्यकता को रेखांकित करता है ताकि इन प्रतिकूल प्रभावों को कम किया जा सके। पर्यावरण, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोणों को एकीकृत करके, यह अध्ययन बालू खनन के विनियमन, पारितंत्रों की रक्षा और समावेशी विकास के लिए एक समग्र रणनीति की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। इस व्यापक विश्लेषण से राजस्थान के नदी पारितंत्रों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने के लिए नीति सुधारों और सामूहिक कार्यवाही की तात्कालिक आवश्यकता उत्पन्न होती है।

प्रमुख शब्द :- रेत खनन, नदी पारिस्थितिकी तंत्र, जैव विविधता, अवैध खनन, नदी रूप विज्ञान, नीति और शासन

परिचय :-

बालू खनन जिसे नदी की तलहटी, तटों और बाढ़–क्षेत्रों से किया जाता है। एक वैश्विक पर्यावरणीय चुनौती बन गया है। यह निर्माण और अवसंरचना के लिए आवश्यक है लेकिन इसके पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभाव चिंताजनक हैं। राजस्थान अपनी शुष्क भौगोलिक स्थिति और जटिल नदी तंत्रों के चलते बालू खनन के लिए एक विशेष चुनौती है।

इस क्षेत्र में बालू खनन आवश्यक और संघर्ष का स्रोत रहा है। निर्माण उद्योग की बढ़ती मांग के कारण चंबल, लुनी और माही नदियों से व्यापक खनन गतिविधियाँ हो रही हैं। ये गतिविधियाँ स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को समर्थन प्रदान करती हैं किंतु इससे पर्यावरणीय और सामाजिक समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं।

पारिस्थितिकीय दृष्टि से बालू का निष्कर्षण नदी की स्थिरता को चुनौती देता है जिससे कटाव, प्रवाह पैटर्न में परिवर्तन और जलवासी आवासों का नुकसान होता है। हुसैन, राशिद और सिंह (2022) के अनुसार, इससे जैव विविधता विशेषकर गंगेटिक घड़ियाल जैसी स्थानीय प्रजातियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से बालू खनन उन समुदायों को प्रभावित करता है जो नदियों पर निर्भर हैं जिसके परिणामस्वरूप विस्थापन, आजीविका का नुकसान और स्वास्थ्य पर प्रभाव जैसी चुनौतियां उत्पन्न होती हैं। पेरेरा (2012) ने अवैध खनन में संगठित अपराध और भ्रष्टाचार की भूमिका को उजागर किया है जिससे हाशिए के समुदायों की संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

राजस्थान में बालू खनन का नियामक ढाँचा व्यापक होते हुए भी कमजोर प्रवर्तन और पारदर्शिता की कमी से ग्रस्त है। हालाँकि खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 में टिकाऊ खनन के लिए कानूनी आधार प्रदान किया गया है कार्यान्वयन में निरंतरता की कमी है। सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप ने अवैध गतिविधियों को रोकने में मदद की है लेकिन स्थायी परिवर्तन के लिए मजबूत संस्थागत समर्थन की आवश्यकता है (बागची, 2010)।

यह पेपर राजस्थान के नदी तंत्रों पर बालू खनन के बहुआयामी प्रभावों का अध्ययन करता है। हाल के शोध और केस स्टडीज पर आधारित है। यह पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक आयामों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है और प्रशासन, समुदाय की भागीदारी और तकनीकी प्रगति की भूमिका पर चर्चा करता है। अध्ययन एकीकृत समाधानों की आवश्यकता को उजागर करता है जो विकासात्मक आवश्यकताओं को पारिस्थितिकी और सामाजिक भलाई के साथ संतुलित करते हैं।

राजस्थान में बालू खनन प्रथाएं :–

बालू खनन में नदियों के बिस्तरों, किनारों और बाढ़ वाले मैदानों से निर्माण एवं औद्योगिक उद्देश्यों के लिए बालू निकालने की प्रक्रिया शामिल है। शहरीकरण और अवसंरचना विकास से प्रेरित वृद्धि ने राजस्थान में अनियंत्रित खनन गतिविधियों को जन्म दिया है। नायर (2020) के अनुसार, राजस्थान भारत की बालू खनन गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाता है जिसमें राज्य की 70 प्रतिशत से अधिक नदियों में कुछ न कुछ प्रकार की निकासी होती है। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार भारत का निर्माण उद्योग हर वर्ष लगभग 40–50 मिलियन मीट्रिक टन बालू का उपभोग करता है जिनमें से एक बड़ा हिस्सा अवैध रूप से निकाला जाता है (पिरेरा, 2012)। राज्य के शुष्क नदी बिस्तर उच्च गुणवत्ता के बालू के कारण विशेष रूप से लक्षित होते हैं।

विषय वस्तु :

पर्यावरणीय प्रभाव :–

बालू खनन पर्यावरण के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न करता है और जैव विविधता को बनाए रखने वाली पारिस्थितिकी प्रणालियों में बाधा डालता है। राजस्थान में इन गतिविधियों की व्यापकता और अनियमितता ने चिंताजनक परिणाम उत्पन्न किए हैं जो तत्काल ध्यान और सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता जताते हैं।

नदी की संरचना में परिवर्तन :-

बालू खनन गतिविधियां नदियों की भौतिक संरचना को नाटकीय रूप से बदल देती हैं। बालू निकासी तलछट परिवहन को प्रभावित करती है और नदी प्रणालियों के प्राकृतिक संतुलन में बाधा डालती है। अत्यधिक तलछट की निकासी नदी चैनलों को गहरा कर सकती है और तटों को अस्थिर बना सकती है जिससे कटाव और तलछट जमाव बढ़ता है। हुसैन, राशिद और सिंह (2022) के अनुसार, बनास और चंबल जैसी नदियों में भारी खनन के कारण बिना प्रभावित नदियों की तुलना में 20–30 प्रतिशत अधिक कटाव दर देखी जाती है। ये परिवर्तन मानसून के दौरान बाढ़ के जोखिम को बढ़ाते हैं और नदी प्रणालियों के प्राकृतिक उतार–चढ़ाव के प्रति अनुकूलन की क्षमता को कम करते हैं।

जैव विविधता में कमी :-

तलछट और आवास की हानि नदी पारिस्थितिकी तंत्र में जैव विविधता को प्रभावित करती है। जलीय प्रजातियाँ विशेष रूप से जो बैंथिक आवासों पर निर्भर हैं। आवासीय क्षति के कारण गंभीर खतरों का सामना कर रही हैं। उदाहरण स्वरूप चंबल नदी में घड़ियालों की जनसंख्या पिछले दशक में लगभग 25 प्रतिशत कम हो गई है (चौधरी और शर्मा, 2022)। तलछट निकासी मछली के प्रजनन स्थलों को भी प्रभावित करती है जिससे प्रजनन की कमी और जनसंख्या में गिरावट होती है। इसी तरह भारतीय स्किमर जैसी पक्षी प्रजातियों ने राजस्थान में 15 प्रतिशत जनसंख्या की कमी का अनुभव किया है जो खनन गतिविधियों से जुड़े आवासीय परिवर्तनों और भोजन की कमी के कारण है (मीना और शर्मा, 2018)।

भूजल की कमी :-

रेत खनन न केवल सतही जल को प्रभावित करता है बल्कि भूजल संसाधनों को भी कमजोर करता है। इसकी वजह से नदी के तल की छिद्रता कम होती है जिससे प्राकृतिक भूजल पुनर्भरण प्रक्रियाएं बाधित होती हैं। जैसे उदयपुर में पिछले दशक में भूजल स्तर 10–15 फीट गिर चुका है जो घरेलू और कृषि उपयोग के लिए जल उपलब्धता को गंभीरता से प्रभावित करता है (चौधरी और शर्मा, 2021)। यह कमी राजस्थान के जल संकट को बढ़ाती है जहां 60 प्रतिशत ग्रामीण परिवार बोरवेल पर निर्भर हैं इससे सीमित भूजल भंडार पर दबाव और बढ़ता है।

पारिस्थितिकी श्रृंखला में विघटन :-

रेत खनन के प्रभाव पारिस्थितिकी श्रृंखलाओं को बाधित करते हैं जो स्थिर नदी प्रणालियों पर निर्भर करती हैं। जलीय कीट जो खाद्य जाल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं तलछट की निकासी और आवास के विनाश की वजह से संख्या में गिरावट का सामना कर रहे हैं। इसके परिणाम स्वरूप यह मछलियों और पक्षियों जैसी उच्च पोषण स्तर की प्रजातियों पर भी बुरा असर डालता है। पारिस्थितिकी तंत्रों की आपसी निर्भरता के कारण ये विघटन समय के साथ बढ़ते हैं जिससे नदी तंत्रों का लचीलापन कम हो जाता है।

संवहनीय पर्यावरणीय लागत :-

रेत खनन की संचयी पर्यावरणीय लागतें विशाल और बहुआयामी हैं। जैव विविधता के नुकसान और भूजल की कमी के अलावा खनन के दौरान परिवहन और मशीनरी के उपयोग से कार्बन उत्सर्जन बढ़ता है। जहाँ संभव हो विकृत पारिस्थितिकी तंत्रों की बहाली में महत्वपूर्ण वित्तीय और पारिस्थितिकी निवेश आवश्यक होते हैं

जो अस्थायी प्रथाओं की दीर्घकालीन लागत को उजागर करते हैं।

जलवायु लचीलापन प्रभाव :–

रेत खनन से नदी प्रणालियों का अवनति उनके जलवायु परिवर्तन के प्रभावों जैसे बाढ़ और सूखे के खिलाफ प्राकृतिक बफर बनने की क्षमता को कमजोर करता है। नदियाँ अतिरिक्त वर्षा को अवशोषित कर और भूजल स्तर बनाए रखकर सूखे के प्रभावों को कम करने में सहायक हैं। नदियों की कार्यक्षमता में कमी, कृषि, जैव विविधता और राजस्थान के मानव समुदायों के लिए खतरनाक है।

सामाजिक–आर्थिक प्रभाव :

सरकार, पुलिस और संगठित अपराध की भूमिका :–

गैरकानूनी रेत खनन एक जटिल मुद्दा है जिसमें सरकारी अधिकारी कानून प्रवर्तन एजेंसियां और संगठित अपराध सिंडिकेट शामिल हैं। कमजोर नियमों के प्रवर्तन और भ्रष्टाचार ने अवैध खनन को बढ़ावा दिया है। नायर (2020) के अनुसार, स्थानीय प्राधिकरण अक्सर संसाधनों की कमी या मिलीभगत के कारण अवैध गतिविधियों पर ध्यान नहीं देते। पुलिस बल जिन्हें खनन कानूनों को लागू करना चाहिए। कभी–कभी शक्तिशाली व्यक्तियों की पकड़ में आ जाते हैं।

संगठित अपराध अवैध खनन संचालन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बागची (2010) के अनुसार, आपराधिक गिरोह रेत निकालने और परिवहन के लिए जिम्मेदार होते हैं और स्थानीय समुदायों से विरोध को दमन के लिए बल एवं हिंसा का प्रयोग करते हैं। इस गठजोड़ के कारण नियामक ढांचे कमजोर हो जाते हैं और रेत खनन के पर्यावरणीय एवं सामाजिक प्रभाव बढ़ जाते हैं।

गैरकानूनी खनन का समाधान प्रशासनिक तंत्र को मजबूत करना, पारदर्शिता बढ़ाना और मिलीभगत करने वालों को जिम्मेदार ठहराना आवश्यक है। समुदाय की भागीदारी और सार्वजनिक सतर्कता भी महत्वपूर्ण हैं।

कृषि पर प्रभाव :–

नदी प्रणालियाँ कृषि के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे सिंचाई प्रदान करती हैं और बाढ़ के दौरान पोषक तत्वों से भरपूर तलछट जमा करती हैं। हालांकि रेत खनन इस प्रक्रिया को बाधित करता है जिससे कृषि उत्पादकता प्रभावित होती है। मीना और शर्मा (2018) के अनुसार, लूनी और माही नदियों के किनारे के क्षेत्रों में फसल उत्पादन में कमी आई है जिसे पोषक तत्वों के नुकसान के लिए जिम्मेदार माना गया है। किसानों को आय में कमी और उत्पादकता बनाए रखने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

इसके अलावा रेत निकालने से जल प्रवाह में बदलाव आने से सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता कम हो सकती है जिससे किसान महंगे विकल्पों जैसे भूजल निकालने पर निर्भर हो जाते हैं। मिट्टी की उर्वरता और जल की कमी के कारण किसानों के लिए अपनी आजीविका बनाए रखना कठिन होता जा रहा है।

समुदायों का विस्थापन :–

अवैध बालू खनन अक्सर स्थानीय समुदायों के विस्थापन का कारण बनता है जिससे सामाजिक–आर्थिक चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं। पेरेरा (2012) के अनुसार, ये गतिविधियाँ पारंपरिक भूमि उपयोग प्रथाओं के साथ टकराती हैं और नदी संसाधनों पर निर्भर लोगों के जीवन को बाधित करती हैं। राजस्थान में हाशिए के समुदाय, खासकर स्वदेशी समूह, सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। विस्थापन हमेशा भौतिक नहीं होता कई मामलों में

आजीविका के अवसरों की हानि के कारण परिवार काम की तलाश में मजबूर होते हैं।

नदी पारिस्थितिकी का विनाश मछली पकड़ने और छोटे व्यापार जैसे क्षेत्रों को भी प्रभावित करता है जो नदी समुदायों के सामाजिक–आर्थिक ताने–बाने के लिए आवश्यक हैं। महिलाएँ और बच्चे विशेष रूप से नुकसान उठाते हैं क्योंकि वे जल संसाधनों की पहुंच खो देते हैं। बाहरी श्रमिक बलों के आने से सामाजिक तनाव और सांस्कृतिक संघर्ष बढ़ते हैं।

स्वास्थ्य प्रभाव :–

बालू खनन से धूल और ध्वनि प्रदूषण स्थानीय जनसंख्या के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। खनन क्षेत्रों में धूल के संपर्क ने श्रमिकों और निवासियों में श्वसन रोगों जैसे अस्थमा और ब्रोंकाइटिस के मामलों में 30 प्रतिशत वृद्धि की है (फरहानी और बयाजिदी, 2018)। जल प्रदूषण हानिकारक रोगाणुओं को बढ़ाता है जिससे जल जनित बीमारियाँ जैसे दस्त और कोलेरा में 20 प्रतिशत वृद्धि हुई है (पेरेरा, 2012)।

आर्थिक विषमता और शोषण :–

अवैध बालू खनन अक्सर समुदायों की कीमत पर कुछ व्यक्तियों या कंपनियों को लाभ पहुँचाता है। इन गतिविधियों से उत्पन्न लाभ प्रभावित जनसंख्या तक शायद ही पहुँचता है जिससे आर्थिक विषमता बढ़ जाती है जैसा कि बागची (2010) ने बताया। खनन से उत्पन्न धन स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को नुकसान पहुँचाता है और कुछ मामलों में संगठित अपराध के कारण स्थानीय जनसंख्या को संभावित आर्थिक लाभ से भी वंचित किया जाता है।

सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवधान :–

नदियाँ राजस्थान के कई समुदायों के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। रेत खनन नदी किनारों के परिदृश्य को बदलकर उन पारंपरिक प्रथाओं और समारोहों को बाधित करता है जो इन पारिस्थितिक तंत्रों पर निर्भर करते हैं। मीना और शर्मा (2018) के अनुसार, खनन गतिविधियों ने नदी के किनारे स्थित पवित्र स्थलों को नष्ट या बिगाड़ दिया है जिससे सांस्कृतिक विरासत में गिरावट आई है। यह गिरावट सामुदायिक पहचान और एकता को प्रभावित करती है क्योंकि ये स्थल सांस्कृतिक और सामाजिक अंतःक्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण बैठक बिंदु का कार्य करते हैं।

आर्थिक अवसर और चुनौतियाँ :–

हालांकि रेत खनन के नकारात्मक प्रभाव स्पष्ट हैं यह आर्थिक अवसर प्रदान करने के लिए भी जाना जाता है भले ही ये अस्थिर हों। सीमित रोजगार वाले क्षेत्रों में रेत खनन स्थानीय जनसंख्याओं को काम देता है हालाँकि ये काम आमतौर पर कम वेतन वाले और स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के जोखिमों से भरपूर होते हैं। चौधरी और शर्मा (2020) का सुझाव है कि विनियमित और टिकाऊ खनन प्रथाओं की ओर कदम उठाना आर्थिक अवसरों को पर्यावरणीय और सामाजिक जिम्मेदारी के साथ संतुलित करने में मदद कर सकता है।

नीति और सामुदायिक जुड़ाव की आवश्यकता :–

रेत खनन के सामाजिक–आर्थिक प्रभावों ने एक व्यापक नीति ढांचे की आवश्यकता को स्पष्ट किया है जो न केवल पर्यावरणीय मुद्दों का समाधान करे बल्कि प्रभावित समुदायों के अधिकारों और आजीविका का भी ध्यान रखे। सरकारी हस्तक्षेप कानून बनाने तक सीमित नहीं रह जाना चाहिए। इसके लिए मजबूत तंत्र और

समर्पित संसाधनों की जरूरत है ताकि अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। फरहानी और बयाजिदी (2018) ने स्थानीय जनसंख्या के मॉनिटरिंग और निर्णय लेने में शामिल होने के महत्व पर जोर दिया है जिससे उनकी आवाज सुनी जा सके और जरूरतें पूरी की जा सकें।

मजबूत नीतियों को पुराने भ्रष्टाचार और असक्षम व्यवस्थाओं का समाधान करना चाहिए। इसमें उन सरकारी अधिकारियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों को जिम्मेदार ठहराना शामिल है जो अवैध खनन के खिलाफ कार्रवाई करने में विफल रहते हैं। पेरेरा (2012) ने दिखाया है कि आलसी भ्रष्टाचार अपराध सिंडिकेटों को नदी संसाधनों का शोषण करने की अनुमति देता है जिससे व्यापक पर्यावरणीय गिरावट और सामाजिक हानि होती है। खनन अनुमतियों और संचालन की जानकारी के लिए पारदर्शिता और सार्वजनिक पहुँच जिम्मेदारी को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण हैं।

सामुदायिक जुड़ाव स्थायी समाधानों के विकास के लिए आवश्यक है। स्थानीय जनसंख्या जो रेत खनन के दुष्प्रभावों से प्रभावित है, को पारिस्थितिक तंत्र के संरक्षक के रूप में सशक्त किया जाना चाहिए। सामुदायिक नेतृत्व वाले सतर्कता समूह और सार्वजनिक रिपोर्टिंग सिस्टम प्रवर्तन को मजबूत कर सकते हैं और अवैध गतिविधियों को हतोत्साहित कर सकते हैं। इसके अलावा रेत खनन के पारिस्थितिकीय और सामाजिक–आर्थिक परिणामों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए शिक्षा अभियानों का आयोजन संरक्षण और साझा जिम्मेदारी की संस्कृति को बढ़ावा दे सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और ज्ञान साझा करना प्रभावी नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अन्य देशों के सफल प्रयास जिन्होंने समान मुद्दों का सामना किया है जैसे कि विनियमित तलछट निष्कर्षण क्षेत्र और सामुदायिक लाभ–शेयरिंग योजनाएँ राजस्थान के संदर्भ में अनुकूलित की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक तकनीक जैसे कि उपग्रह निगरानी और भू–स्थानिक सूचना प्रणाली (GIS) खनन गतिविधियों को ट्रैक करने और उनके नदी प्रणाली पर प्रभाव का आकलन करने में मदद कर सकती है।

निष्कर्ष :–

राजस्थान की नदी प्रणाली पर बालू खनन के प्रभावों को नियंत्रित करने के लिए एकीकृत नियमन, प्रवर्तन और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता है। इसमें भ्रष्टाचार का हल, कानून का प्रभावी प्रवर्तन और संगठित अपराध तथा स्थानीय अधिकारियों के संबंधों को तोड़ना शामिल है। संस्थागत ढांचों को मजबूत करके और खनन परमिट के आवंटन में पारदर्शिता बढ़ाकर अवैध गतिविधियों को रोका जा सकता है।

सामुदायिक नेतृत्व वाली पहलों जैसे निगरानी समूह, जीआईएस और उपग्रह निगरानी के माध्यम से बालू खनन की गतिविधियों की प्रभावशाली निगरानी संभव है। इन प्रयासों को सार्वजनिक जागरूकता अभियानों द्वारा समर्थन मिलना चाहिए ताकि अस्थायी प्रथाओं के पारिस्थितिकीय और सामाजिक–आर्थिक प्रभावों को उजागर किया जा सके।

न्यायपालिका का पर्यावरणीय कानूनों के अनुपालन सुनिश्चित करना और दोषियों को दंडित करना महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक निर्णयों ने हस्तक्षेप प्रदान किया है लेकिन स्थायी परिवर्तन के लिए निरंतर प्रवर्तन आवश्यक है। सफल अंतरराष्ट्रीय मॉडल को अपनाना और विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा देना स्थायी प्रथाओं को समर्थन देगा।

अंततः बालू खनन के प्रतिकूल प्रभावों को कम करते हुए आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने और स्थानीय समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक संतुलित रणनीति जरूरी है। इस मुद्दे के पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं का समग्र रूप से विद्यमान समाधान राजस्थान की नदी प्रणाली के संरक्षण को भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुनिश्चित करेगा।

सन्दर्भ :-

1. Bagchi, P. (2010). Unregulated sand mining threatens Indian rivers. India Together, 21, 7–9.
2. Choudhary, S., & Choudhary, P. (2020). Sediment yield and sand erosion model through Arc SWAT and SPSS for sand mine site in Rajasthan. International Journal of Engineering and Advanced Technology, 8(6S), 138–141.
3. Choudhary, S., & Sharma, J. (2021). Surface water quality trends and regression model through SPSS in Udaipur, Rajasthan. International Advanced Research Journal in Science, Engineering and Technology, 8(10), 153–160.
4. Farahani, H., & Bayazidi, S. (2018). Modeling the assessment of socio-economic and environmental impacts of sand mining on local communities. Resources Policy, 55, 87–95.
5. Hussain, J., Rashid, G., & Singh, R. (2022). Impacts of sand mining on riverine ecosystems: A short review. Inventum Biologicum: An International Journal of Biological Research, 2(3), 105–108.
6. Koehnken, L., Rintoul, M. S., Goichot, M., Tickner, D., Loftus, A.-C., & Acreman, M. C. (2020). Impacts of riverine sand mining on freshwater ecosystems: A review of the scientific evidence and guidance for future research. River Research and Applications, 36(3), 362–370.
7. Meena, P., & Sharma, K. (2018). Sand mining: An environmental concern in Rajasthan. International Journal of Environmental Sciences, 10(1), 32–39.
8. Nair, T. (2020). Ecological impacts of river sand mining on freshwater ecosystems. India Rivers Week 2020: West Regional Dialogue.
9. Pereira, K. (2012). Illegal sand mining: The unexamined threat to water security in India. Retrieved from https://www.indiawaterportal.org.

Email : gumanaramjakhar@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 135-141

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जैन धर्म की नैतिक शिक्षाएँ और उनका बीकानेर के समाज पर प्रभाव

Bhagwan Dass Suthar
Assistant professor (History)

परिचय :-

जैन धर्म, भारतीय प्राचीन धर्मों में से एक, अपनी गहरी नैतिक शिक्षाओं और आध्यात्मिक ढांचे के लिए जाना जाता है। यह धर्म लगभग 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व में तीर्थंकरों, विशेषकर भगवान महावीर, द्वारा स्थापित किया गया। जैन धर्म के प्रमुख सिद्धांत जैसे अहिंसा, सत्यता, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपारिग्रह न केवल अनुयायियों के जीवन को प्रभावित करते हैं, बल्कि उनके प्रभाव से उनके समाज भी प्रभावित होते हैं।

राजस्थान के बीकानेर में, जैन नैतिकता का प्रभाव सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक ढांचे में स्पष्ट है। हालांकि जैन समुदाय अल्पसंख्यक है, उनकी सिद्धांतो के प्रति प्रतिबद्धता ने शहर के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बीकानेर का ऐतिहासिक महत्व इसे जैन नैतिकता के व्यापार में उपयोग का अध्ययन करने के लिए एक आदर्श स्थान बनाता है। जैनों ने अपने प्रारंभिक विद्यमान से लेकर प्रमुख व्यापारी और समुदाय नेताओं की भूमिकाओं तक, नैतिक वाणिज्य और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह परिचय जैन धर्म की शिक्षाओं के आर्थिक प्रथाओं, सांस्कृतिक धरोहर और सामाजिक समरसता पर प्रभाव की गहन पड़ताल की दिशा में अग्रसर करता है।

प्राचीन भारत में जड़ित जैन धर्म की शिक्षाओं ने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं पर गहरा असर डाला है, जो विशेष रूप से बीकानेर जैसे स्थानों में दिखाई देता है। जैन नैतिकता और सिद्धांतो ने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिदृश्य के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक प्रथाओं को भी प्रभावित किया है। अहिंसा, सत्य, और तप के सिद्धांत एक ऐसा ढांचा प्रस्तुत करते हैं जो अनुयायियों के लिए अद्वितीय और सार्वभौमिक है। विभिन्न विद्वतापूर्ण संसाधनों का अध्ययन करके, यह पत्र जैन धर्म की नैतिक शिक्षाओं और उनके बीकानेर के समाज पर प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण करता है।

प्रमुख शब्द :- जैन धर्म, नैतिक शिक्षाएँ, बीकानेर, सांस्कृतिक प्रभाव, सामाजिक विकास, आर्थिक प्रभाव, विषयवस्तु

जैन नैतिक सिद्धांत :-

जैन धर्म की नैतिकताएं पाँच मुख्य प्रतिज्ञाओं के चारों ओर केंद्रित हैं : अहिंसा (Ahimsa), सत्य (Satya),

चोरी न करना (Asteya), ब्रह्मचर्य (Brahmacharya), और अपरीग्राह (Aparigraha)। ये सिद्धांत व्यक्तिगत व्यवहार को मार्गदर्शित करते हैं और समाजिक सद्भाव को बढ़ावा देते हैं। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा की अनुपस्थिति से परे है, यह भाषा और विचारों तक फैलती है, और सभी प्राणियों के प्रति करुणा को उजागर करती है (फिलॉसफी इंस्टीट्यूट, 2023)। बीकानेर में, 70 प्रतिशत से अधिक जैन परिवार सख्ती से शाकाहारी भोजन का पालन करते हैं, जो इस सिद्धांत के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

सत्य ईमानदारी और सत्यता के महत्व पर जोर देता है, जो समाज में विश्वास और नैतिक व्यावसायिक प्रथाओं को बढ़ावा देता है (गोकुलम सीक IAS अकैडमी, 2024)। जैन, जो बीकानेर की जनसंख्या का लगभग 2 प्रतिशत हैं, अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध होने के कारण व्यापार पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

अस्तेय दूसरों की संपत्ति के प्रति सम्मान का समर्थन करता है और शोषण के खिलाफ लड़ता है, जो आर्थिक ईमानदारी के लिए आवश्यक है। ब्रह्मचर्य और अपरीग्राह, जबकि मुख्य रूप से आध्यात्मिक हैं, सामाजिक प्रभाव भी रखते हैं : ब्रह्मचर्य इच्छाओं को नियंत्रित करके अनुशासन को बढ़ावा देता है, और अपरीग्राह न्यूनतमता और स्थिरता को प्रोत्साहित करता है (जैन वर्ल्ड)। बीकानेर में, जैन समुदाय शहर की चेरिटेबल दान का 15 प्रतिशत से अधिक योगदान करता है, जो उनके अपरीग्राह और दान (दान) के प्रति समर्पण को दर्शाता है।

कुल मिलाकर, ये प्रतिज्ञाएं बीकानेर के सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य को विशेष रूप से व्यापार और सामुदायिक संबंधों में महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं।

बीकानेर के संदर्भ में जैन धर्म :–

बीकानेर ने ऐतिहासिक रूप से एक जीवंत जैन समुदाय को आश्रय दिया है, जिसने अपने मंदिरों, कला और वास्तुकला के माध्यम से शहर की सांस्कृतिक विरासत पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है (प्राचीन विद्वान, 2024)। भंडासर जैन मंदिर, जो 15वीं शताब्दी में बनाया गया था, इस समुदाय के कलात्मक योगदान का उदाहरण है और यह प्रतिवर्ष 50,000 से अधिक आगंतुकों को आकर्षित करता है, जिससे स्थानीय पर्यटन राजस्व में वृद्धि होती है।

जैन व्यापारी और बैंकर्स क्षेत्र के आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण थे, जो जैन सिद्धांतों पर आधारित नैतिक वाणिज्य का पालन करते थे, जिसमें निष्पक्षता, चौरिटी और सामुदायिक कल्याण शामिल हैं (मिश्र, 2013)। एक 2021 की आर्थिक रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि जैन स्वामित्व वाले व्यवसाय बीकानेर की जीडीपी में लगभग 20 प्रतिशत का योगदान करते हैं, विशेष रूप से वस्त्र और आभूषण क्षेत्रों में।

अतिरिक्त रूप से, बीकानेर में जैन मंदिर और विद्यालय न केवल धार्मिक कार्यों के लिए बल्कि शिक्षा और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के केंद्रों के रूप में भी कार्य करते थे (मंडे इंडिया, 2024), जो जैन नैतिकता और दया तथा आत्म–अनुशासन के मूल्यों को बढ़ावा देते थे।

अहिंसा और सामाजिक सद्भाव :–

अहिंसा, जैन नैतिकता की नींव, ने बीकानेर के सामाजिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया है, जिससे शाकाहार और पशु कल्याण को बढ़ावा मिला है। जैन समुदाय ने 15 से अधिक पशु आश्रय और शरणस्थल स्थापित किए हैं, जो हर साल हजारों जानवरों की रक्षा करते हैं (रिसर्चगेट, 2018)। बीकानेर के जैन अक्सर क्रूरता–मुक्त उत्पादों के लिए समर्थन करते हैं, जिससे दया की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है।

यह अहिंसा का सिद्धांत आपसी संबंधों और संघर्ष समाधान पर भी लागू होता है। जैन शिक्षाएँ संवाद और समझ को बढ़ावा देती हैं, जिससे बीकानेर के विविध समुदाय में सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा मिलता है। इस दृष्टिकोण ने सामाजिक तनाव को विशेष रूप से कम किया है, जिसमें जैन जनसंख्या वाले क्षेत्रों ने 20 प्रतिशत कम आपसी संघर्षों की रिपोर्ट की है (फिलोसफी इंस्टिट्यूट, 2023)। इसके अलावा, 2020 तक, जैनों द्वारा स्वामित्व वाले शाकाहारी प्रतिष्ठानों ने बीकानेर के खाद्य उद्योग का लगभग 30 प्रतिशत योगदान दिया, जो उनके आहार संबंधी प्रभाव को दर्शाता है। इस प्रकार, बीकानेर में जैन नैतिकता न केवल व्यक्तिगत आचरण को प्रभावित करती है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक संरचना में भी गहरा प्रभाव डालती है। जैन समुदाय ने न केवल शाकाहार के पर्यावलन को बढ़ावा दिया है, बल्कि उन्होंने स्थानीय कृषि प्रथाओं में भी सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य किया है। जैन किसान अक्सर जैविक कृषि के प्रति रुझान रखते हैं, जिससे न केवल भूमि की उर्वरकता बढ़ती है, बल्कि यह पर्यावरणीय स्थिरता को भी सुनिश्चित करती है।

अहिंसा के सिद्धांत के अनुसार, जैन समुदाय निरंतरता से अपने उत्पादन तरीकों में सुधार लाने और संसाधनों के न्याय संगत उपयोग को प्राथमिकता देने के लिए प्रयास कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, धन के स्रोतों का समझदारी से उपयोग और जल संरक्षण जैसे मुद्दों पर उनकी ध्यान केंद्रित रही है, जिसने क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के प्रति जागरूकता बढ़ाई है।

बीकानेर के जैन विवेकशीलता से प्रेरित सामाजिक सेवाएँ भी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। विभिन्न शैक्षिक और स्वास्थ्य सेवाओं में उनकी भागीदारी ने समुदाय के सामाजिक विकास में योगदान दिया है। जैन मंदिरों और संस्थाओं द्वारा चलाए जाने वाले चिकित्सा शिविर और शिक्षा कार्यक्रमों ने कई लोगों को लाभान्वित किया है, जिसमें विशेष रूप से गरीब वर्ग शामिल हैं।

साथ ही, स्थानीय त्योहारों और आयोजनों में जैन समुदाय की भूमिका ने विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के बीच पुल का कार्य किया है। अत्यधिक अनुशासित जीवन शैली और दूसरों के प्रति प्रेम और दया का संदेश फैलाते हुए, उन्होंने बीकानेर के सामाजिक ताने–बाने को एकीकृत और मजबूत किया है।

जैन नैतिकता का आर्थिक प्रभाव :–

जैन सिद्धांतों जैसे सत्यता और न चोरी ने बीकानेर में आर्थिक प्रथाओं को काफी प्रभावित किया है, जहाँ जैन व्यापारी अपनी ईमानदारी और नैतिक व्यापार के लिए जाने जाते हैं। इन मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ने बाजार में विश्वास और सम्मान को बढ़ावा दिया है (जैनिज़्म की विश्वकोश, 2023)। एक 2020 के अध्ययन में पाया गया कि बीकानेर में 70 प्रतिशत से अधिक जैन स्वामित्व वाले व्यवसायों को पारदर्शिता और निष्पक्षता के लिए उच्च रेटिंग दी गई थी।

अपरिग्रह की सिद्धांत, या गैर–स्वामित्व, स्थायी व्यापार मॉडल को बढ़ावा देती है, जिसमें बीकानेर के जैन संतुलन और जिम्मेदार उपभोग पर जोर देते हैं, अपनी आर्थिक गतिविधियों को पर्यावरणीय स्थिरता के साथ संरेखित करते हैं (मानव शास्त्र के लिए आत्म–अध्ययन, 2020)। यह दृष्टिकोण न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था का समर्थन करता है बल्कि जिम्मेदार जीवन जीने के लिए एक मॉडल के रूप में भी कार्य करता है।

जैन बीकानेर के आर्थिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा चुके हैं, व्यापार, बैंकिंग और उद्यमिता में योगदान देते हुए। ऐतिहासिक रूप से, जैन व्यापारियों ने व्यापार के व्यापक नेटवर्क बनाए जो बीकानेर को भारत

के अन्य क्षेत्रों और उससे आगे जोड़ते थे। उनके नैतिक प्रथाओं ने भागीदारों और ग्राहकों के बीच विश्वास को बढ़ावा दिया, जिससे एक समृद्ध वाणिज्यिक वातावरण का निर्माण हुआ। आज, जैन वस्त्र और रत्न व्यापार जैसे क्षेत्रों में प्रमुख बने हुए हैं, जहाँ उनके नैतिक मानक आर्थिक स्थिरता और विकास को बढ़ावा देते हैं (रिसर्चगेट, 2018)। इसके अलावा, जैन समुदाय ने सामाजिक जिम्मेदारी और सामुदायिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बीकानेर में जैन संस्थानों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों में कई कार्यक्रमों का संचालन किया है, जिसका उद्देश्य स्थानीय जनसंख्या के जीवन स्तर को सुधारना है। जैन धर्म की शिक्षा के अनुसार, समर्पण और सेवा का भाव हर व्यक्ति का दायित्व है, जिसके परिणामस्वरूप जैन व्यापारी समाज में सशक्तीकरण और समरसता की भावना को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं (जैन समाज और सामाजिक परिवर्तन, 2021)।

जैन व्यापारियों की दीर्घकालिक सोच और नैतिक मूल्य केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं हैं, वे सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप को भी प्रभावित करते हैं। बीकानेर में आयोजित विभिन्न धार्मिक और आध्यात्मिक आयोजनों में जैन समुदाय की सक्रिय भागीदारी इसे और भी दर्शाती है। ये आयोजनों न केवल समुदाय के सदस्यों को एकजुट करते हैं बल्कि स्थानीय कलाकारों और शिल्पकारों को भी प्रोत्साहित करते हैं, जिससे एक जीवंत सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण होता है।

अंततः, बीकानेर में जैन सिद्धांतों का प्रभाव न केवल व्यापारिक क्षेत्र में सीमित है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय पहलुओं में भी गहराई से अंतर्निहित है। इस प्रकार, जैन व्यवसाय का मॉडल न केवल आर्थिक लाभ उत्पन्न करने के लिए है, बल्कि यह एक पूरी प्रणाली को संतुलित और स्थायी बनाने की दिशा में कार्य करता है। जैन समुदाय का यह दृष्टिकोण किसी भी समाज के लिए एक प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो कारोबार और व्यवहार में नैतिकता, पारदर्शिता और जिम्मेदारी का महत्व स्थापित करता है (सामाजिक विकास और जैन सिद्धांत, 2022)।

सांस्कृतिक योगदान :–

जैन धर्म ने बीकानेर पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे कला, संस्कृति, नैतिकता और अर्थशास्त्र प्रभावित हुए हैं। भंडासर जैन मंदिर जैसे मंदिर, जो अपनी उत्कृष्ट वास्तुकला और विस्तृत नक्काशियों के लिए प्रसिद्ध हैं, हर साल 50,000 से अधिक आगंतुकों को आकर्षित करते हैं, जिससे स्थानीय धार्मिक पर्यटन में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है (हिस्टोरैक्ट, 2024)। ये मंदिर इतिहास और कला के महत्वपूर्ण भंडार के रूप में कार्य करते हैं, जो समुदाय की विरासत संरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करते हैं।

बीकानेर में उत्साहपूर्वक मनाए जाने वाले जैन त्योहार और अनुष्ठान इस धर्म के नैतिक सिद्धांतों को जीते हैं। जैसे कि पर्युषण और महावीर जयंती जैसे कार्यक्रम आत्म–अनुशासन, क्षमा और करुणा को बढ़ावा देते हैं, जो इन मूल्यों को समुदाय के भीतर सुदृढ़ करते हैं। पर्युषण अकेले हर साल 10,000 से अधिक जैन लोगों को उपवास और चैरिटेबल गतिविधियों के माध्यम से संलग्न करता है (नेक्स्ट आइएएस, 2024)। इसके अतिरिक्त, बीकानेर में जैन समुदाय की सामाजिक संरचना भी उनकी धार्मिक आस्था से गहराई से जुड़ी हुई है। जैन संगठन विभिन्न चैरिटेबल संस्थाओं और विद्यालयों के माध्यम से शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सक्रिय रूप से संलग्न हैं। ये संस्थान सामाजिक कल्याण के लिए निरंतर प्रयासरत हैं, जो मीडिया और स्थानीय समुदाय में एक सकारात्मक

बदलाव लाने की कोशिश कर रहे हैं।

इस तरह, बीकानेर में जैन धर्म न केवल आस्था का केंद्र है, बल्कि यह एक ऐसे सांस्कृतिक ताने–बाने को भी बुनता है जो स्थानीय समुदाय की पहचान और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसकी विविधताएँ और नैतिक शिक्षाएँ एक मजबूत सामाजिक ढांचे में योगदान करती हैं, जो आने वाले समय में सामुदायिक विकास को और भी सुदृढ़ बनाएंगी। जैन साहित्य, जिसमें तत्त्वार्थ सूत्र जैसे पाठ शामिल हैं, जैन धर्म के नैतिक शिक्षाओं के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और बीकानेर में अत्यधिक सम्मानित है (जैनवर्ल्ड, बिना तारीख)। ये पाठ आध्यात्मिक मार्गदर्शन और नैतिक जीवन जीने के लिए व्यावहारिक सलाह प्रदान करते हैं। बीकानेर में जैन समुदाय शिक्षा को प्राथमिकता देता है, स्कूलों और पुस्तकालयों को सीखने के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं और युवाओं के बीच अहिंसा और सत्यता जैसे मूल्यों को बढ़ावा देते हैं (दर्शनशास्त्र संस्थान, 2023)। शिक्षा पर यह ध्यान क्षेत्र में जैन नैतिकता के संरक्षण में मदद करता है।

जैन साहित्य और शिक्षा :–

जैन साहित्य, जिसमें तत्त्वार्थ सूत्र जैसे पाठ शामिल हैं, जैन धर्म के नैतिक शिक्षाओं के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और बीकानेर में अत्यधिक सम्मानित है (जैनवर्ल्ड)। ये पाठ आध्यात्मिक मार्गदर्शन और नैतिक जीवन जीने के लिए व्यावहारिक सलाह प्रदान करते हैं।

बीकानेर में जैन समुदाय शिक्षा को प्राथमिकता देता है, स्कूलों और पुस्तकालयों को सीखने के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं और युवाओं के बीच अहिंसा और सत्यता जैसे मूल्यों को बढ़ावा देते हैं (दर्शनशास्त्र संस्थान, 2023)। शिक्षा पर यह ध्यान क्षेत्र में जैन नैतिकता के संरक्षण में मदद करता है।

चुनौतियाँ और आधुनिक प्रासंगिकता :–

जैन नैतिकता बीकानेर के समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है, लेकिन आधुनिक गतिशीलताएँ इन शिक्षाओं के लिए चुनौतियाँ पेश करती हैं। अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सिद्धांत अक्सर समकालीन जीवनशैली, आर्थिक विकास और वैश्वीकरण के साथ टकराते हैं। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता–प्रेरित दुनिया में, न्यूनतमता को अपनाना कठिन हो सकता है, जिससे अपरिग्रह का भौतिक वस्तुओं से अलगाव का ध्यान आधुनिक समृद्धि की आकांक्षाओं के साथ विरोधाभास में प्रतीत होता है (मंडे इंडिया, 2024)।

अहिंसा विचारों और भाषणों तक भी फैली हुई है, जो सोशल मीडिया के युग में चुनौतियाँ प्रस्तुत करती है, जहाँ ऑनलाइन इंटरैक्शन में शत्रुता उत्पन्न हो सकती है। बीकानेर में जैन समुदाय इस पर काबू पाने के लिए नैतिक ऑनलाइन व्यवहार और सम्मानजनक संवाद को बढ़ावा देता है, पारंपरिक सिद्धांतों को आधुनिक संदर्भों में अनुकूलित करता है (फिलॉसफी इंस्टीट्यूट, 2023)।

इसके अलावा, अपरिग्रह की प्रतिज्ञा पर्यावरणीय स्थिरता का समर्थन करती है, जो एक महत्वपूर्ण समकालीन मुद्दा है। जैन नैतिकता अपशिष्ट में कमी और पारिस्थितिक रूप से अनुकूल उपभोग की वकालत करती है, जो वैश्विक स्थिरता लक्ष्यों के साथ मेल खाती है और इन शिक्षाओं की स्थायी प्रासंगिकता को दर्शाती है (करियर इंडिया, 2024)। बीकानेर में पहलों का उद्देश्य प्लास्टिक के उपयोग को कम करना और खाद्य उत्पादन के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए शाकाहार को बढ़ावा देना है।

सामाजिक नैतिकता में, जैन शिक्षाएँ करुणा और समानता पर जोर देती हैं, गरीबी और असमानता को

संबोधित करती हैं। दान का सिद्धांत इन प्रयासों में महत्वपूर्ण बना हुआ है। बीकानेर के जैन दानदाता शैक्षिक संस्थानों, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक उत्थान पहलों का समर्थन करते रहते हैं, पारंपरिक मूल्यों को ठोस सामाजिक लाभों में बदलते हैं (रिसर्चगेट, 2018)।

हालांकि, ब्रह्मचर्य और तपस्विता का पालन, विशेष रूप से साधुओं और साध्वियों के बीच, एक ऐसे समाज में चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं पर अधिक ध्यान केंद्रित कर रहा है। युवा पीढ़ी इन कठोर प्रथाओं को आत्म–अभिव्यक्ति के आधुनिक मूल्यों के साथ सामंजस्य करने में संघर्ष कर सकती है। इस अंतर को पाटने के लिए, बीकानेर के जैन नेता इन प्रथाओं को आत्म–अनुशासन और ध्यान के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे उन्हें समकालीन दर्शकों के लिए अधिक सुलभ बनाया जा सके (एन्सिएंट स्कॉलर, 2024)।

इन चुनौतियों के बावजूद, जैन नैतिकता आधुनिक सामाजिक मुद्दों के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। सत्यता का सिद्धांत पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देता है, जो नैतिक शासन और व्यापार के लिए आवश्यक है। बीकानेर में जैन व्यापारिक समुदाय इन सिद्धांतों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, ईमानदारी और निष्पक्ष व्यापार प्रथाओं के माध्यम से विश्वास और सम्मान अर्जित करते हैं (जैनिज्म की विश्वकोश, 2023)।

जैन नैतिकता की अनुकूलता इस बात में स्पष्ट है कि समुदाय पारंपरिक शिक्षाओं को आधुनिक नवाचारों के साथ कैसे एकीकृत करता है। बीकानेर में शैक्षिक कार्यक्रम अब नैतिक जीवन, पर्यावरणीय जिम्मेदारी और डिजिटल साक्षरता पर कार्यशालाएँ शामिल करते हैं, जो जैन मूल्यों पर आधारित हैं। यह दृष्टिकोण युवा पीढ़ी को उनकी विरासत से जोड़ने में मदद करता है जबकि वे आधुनिक दुनिया की जटिलताओं को नेविगेट करते हैं (नेक्स्ट आईएएस, 2024)।

निष्कर्ष में, जबकि जैन धर्म आधुनिक युग में चुनौतियों का सामना कर रहा है, इसके मूल सिद्धांत प्रासंगिक बने हुए हैं। बदलती परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित होकर और नवाचार को अपनाकर, बीकानेर का जैन समुदाय इन शाश्वत मूल्यों को बनाए रखता है, जो समकालीन सामाजिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने की उनकी क्षमता को प्रदर्शित करता है। जैन नैतिकता बीकानेर के समाज को प्रभावित करती रहती है, आधुनिक दबावों के बीच लचीलापन और अनुकूलन को प्रेरित करती है (मंडे इंडिया, 2024)। वे पर्यावरणीय गिरावट और सामाजिक असमानता जैसे वैश्विक मुद्दों के समाधान प्रदान करती हैं, जो आधुनिक सामाजिक जिम्मेदारी के सिद्धांतों के साथ मेल खाती हैं (करियर इंडिया, 2024)।

निष्कर्ष :–

जैन धर्म की नैतिक शिक्षाएँ बीकानेर की सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल चुकी हैं। जैन समुदाय की अहिंसा, सत्यता और निस्संलग्नता जैसे सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता नैतिक जीवन का एक उदाहरण प्रस्तुत करती है जो धार्मिक सीमाओं से परे है। इस स्थायी प्रभाव से जैन नैतिकता के महत्व को उजागर किया जाता है, जो आधुनिक चुनौतियों का सामना करने और सामंजस्यपूर्ण समाज को बढ़ावा देने में मदद करती है। इस प्रकार, जैन धर्म केवल एक धार्मिक परंपरा नहीं है, बल्कि यह एक जीवनशैली है जो अनुशासन, दया और समर्पण को आमंत्रित करती है। बीकानेर में जैन समुदाय ने अपने मूल्यों को सामाजिक कार्यों और परोपकारी गतिविधियों के माध्यम से व्यक्त किया है, जिससे स्थानीय समुदाय के विकास में योगदान मिला है।

जैनियों का 'सामुहिक जीवन' और 'पारस्परिक सहायता' का सिद्धांत, समाज में एकजुटता और सहयोग की भावना को प्रबल बनाता है। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्रों में कई पहल की हैं जो न केवल जैन धर्म के अनुयायियों, बल्कि समस्त समाज को लाभान्वित करती हैं।

इसके अतिरिक्त, जैन धर्म के व्यवहारिक दृष्टिकोण ने बीकानेर की सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूत किया है। उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ, जैसे त्योहार और मेलें, समाज में एकता और सहिष्णुता को बढ़ावा देती हैं। जैन समुदाय के अनुयायी सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेते हैं, जिससे स्थानीय कला, संगीत और नृत्य परंपराएँ जीवित रहती हैं।

अंततः, जैन धर्म की नैतिक शिक्षाएँ न केवल जैन समुदाय के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि यह समृद्ध और संतुलित समाज के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण है। इन मूल्यपूर्ण शिक्षाओं का अनुसरण करके, हम एक ऐसे समाज की स्थापना कर सकते हैं जिसमें सद्भाव, समानता और करुणा की भावना निहित हो। इस प्रकार, जैन धर्म का योगदान बीकानेर की सांस्कृतिक धारा में हमेशा गहराई से प्रतिध्वनित होता रहेगा।

References :

1. Philosophy Institute. (2023). Jaina Ethics: The Path of Non-Violence and Right Conduct. Retrieved from https://philosophy.institute
2. Gokulam Seek IAS Academy. (2024). Ethics in Jainism. Retrieved from https://gokulamseekias.com
3. Jainworld. (n.d.). Contributions of Jainism to Indian Culture. Retrieved from https://jainworld.com
4. Mishra, P. J. (2013). Role of Jainism in Evolving Ethico-Spiritual Paradigm of Social Development. Retrieved from https://www.academia.edu
5. Ancient Scholar. (2024). Jainism: Beliefs, Sects, Texts, Practices, and Cultural Impact. Retrieved from https://ancientscholar.org
6. ResearchGate. (2018). Jainism's Intersection with Contemporary Ethical Movements. Retrieved from https://www.researchgate.net
7. Encyclopedia of Jainism. (2023). Jains' Contribution to Indian Culture and Society. Retrieved from https://encyclopediaofjainism.com
8. Self Study for Anthropology. (2020). Impact of Jainism on
9. Indian Society. Retrieved from https://selfstudyanthro.com
10. Monday India. (2024). The Influence of Jainism on Rajasthan's History and Culture. Retrieved from https://mondayindia.com
11. Historact. (2024). The Ancient Religion of Jainism: Beliefs and Practices. Retrieved from https://historact.com
12. Career India. (2024). Understanding Jainism: Its Impact on Indian Culture and Philosophy. Retrieved from https://careerindia.com
13. Next IAS. (2024). Jainism: Doctrines, Sects, Contributions & More. Retrieved from https://nextias.com

Email : bdsuthar6193187@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 142-146

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जयनंदन की कहानियों में जनजातीय चेतना की अभिव्यक्ति

हरेन्द्र पंडित

शोधार्थी, मानविकी संकाय, हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड।

भूमिका :–

भारतीय साहित्य में आदिवासी समाज की समस्याओं, संघर्षों और उनके जीवन की सच्चाई को चित्रित करने वाले लेखकों में जयनंदन का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। उनकी कहानियाँ आदिवासी जीवन के हर पहलू को उजागर करती हैं, जिसमें उनकी पीड़ा, उनके अधिकारों के लिए संघर्ष, और उनकी सांस्कृतिक धरोहर की झलक मिलती है। जयनंदन ने अपनी रचनाओं में न केवल आदिवासी समाज की विषमताओं और शोषण को उजागर किया है, बल्कि उनकी चेतना, आत्मसम्मान और जिजीविषा को भी मुखर किया है। उनकी कहानियां इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जिसमें आदिवासी समाज के विकास के लिए शिक्षा, नेतृत्व और जागरूकता की आवश्यकता को बड़े ही संवेदनशील और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह कहानी केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक दस्तावेज है, जो आदिवासी जीवन की जटिलताओं और संभावनाओं को समझने का एक माध्यम प्रदान करती है।

इस आलेख में जयनंदन की जिन तीन कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है, वे न केवल पाठकों को आदिवासी समाज की वास्तविकताओं से अवगत कराती हैं, बल्कि उन्हें यह सोचने पर भी मजबूर करती हैं कि समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय को कैसे दूर किया जा सकता है। उनकी कहानियों में जनजातीय चेतना का जो स्वर मुखरित होता है, वह साहित्य और समाज दोनों के लिए समान रूप से प्रेरणादायक है।

1. कहानी 'गोड़ पोंछना' जयनंदन की कहानी 'गोड़ पोंछना' में जनजातीय चेतना की अभिव्यक्ति गहराई से उभरती है। यह कहानी आदिवासी समाज, विशेषकर श्रमिक वर्ग के माध्यम से हाशिये पर पड़े समुदायों की दुर्दशा, उनके आत्मसम्मान, और उनके संघर्ष को सामने लाती है। नीचे दिए गए बिंदुओं के आधार पर कहानी में जनजातीय चेतना की अभिव्यक्ति स्पष्ट की जा सकती है :–

(क) श्रमिक और आदिवासी समाज का प्रतिनिधित्व : कहानी के पात्र, जैसे दोहारी, रपचा, और माहो मुर्मू, उन समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें मुख्यधारा समाज में दलित माना गया है। आदिवासी समुदाय की नेता के रूप में, दोहारी न केवल श्रमिकों के समूह का नेतृत्व करती है, बल्कि अपने समुदाय के आत्मसम्मान

की रक्षा के लिए हर संघर्ष का सामना करती है। रपचा अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने वाला पात्र है, जो अपनी जान की कीमत पर भी अन्याय के सामने झुकता नहीं।

(ख) शोषण और सामाजिक असमानता का चित्रण : कहानी इस तथ्य को रेखांकित करती है कि दलित और आदिवासी समुदायों की मेहनत को समाज में उचित सम्मान नहीं मिलता। उनका श्रम समाज की बुनियादी संरचनाओं को खड़ा करता है, फिर भी वे सम्मान और सुरक्षा से वंचित रहते हैं। उदाहरण के लिए, माहो मुर्मू का संवाद कि उनका काम षगोड़ पोंछनेष जैसा समझा जाता है, श्रम के अवमूल्यन और सामाजिक उपेक्षा को दर्शाता है।

(ग) आत्मसम्मान और स्वाभिमान का प्रतीक : दलित चेतना का एक महत्वपूर्ण पहलू आत्मसम्मान की रक्षा है। आदिवासी विकास सभा के नेताओं के दबाव के बावजूद, दोहरी राजनीतिक फायदे के लिए अपने समुदाय को इस्तेमाल करने से मना कर देती है। यह उसके आत्मसम्मान और नैतिकता की शक्ति को दर्शाता है।

(घ) संघर्ष और साहस की प्रतीकात्मकता : कहानी में दलित चेतना का मुख्य आधार यह है कि दलित और आदिवासी समुदाय शोषण का सामना करते हुए भी अपने अधिकारों और अस्तित्व की लड़ाई जारी रखते हैं। रपचा की मृत्यु न केवल व्यवस्था की क्रूरता को उजागर करती है, बल्कि यह संघर्षशीलता का प्रतीक भी बनती है।

(ङ) श्रमिक वर्ग की सामूहिकता : दलित चेतना की अभिव्यक्ति केवल व्यक्तिगत संघर्ष में नहीं, बल्कि सामूहिकता में भी है। दोहारी अपने श्रमिक समुदाय को एकजुट और संगठित रखती है, जो उनकी सामूहिक शक्ति को दर्शाता है।

(च) सत्ता और भ्रष्टाचार के खिलाफ सवाल : कहानी यह सवाल उठाती है कि सत्ता और पूंजीवाद का तंत्र श्रमिक और दलित समाज के साथ अन्याय क्यों करता है। रतनलाल और तिवारी जैसे पात्र, जो श्रमिकों का शोषण कर अपने फायदे के लिए उनका उपयोग करते हैं।

(छ) न्याय की मांग और सामाजिक बदलाव का संदेश : कहानी के माध्यम से जयनंदन दलित चेतना को सामाजिक और राजनीतिक बदलाव की ओर प्रेरित करते हैं। रपचा का न्याय के लिए मुख्यमंत्री से अपील करना और व्यवस्था की विफलता यह दिखाता है कि वंचित समुदायों को कैसे उनकी आवाज दबा दी जाती है।

कहानी 'गोड़ पोंछना' केवल एक साहित्यिक रचना नहीं है, यह सामाजिक असमानता और शोषण के खिलाफ एक प्रखर आवाज है। जयनंदन ने इसमें दलित चेतना को आदिवासी समाज के संघर्ष, उनके आत्मसम्मान, और उनके अधिकारों की लड़ाई के माध्यम से जीवंत कर दिया है। यह कहानी हाशिये पर पड़े समुदायों के लिए आत्मचिंतन और सशक्तिकरण का आह्वान करती है।

2. कहानी 'सेराज बैंड बाजा' – 'सेराज बैंड बाजा' जयनंदन की एक सशक्त कहानी है, जो आदिवासी समाज के संघर्ष, उनकी चेतना, और सामाजिक विसंगतियों को गहराई से उजागर करती है। यह कहानी माघी नामक पात्र के माध्यम से न केवल आदिवासी समुदाय की दुर्दशा और उनकी सामाजिक स्थिति को दर्शाती है, बल्कि उनकी चेतना, आत्मनिर्भरता और अधिकारों की ओर बढ़ते कदमों का भी चित्रण करती है।

(क) शोषण और संघर्ष का यथार्थ चित्रण : कहानी में माघी का जीवन आदिवासी समाज की कठोर वास्तविकता को सामने लाता है। परिवार की हत्या के बाद माघी का जीवन पूरी तरह से बिखर जाता है। यह

घटनाक्रम आदिवासी समाज पर लगातार होने वाले बाहरी शोषण और उनके हाशिये पर धकेले जाने का प्रतीक है। माघी का संघर्ष एक आदिवासी महिला के रूप में उस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो आर्थिक और सामाजिक असमानता से जूझता है।

(ख) आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का प्रतीक : माघी का बैंड पार्टी चलाने का सपना और उसका आत्मनिर्भर बनना आदिवासी चेतना की एक प्रमुख अभिव्यक्ति है। यह केवल आर्थिक आजादी का संकेत नहीं है, बल्कि अपने समुदाय के लिए सम्मान और स्वाभिमान की लड़ाई है। सिलाई और क्लार्नेट बजाने जैसी कलाओं में माहिर होकर माघी अपने आप को परिभाषित करती है। वह भ्रष्ट नेता के जश्न में शामिल न होने का साहसिक निर्णय लेती है, जो जनजातीय चेतना और नैतिकता के प्रति उसके समर्पण को दर्शाता है।

(ग) सामाजिक असमानता और विसंगतियों का विरोध : कहानी में माघी का संघर्ष आदिवासी समाज की सामाजिक असमानता के खिलाफ एक मजबूत आवाज बनकर उभरता है। समाज में बैंड पार्टी जैसे व्यवसाय को नीच दृष्टि से देखा जाता है, जो माघी और उसके जैसे अन्य व्यक्तियों के लिए चुनौतियाँ खड़ी करता है। यह पारंपरिक सोच के खिलाफ एक संघर्ष का प्रतीक है, जहाँ आदिवासी समाज को निचले पायदान पर रखा जाता है।

(घ) महिलाओं की स्थिति और उनकी सशक्तता : माघी न केवल एक आदिवासी है, बल्कि एक महिला भी है, जो अपने आत्म सम्मान और अस्तित्व के लिए लड़ती है। नरसा मुर्मू जैसे भ्रष्ट और कायर पात्रों के दबाव और शोषण के खिलाफ खड़े होकर माघी अपने समुदाय के भीतर महिलाओं की शक्ति और सशक्तिकरण का प्रतीक बनती है। यह कहानी आदिवासी महिलाओं के भीतर पनप रही चेतना और बदलाव की इच्छा को दिखाती है।

(ङ) सामूहिक चेतना का उदय : कहानी में केवल व्यक्तिगत संघर्ष की बात नहीं की गई है, बल्कि आदिवासी समाज की सामूहिक चेतना का भी संकेत मिलता है। माघी का बैंड पार्टी चलाने का प्रयास एक आदिवासी समुदाय को एकजुट करने और उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने का प्रयास है। यह समाज के भीतर व्याप्त पारंपरिक सोच और असमानता के खिलाफ एक सामूहिक कदम है।

(च) पर्यावरण और समाज का संबंध : आदिवासी समाज की चेतना केवल आर्थिक या सामाजिक मुद्दों तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके पर्यावरण से भी गहराई से जुड़ी हुई है। माघी और उसके परिवार के जीवन में जंगल और प्राकृतिक संसाधनों का महत्व दिखाई देता है, जो आदिवासी जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। रोगला का जंगल की ओर लौटना यह दर्शाता है कि आदिवासी समाज अपनी जड़ों से कितना जुड़ा हुआ है, भले ही वे समाज के दबावों का सामना करें।

(छ) भ्रष्टाचार और अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध : माघी का चरित्र आदिवासी चेतना में निहित उस प्रतिरोध का प्रतीक है, जो समाज में व्याप्त अन्याय और भ्रष्टाचार के खिलाफ खड़ा होता है। कहानी के माध्यम से यह दिखाया गया है कि आदिवासी समुदाय केवल शोषण का शिकार नहीं है, बल्कि उनके भीतर उस शोषण का विरोध करने और अपनी स्थिति सुधारने की चेतना भी पनप रही है।

जयनंदन की कहानी 'सेराज बैंड बाजा' आदिवासी चेतना का एक प्रबल उदाहरण है। माघी के संघर्ष और सफलता के माध्यम से यह कहानी आदिवासी समाज के भीतर आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान, और सामाजिक असमानताओं के खिलाफ उठ रही आवाज को दर्शाती है। यह कहानी केवल एक आदिवासी महिला के जीवन

की गाथा नहीं है, बल्कि समाज में मौजूद शोषण, असमानता, और विसंगतियों के खिलाफ जनजातीय चेतना का प्रतीक है। माघी का व्यक्तित्व और उसकी यात्रा आदिवासी समाज के भीतर हो रहे बदलाव और उनके सशक्तिकरण का प्रतीक बनकर उभरते हैं।

3. कहानी 'नेकी' :- जयनंदन की कहानियाँ आदिवासी समाज की पीड़ा, संघर्ष, और आत्मसम्मान की अनुगूंज हैं। उनकी रचनाओं में जनजातीय चेतना न केवल कथानक में, बल्कि पात्रों के संवाद और परिस्थितियों में भी गहराई से प्रतिबिंबित होती है। उनकी कहानी 'नेकी' इस दृष्टि से एक अद्वितीय उदाहरण है, जिसमें आदिवासी जीवन के संघर्षों, उनकी आकांक्षाओं और समाज में व्याप्त विसंगतियों को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया गया है।

(क) आदिवासी संघर्ष और चेतना : कहानी 'नेकी' के माध्यम से जयनंदन आदिवासी समुदाय की पीड़ा और शोषण की परतें खोलते हैं। कहानी का केंद्रीय पात्र, हितकर घरैया, न केवल सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने वाला एक प्रबुद्ध नेता है, बल्कि आदिवासियों के उत्थान के प्रति समर्पित भी है। वह आदिवासी बच्चों को शिक्षित करने और उनकी प्रतिभा को संवारने का प्रयास करता है। कहानी में सुलोना टुडू और लुपू एक्का जैसे पात्र यह दर्शाते हैं कि शिक्षा और जागरूकता आदिवासी समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

(ख) सामाजिक विसंगतियाँ और राजनैतिक अन्याय : 'नेकी' में जयनंदन ने आदिवासी समाज पर बाहरी ताकतों द्वारा किए जा रहे अन्याय को उजागर किया है। कहानी में आदिवासी क्षेत्र से संबंधित राजनीतिक संदर्भ, जैसे गनौरी बोदरा का चुनाव जीतना, यह दिखाता है कि लोकतंत्र कैसे जाति, धन, और सत्तालोलुपता के दलदल में फंसा हुआ है। यह राजनीतिक अन्याय आदिवासी समाज को और अधिक हाशिये पर धकेलता है, जो उनकी प्रगति में एक बड़ा अवरोध बनता है।

(ग) जनजातीय महिलाओं की स्थिति : जयनंदन की कहानियाँ आदिवासी महिलाओं के संघर्ष और उनके प्रति हो रहे शोषण को भी सामने लाती हैं। 'नेकी' में सुलोना टुडू और लुपू एक्का के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया है कि कैसे आदिवासी महिलाएँ शिक्षा के माध्यम से अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयास करती हैं, लेकिन समाज की विषमताएँ उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने में बाधा उत्पन्न करती हैं।

(घ) नायकत्व और जनजातीय नेतृत्व : हितकर घरैया जैसे पात्र जयनंदन की कहानियों के माध्यम से आदिवासी समाज में नेतृत्व और संघर्ष की भावना को उजागर करते हैं। हितकर का चरित्र आदिवासी समाज के आदर्श नेता के रूप में उभरता है, जो न केवल सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों को उठाता है, बल्कि व्यक्तिगत रूप से भी अपने समाज के लिए त्याग करता है। उनका यह त्याग और संघर्ष आदिवासी चेतना को जागृत करने और उसे समाज के अन्य वर्गों तक पहुँचाने का प्रयास है।

(ङ) शिक्षा और जागरूकता : जयनंदन की कहानियाँ शिक्षा के महत्व को बार–बार रेखांकित करती हैं। कहानी में दिखाया गया है कि कैसे हितकर घरैया आदिवासी बच्चों को शिक्षित करने के लिए व्यक्तिगत प्रयास करते हैं। उनकी इस सोच में यह विश्वास निहित है कि शिक्षा ही वह माध्यम है, जिससे आदिवासी समाज अपनी समस्याओं का समाधान कर सकता है।

(च) आदिवासी संस्कृति और परंपराएँ : जयनंदन की कहानियाँ आदिवासी संस्कृति और परंपराओं के प्रति

सम्मान प्रकट करती हैं। 'नेकी' में यह दिखाई देता है कि कैसे आदिवासी समाज अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है, भले ही बाहरी परिस्थितियाँ उनके अस्तित्व के लिए चुनौती बन जाएँ। उनके जीवन में परंपराओं और मूल्यों का गहरा स्थान है, जो उनकी सामाजिक संरचना और संघर्षशीलता को आकार देते हैं।

जयनंदन की कहानी 'नेकी' केवल एक कथा नहीं है, बल्कि यह आदिवासी समाज के संघर्षों, समस्याओं, और संभावनाओं का गहन दस्तावेज है। इस कहानी के माध्यम से जयनंदन ने आदिवासी चेतना को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। उनके पात्र समाज के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो शोषण और अन्याय के खिलाफ खड़े होते हैं और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं।

निष्कर्ष :-

जयनंदन की कहानियाँ आदिवासी समाज की वास्तविकता का सजीव चित्रण करती हैं और उनके संघर्षों, आकांक्षाओं, तथा सांस्कृतिक धरोहर को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानी 'नेकी' आदिवासी समाज के शोषण, असमानता और संघर्ष की गहराइयों को उजागर करती है, साथ ही शिक्षा, जागरूकता, और नेतृत्व के महत्व को रेखांकित करती है।

हितकर घरैया, देहारी, माघी जैसे पात्र न केवल आदिवासी समाज की पीड़ा और समस्याओं को उजागर करते हैं, बल्कि उनके भीतर निहित सामर्थ्य और बदलाव की संभावनाओं को भी प्रदर्शित करते हैं। जयनंदन की कहानियों में सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियों की आलोचना के साथ–साथ आदिवासी समाज के विकास का मार्गदर्शन भी मिलता है।

इन कहानियों का प्रभाव केवल साहित्यिक स्तर तक सीमित नहीं है। यह समाज को अपनी जिम्मेदारियों का आभास कराने और शोषित समुदायों के अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करने का आह्वान करती हैं। जयनंदन का साहित्य हमें न केवल आदिवासी समाज की समस्याओं को समझने में मदद करता है, बल्कि उनके समाधान की दिशा में ठोस कदम उठाने के लिए प्रेरित भी करता है। उनकी रचनाएँ साहित्य और समाज के बीच सेतु बनकर हमारे भीतर संवेदनशीलता और चेतना का संचार करती हैं। जयनंदन की कहानियाँ हमें यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि आदिवासी समाज के विकास और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए हमें क्या कदम उठाने चाहिए। उनकी कहानियों में जनजातीय चेतना की गूंज न केवल साहित्यिक स्तर पर प्रभावी है, बल्कि यह समाज को एक नई दिशा देने का आह्वान भी करती है।

संदर्भ :-

1. 'गोड़ पोंछना', जयनंदन, अमन प्रकाशन, कानपुर (2018), पृष्ठ संख्या–9
2. 'मंत्री क्या बने लाट हो गये', जयनंदन, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली (2021), पृष्ठ संख्या –21
3. 'सेराजबैंड बाजा', जयनंदन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली (2013), पृष्ठ संख्या–7

संपर्क : 9470557544

Email: harendrrapandit@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 147-154

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Green Entrepreneurship : Fostering Sustainability in Business

Dr. Anita

Associate Professor in Commerce, Maharaja Agrasen Mahavidayala, Jagadhri.

Abstract :

India has taken giant strides in 2023 for a greener future and sustainable development as the country eyes a Net zero status by 2070.The Union Budget 2023-24 laid a blueprint for greener growth while identifying sustainable development as one of the four opportunities for achieving the vision of India@100 under AmritKaal.In recent years, there has been a growing recognition of the urgent need for businesses to adopt sustainable practices in order to address pressing environmental challenges such as climate change, pollution, and resource depletion. Green entrepreneurship has emerged as a promising approach to fostering sustainability in business, by promoting the development of environmentally-friendly products and services, reducing waste and pollution, and operating in a socially responsible manner.

Green entrepreneurship is characterized by a commitment to balancing profit-making with environmental and social benefits. It involves innovative thinking, creativity, and a willingness to challenge traditional business practices in order to create a positive impact on the planet and society. Green entrepreneurs are leading the way in developing sustainable solutions to pressing environmental issues, and are driving a shift towards a more environmentally-conscious economy.

This paper will explore the concept of green entrepreneurship and its importance in fostering sustainability in business. It will also highlight the key principles of green entrepreneurship, the benefits it can bring to businesses and society, and the role that green entrepreneurs play in driving positive change. Green entrepreneurship has the potential to not only create a more sustainable future for businesses, but also to contribute to a more environmentally-friendly and socially-just society as a whole.

Key words : Green entrepreneurship,sustainability, Social Responsibility, eco-friendly, renewable energy.

Objectives of Study :

1. To examine the concept of green entrepreneurship and its significance in fostering sustainability in business.
2. To explore the key principles and practices of green entrepreneurship and how they differ from traditional business models.
3. To analyse the benefits of green entrepreneurship for businesses, society, and the environment.
4. To investigate the role that green entrepreneurs play in driving positive change towards a more sustainable economy.
5. To identify the challenges and barriers faced by green entrepreneurs in implementing sustainable practices in their businesses.
6. To provide recommendations for businesses and policymakers on how to support and promote green entrepreneurship for a more sustainable future.

Introduction :

Green entrepreneurship refers to the practice of starting and operating businesses that prioritize environmental sustainability and social responsibility. In recent years, there has been a growing global movement towards sustainability, with entrepreneurs playing a key role in driving innovation and creating positive environmental impact. This article explores the concept of green entrepreneurship, its importance, challenges, and the opportunities it presents for a sustainable future.

Meaning of Green Entrepreneurship :

Green entrepreneurship refers to the practice of starting and operating businesses that prioritize environmental sustainability, social responsibility, and ethical practices. Green entrepreneurs focus on developing innovative solutions that address environmental challenges, reduce carbon footprint, conserve natural resources, and promote a greener and healthier planet.

Characteristics of Green Entrepreneurship :

1. **Environmental Sustainability :** Green entrepreneurs are committed to minimizing environmental impact through sustainable business practices, energy-efficient technologies, and eco-friendly products and services.
2. **Social Responsibility :** Green entrepreneurs prioritize social equity, community engagement, and ethical sourcing practices to ensure that their businesses have a positive impact on society.
3. **Innovation :** Green entrepreneurship is driven by innovation and creativity, with entrepreneurs constantly seeking new ways to address environmental challenges and create sustainable solutions.
4. **Collaboration :** Green entrepreneurs often collaborate with government agencies, non-profit

organizations, and other stakeholders to create a network of support, resources, and expertise for their green ventures.

5. **Circular Economy :** Green entrepreneurs embrace the principles of a circular economy, focusing on waste reduction, recycling, and resource efficiency to create a closed-loop system that minimizes environmental impact.
6. **Ethical Leadership :** Green entrepreneurs in India demonstrate ethical leadership by upholding values of transparency, accountability, and integrity in their business operations.

Need for Green Entrepreneurship in India :

India is facing significant environmental challenges, including air and water pollution, deforestation, waste management issues, and climate change. Green entrepreneurship is crucial in addressing these challenges and promoting sustainable development in the country. The need for green entrepreneurship in India can be attributed to the following factors:

1. **Environmental Degradation :** India is one of the world's most significant contributors to air pollution and greenhouse gas emissions. Green entrepreneurship can play a crucial role in reducing pollution, conserving natural resources, and mitigating the impact of climate change.
2. **Sustainable Development :** Green entrepreneurship aligns with India's goal of achieving sustainable development by balancing economic growth with environmental conservation and social welfare.
3. **Resource Conservation :** India faces challenges related to water scarcity, deforestation, and waste management. Green entrepreneurship can promote resource conservation through innovative technologies and practices.
4. **Job Creation :** Green entrepreneurship has the potential to create new employment opportunities, especially in sectors such as renewable energy, sustainable agriculture, and environmentally-friendly products and services.
5. **International Commitments :** India has made commitments to reduce carbon emissions, increase renewable energy usage, and achieve other sustainability goals. Green entrepreneurship can help the country meet these targets and fulfill its international obligations.

Importance of Green Entrepreneurship :

Green entrepreneurship is essential for addressing pressing environmental challenges such as climate change, pollution, and resource depletion. By developing and implementing sustainable business models, green entrepreneurs can reduce carbon emissions, conserve natural resources, and promote social equity. Moreover, green businesses have the potential to attract environmentally-conscious consumers, investors, and stakeholders, leading to long-term financial success and positive

social impact.

Green Entrepreneurship Differences from Traditional Entrepreneurship :

Green entrepreneurs differ from traditional entrepreneurs in several important aspects.

- First, green entrepreneurs aim to integrate environmental and social issues into their business modelswhile traditional business models do not give weightage to these.
- Traditional business models in India prioritize profit maximization over environmental and social considerations, while green entrepreneurship integrates sustainability as a core business objective.
- Green entrepreneurship focuses on creating shared value for all stakeholders, including the environment, society, and the economy, whereas traditional businesses may overlook these broader impacts.
- Green entrepreneurs in India often face challenges such as higher initial investment costs for sustainable practices, regulatory barriers, and market acceptance of eco-friendly products, which may not be as prevalent in traditional business models.

Examples of Indian Companies Using Green Entrepreneurship :

1. Tata Power Solar Systems Ltd : Tata Power Solar is a leading solar energy company in India that specializes in the development, manufacturing, and installation of solar power systems. The company has a strong commitment to sustainability and has implemented innovative green practices in its operations, including the use of renewable energy sources and energy-efficient technologies.

2. Godrej Industries Ltd : Godrej Industries is a diversified conglomerate in India that has integrated sustainability into its business practices. The company focuses on green innovation and sustainable manufacturing processes to reduce its environmental impact. Godrej Industries has also launched several green initiatives, such as waste management programs and water conservation projects.

3. SELCO India : SELCO India is a social enterprise that works to provide sustainable energy solutions to underserved communities in India. The company specializes in the distribution of solar products and has helped thousands of households and businesses gain access to clean and affordable energy. SELCO India's business model is built on green entrepreneurship principles, focusing on social impact and environmental sustainability.

4. Ecolibrium Energy : Ecolibrium Energy is a technology company in India that offers energy management solutions to optimize energy usage and reduce carbon emissions. The company's innovative approach to energy efficiency has helped businesses and industries improve their environmental performance while lowering energy costs. Ecolibrium Energy exemplifies green entrepreneurship by promoting sustainability through technological innovation.

Challenges of Green Entrepreneurship in India :

Despite the benefits of green entrepreneurship, there are several challenges that aspiring green entrepreneurs may face.

1. **High Initial Investment Costs :** Green entrepreneurship in India often requires significant upfront investment in sustainable technologies, renewable energy systems, and eco-friendly manufacturing processes. The initial capital outlay can be a barrier for many entrepreneurs, particularly those operating in resource-constrained environments.

2. **Lack of Access to Finance :** Access to finance remains a key challenge for green entrepreneurs in India, as traditional lenders may be hesitant to fund innovative and sustainable business models. Limited availability of green financing options and high interest rates can hinder the growth and scalability of green startups.

3. **Regulatory Barriers :** Green entrepreneurs in India face regulatory challenges related to obtaining permits, complying with environmental regulations, and navigating complex approval processes for sustainable projects. Inconsistent policies and unclear guidelines can create uncertainty and impede the adoption of green practices.

4. **Market Acceptance :** The market acceptance of eco-friendly products and services can be a challenge for green entrepreneurs in India, as consumer awareness and demand for sustainable solutions may still be low. Educating consumers about the benefits of green products and overcoming perceptions of higher costs can be a significant hurdle for green startups.

5. **Limited Infrastructure and Technology Support :** Green entrepreneurs in India may struggle to access appropriate infrastructure and technology support to implement sustainable practices effectively. Inadequate resources, lack of skilled workforce, and limited availability of green technologies can hinder the growth and competitiveness of green ventures.

Overcoming these challenges requires strategic planning, collaboration with stakeholders, and innovative solutions that prioritize sustainability.

Opportunities in Green Entrepreneurship :

Green entrepreneurship offers a wide range of opportunities for businesses to thrive in a rapidly changing global economy. From renewable energy and sustainable agriculture to eco-friendly products and services, there is a growing demand for environmentally-friendly solutions. Green entrepreneurs can leverage emerging technologies such as artificial intelligence, block chain, and Internet of Things (IoT) to create innovative solutions that address environmental challenges and create social impact. Furthermore, partnerships with government agencies, non-profit organizations, and academic institutions can provide green entrepreneurs with the support and resources needed to

scale their businesses and make a meaningful difference in the world.

Recommendations for Businesses and Policymakers to Support and Promote Green Entrepreneurship for a More Sustainable Future in India :

For Businesses :

1. **Invest in Research and Development :** Businesses should prioritize research and development efforts to innovate sustainable products, technologies, and business models that reduce environmental impact and promote sustainability.
2. **Collaborate with Green Entrepreneurs :** Establish partnerships with green entrepreneurs to leverage their expertise and innovative solutions for sustainability challenges, fostering a culture of collaboration and knowledge sharing.
3. **Adopt Green Procurement Practices :** Businesses can support green entrepreneurship by sourcing eco-friendly materials, products, and services from sustainable suppliers, promoting the growth of green enterprises in the supply chain.
4. **Implement Sustainable Practices :** Businesses should integrate sustainable practices such as energy efficiency, waste reduction, and resource conservation into their operations to demonstrate commitment to environmental responsibility.
5. **Participate in Industry Networks and Initiatives :** Engage with industry associations, sustainability forums, and green business networks to exchange best practices, stay informed about emerging trends, and advocate for policy support for green entrepreneurship.

For Policymakers :

1. **Create Enabling Policy Environment :** Policymakers should develop supportive policy frameworks, incentives, and regulations that encourage the growth of green entrepreneurship, providing financial and regulatory support to green startups and businesses.
2. **Foster Ecosystem for Green Innovation :** Invest in research and development infrastructure, incubators, and accelerators focused on green technologies and sustainability innovations to nurture a conducive ecosystem for green entrepreneurship.
3. **Provide Access to Finance :** Establish dedicated funding mechanisms, green financing schemes, and venture capital support for green entrepreneurs to address the funding gap and enable investment in sustainable businesses.
4. **Promote Capacity Building and Training :** Offer training programs, skill development initiatives, and capacity-building workshops for green entrepreneurs to enhance their technical and business competencies in the sustainability space.
5. **Raise Awareness and Advocacy :** Educate stakeholders, raise public awareness, and advocate

for the importance of green entrepreneurship in achieving environmental goals, driving sustainable development, and creating a greener economy in India.

Conclusion :

Green entrepreneurship is a dynamic and impactful way to drive sustainability, innovation, and social change in the business world. By embracing green practices and values, entrepreneurs can create businesses that not only generate profit but also contribute to a more sustainable and equitable future for all. As the world grapples with environmental crises, green entrepreneurship offers a pathway towards a more resilient, inclusive, and environmentally-conscious economy.

References :

1. Javeline, D., Zhang, H., &Edakina, A. (2019). Green Entrepreneurship and Sustainable Development. Springer.
2. World Economic Forum. (2021). Green Entrepreneurship: A Pathway to a Sustainable Future. Retrieved from https://www.weforum.org/agenda/2021/06/green-entrepreneurship-sustainable-future/
3. United Nations Environment Programme. (2021). Entrepreneurship and the Green Economy in India. Retrieved from https://wedocs.unep.org/bitstream/handle/20.500.11822/36372/Entrepreneurship_and_Green_economy_in_India-2020.pdf?sequence=1&isAllowed=y
4. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India. (2021). National Clean Air Programme. Retrieved from http://environmentclearance.nic.in/country%3DIndia ; search %3D %3 D %20National%20Clean%20Air%20Programme%20(NCAP)
5. Schaper, M. (2016). Making Ecopreneurs: Developing Sustainable Entrepreneurship. Routledge.
6. Bansal, P., & Hoffman, A. J. (2012). The Oxford Handbook of Business and the Natural Environment. Oxford University Press.
7. United Nations Environment Programme. (2021). Entrepreneurship and Green Economy. Retrieved from https://www.unep.org/resources/entrepreneurship-and-green-economy
8. Perner, J., & Lee, M. (2020). Green Entrepreneurship: A Sustainable Development Perspective. Springer.
9. Prasad, A., &Srikanth, D. (2018). Green entrepreneurship: A key to sustainable economic growth. Entrepreneurship Research Journal, 8(3), 1-12.
10. Rathore, A., & Singh, S. (2020). Green entrepreneurship in India: Opportunities and challenges. International Journal of Entrepreneurial Development, Innovation and Sustainability, 6(3), 268-283.

11. Pandey, R., & Kapoor, R. (2019). Sustainable business practices in India: A study of green entrepreneurship. Journal of Sustainability Management, 4(2), 45-58.
12. Khan, F., & Pathak, P. (2019). Challenges faced by green entrepreneurs in India. International Journal of Research in Engineering and Technology, 8(5), 1-6.
13. Singh, A., &Goel, A. (2020). Green entrepreneurship in India : A study on challenges and opportunities. Journal of Entrepreneurship and Innovation in Emerging Economies, 6(2), 189-202.
14. Economic Times. (2021). Green entrepreneurs in India face funding, regulatory challenges: Report. Retrieved from https://economictimes.indiatimes.com/small-biz/sme-sector/green-entrepreneurs-in-india-face-funding-regulatory-challenges-report/articleshow/84895326.cms
15. World Bank. (2018). India: Green Entrepreneurship Development. Retrieved from https://www.worldbank.org/en/results/2018/10/22/India-Green-Entrepreneurship-Development-Project.
16. NITI Aayog. (2019). India's National Action Plan on Sustainable Consumption and Production. Retrieved from https://niti.gov.in/national-sustainable-development-framework/indias-national-action-plan-sustainable-consumption-and.
17. Confederation of Indian Industry. (2021). Policy Recommendations for Promoting Green Entrepreneurship in India. Retrieved from https://www.cii.in/MediaDetails.aspx?enc=3hjTy1jBrDgjlZ1qjOMx3CBIwXADLQskiQJCoWhZhi2voY8wpVYP5vFPzAHkmV7Xgg1R9g5Zb5A1Q1RQtOEwb3jHiI/1M0MDX88tqo3eNQTaafpnbQeFbfDafxUU/vLn7jueppnviv6BOddZbKd3g==.
18 Tata Power Solar Systems Ltd. (n.d.). About Us. Retrieved from https://www.tatapowersolar.com/about-us/
19. Godrej Industries Ltd. (n.d.). Sustainable Business. Retrieved from https://www.godrejindustries.com/business/sustainable-business
20. SELCO India. (n.d.). Our Story. Retrieved from https://www.selco-india.com/our-story/
21. Ecolibrium Energy. (n.d.). About Us. Retrieved from https://ecolibriumenergy.com/about-us/

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 155-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरियाणावी लोक साहित्यकार लहणा सिंह अत्री के साहित्य में राजनीतिक बोध : एक अनुशीलन

बबली मोरवाल, शोधार्थी,
डॉ. पूरन चंद टंडन, शोध निर्देशक,
हिन्दी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

सारांश :–

लहणा सिंह अत्री हरियाणवी लोक साहित्य के एक अप्रतिम प्रतिभा के सम्पन्न साहित्यकार है। लहणा सिंह अत्री ने राजनीतिक क्षेत्र की विडम्बनाओं तथा आर्थिक विघटन को चित्रांकित करते हुए, राजनीतिक व्यवहार, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक अधिकारों तथा चुनावी राजनीतिक नीतियों को उद्घाटित किया है। लहणा सिंह अत्री ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनीतिक क्षेत्र में फैली भ्रष्टाचारी व्यवस्था और आर्थिक विघटन को चित्रित किया है। लहणा सिंह व्यगात्मक भाषा का प्रयोग करके भ्रष्ट नेताओं तथा अधिकारियों की पोल खोलते नजर आते है। अपनी रागनियों के माध्यम से अत्री जी ने राजनीति के चेहरे पर उभरे भ्रष्टाचार के दांगो को मुखरित करने का प्रयास किया है। भ्रष्ट नेता सत्ता प्राप्ति के लिए किसी भी हद तक जा सकते है। सत्ता प्राप्त करने का मोह तथा पद लोलुपता ने देश मे राजनीतिक वातावरण को इतना दुषित कर दिया है कि नेताओं की दृष्टि से आदर्श सिद्धांत नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। नेताओं में अवसरवादिता की भावना अधिक हो गई है। दलगत राजनीति भारतीय शासन व्यवस्था के लिए नासूर के समान बनती जा रही है, जो भारतीय राजनीति को अन्दर से खोखला करती जा रही है। अत्री जी कहते है कि इसका स्थाई समाधान आवश्यक है।

प्रस्तावना :

भ्रष्ट राजनीति तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार समाज को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार औपचारिक प्रक्रियाओं की अनदेखी करके लोकतंत्र को कमजोर करने का प्रयास करता है। भ्रष्टाचार के कारण राजनीतिक व्यवस्था दूषित होती जा रही है। इसके कारण समाज में अराजकता फैलने का खतरा बना रहता है। राष्ट्र की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। लहणा सिंह अत्री राजनीतिक व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार को देखकर आहित हो उठते है तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनीतिक क्षेत्र की भ्रष्टाचारी व्यवस्था के विघटन को उद्घाटित करते हैं। अपनी रागनियों के माध्यम से अत्री जी राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए लिखते है कि :–

''इतना बढिया राज काज ना सुरग तै घाट दिखाई दे।
रिश्वत खोरी, सीना जोरी होरये ठाठ दिखाई दे।
भय–भूख की मौज आडै चाहे छिक्कम–छिक्का कितनी ले,
लूट पाट और राहजनी भाई तेरी मरजी जितनी ले,
भ्रष्टाचार का कित भूक्खा तूँ एक क्वैंटल इतनी ले,
बेट्टी–बेट्टयाँ की लाश भतेरी सुध्यां पति सुध्यां पत्नी ले,
थोक के म्हँ डाक्के पड़ते उठ्या घरराटा दिखाई दे।
रिश्वत खोरी, सिन्ना जोरी होर्ये ठाठ दिखाई दे।'' [1]

देश में भ्रष्टाचारी, सीना जोरी तथा रिश्वत खोरी इतनी बढ़ गई है कि इससे देश तथा समाज का नुकसान ही हो रहा है। यहाँ पर लहणा सिंह अत्री भ्रष्टाचारियों की निंदा करते दिखाई देते है। राजनीतिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार इतना फैल गया है कि चारों और हत्या तथा लूट–पाट का माहौल बना हुआ है। यहाँ इनके द्वारा अपनी व्यंगात्मक भाषा द्वारा करारा प्रहार करने का प्रयास किया गया है। .

लहणा सिंह लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को बनाने, सरकार के गठन तथा संचालन व चुनावीं राजनीति में राजनीतिक दल की अहम भूमिका मानते है। राजनीति वह तंत्र है जिसके द्वारा समाज में शान्ति, सुरक्षा तथा सुधार किए जाते है और न्याय तथा रोजगार की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। नीति विहीन राजनीतिक स्वरूप को देखे तो सामाजिक व्यवस्था की देखरेख करने वाली सत्ता दूषित हो जाती है तथा उसकी कार्यप्रणाली तथा व्यवहार में मानवीय मूल्यों का विघटन हो जाता है। नीतिविहीन दल गत राजनीति के अनर्थकारी परिणाम सामने आते है। अत्री जी के अनुसार नीति विहिन दलगत राजनीति में नेताओ की गलत नीतियों के कारण जनता को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में नेता सिर्फ अपना उल्लू सिधा करते है तथा अपने स्वार्थपूर्ति के बारे में ही सोचते है। ऐसे राजनेताओं को जनता के दुखों, परेशानियों तथा दुविधाओं से कोई मतलब नहीं होता। प्रशासन और प्रजा के बीच पिता–पुत्र का संबंध होना चाहिए परन्तु ऐसा है नहीं। नेता की प्रवृति ऐसी है, उनको जहाँ अपना फायदा दिखता वहीं के हो जाते है उनको जनता के हितों की कोई चिन्ता नहीं होती। कुर्सी मिलने के बाद राजा बन जाते है और इस प्रकार के गलत कार्य करते है कि जेल में सड़ते नजर आते है। इस प्रकार के नेता पाँच साल में सिर्फ एक बार ही दिखाई देते है। सत्ता मिलने के पश्चात् वो दुबार जनता को दिखाई ही नही देते। सत्ता प्राप्त करने के लिए ऐसा राजनेता जनता से झूठे वायदे करते है और सत्ता प्राप्ति के बाद जनता के हितों को नजरअंदाज कर देते है। अत्री जी कहते है :–

''राजा–प्रजा, पिता–पुत्र ज्यूँ आज बतादयों प्रीत कड़ै सै,
जनता का दुख जाणन खात्यर आज गश्त की रीत कड़ै सै,
गैरा के दुख दूर करणिया बीर बिक्रमाजीत कड़ै सै,
तवा परांत जड़ै सी दीक्खै, ऐसे पत्ते चाट हाँडै,
वोट लिए और कुर्सी थ्याग्यी बणकै मुल्की लॉट हाडैं,

सड़ै जेल म्हँ रिश्वत ले, कर इज्जत बाराबांट हांडैं,
पाँच साल म्हँ एक बार, फेर दे सैं चोर दिखाई।
या चाल बख्त की, नही समझ म्हँ आई।[2]

हर कोई कुर्सी के लिए मरता फिरता है। इसके चलते परिवार की जमा पुँजी को दाव पर लगा देते है। लोगों को अनैतिक ढंग से शराब तथा अन्य चीजें उपलब्ध कराने में सारा पैसा गवा देते है। चुनावों में नतीजा वही 'ढाक के तीन पात' नजर आता है। चुनावों का मुख्य उद्देश्य निष्पक्ष तरीके से जनता द्वारा अपने प्रतिनिधि को चुना जाना चाहिए, परन्तु इस प्रकार के अनैतिक कार्य से लोगों को लालच देकर अपने पक्ष में वोट डलवाए जाते है। इससे कौन से राजनेता अच्छे है या कौन सी सरकार अच्छी है इसका पता लगाए बिना ही जनता वोट दे डालती है, और फिर बाद में पाँच साल पछताना पड़ता है इसलिए जनता को सोच समझकर वोट देना चाहिए।

राजनीतिक क्रिया कलाप देश–विदेश, राष्ट्र, राज्य, शहर, गांव आदि सभी को प्रभावित करते है। राजनीति कहीं ना कहीं सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था को भी प्रभावित करती है। लहणा सिंह अत्री बेरोज़गारी, भुखमरी, गरीबी, न्याय तथा क्रान्ति आदि मसलों को उजागर कर युवा वर्ग व समाज को नवीन मार्ग से अवगत कराने का काम ही नही करते अपितु, शोषण, अधिकार तथा कर्तव्य आदि के प्रति सजग भी बनाते है।

''डाकू, चोर, लुटेरे, मालिक क्यूँकर भला देश का हो,
वोट दिए, लिए हाथ कटा ईब पीट–पीट कै माथा रो,
तेरी झुग्गी पै इनकी कोठी फुटपाथां पै जा कै सो,
भीख मांग, कटवा कै परची, रैन बसेरा जाकै टोह,
ना तेरी मरज का मिलै गारडू सर्प धवेरे होग्ये,
केसर की क्यारी भारत अडै खड़े पटेरे होग्ये।''[3]

लहणा सिंह अत्री कहते है कि यदि राजनेता अपनी बात पर खरे उतरे तो हमारा देश दिन–रात तरक्की करेगा। यदि जो वो वादे करते है, उन्हे पुरा करने का कार्य करे तो देश उन्नति की और अग्रसर होगा। समाज की भलाई इसी में है कि नेता अपने कार्य को निष्ठा के साथ करें। यदि नेताओं की कथनी और करनी समान हो जाए तो देश के सभी संकट तथा समस्याएं अपने आप समाप्त हो जाएंगे। इन नेताओं को अपनी नियत को स्वच्छ–साफ रखते हुए देश की समृद्धि की तरफ ध्यान देना चाहिए। समाज में जातिगत भेदभाव, भ्रष्टाचार आदि से निपटने के लिए राजनीतिक व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता है। समाज में समानता और न्याय का माहोल बनाने के लिए राजनीति में बदलाव जरूरी हैं। समाज में ऐसे बहुत से विषय है जिनमें राजनीतिक व्यवस्था का हस्तक्षेप बहुत जरूरी है। जैसे–भ्रष्टाचार, मारपीट, चोरी, गरीबी, शिक्षा तथा महिलाओं के अधिकार। लहणा सिंह जी ने अपनी रागनियों में इन मुद्दों को उठाया है।

पं0 लहणा सिंह अत्री देश को उन्नति के पथ पर देखना चाहते है, उनका कहना है कि यदि सरकार सही नीतियां लागू करे तो देश अवश्य तरक्की करेगा। यदि सही नीतियां लागू नही की जाए तो भ्रष्टाचार देश

की अर्थव्यवस्था को अन्दर से खोखला कर देता है। लहणा सिंह अत्री जी अपनी रागनियों में भ्रष्टाचार के प्रति रोष प्रकट करते है, तथा उसका खुलकर विरोध भी करते है। भ्रष्टाचार के कारण भी उचित व्यक्ति को उचित कार्य नहीं मिल पाता और उसके स्थान पर अयोग्य व्यक्ति स्थान पा जाता है। भ्रष्टाचार देश को पतन की ओर ले जाता है। भ्रष्टाचार के प्रति रोष व्यक्त करते हुए अत्री जी व्यगांत्मक शैली में लिखते है कि :–

''रक्षक तै भक्षक होगे के कसर रही ईब चाले म्हँ।
प्रतिभूति और चीनी, कदे हर्षद फसें घोटाले म्हँ।
कहीं जपा कहीं सपा दल तीन सौ साठ खड़े होगे,
गांधी और पटेल कहां ये पासंग मान धड़े होंगे,
एक दमडी की कीमत ना ये अपणे आप बडे होगे,
सिहांसन की ठ्योड़ बना दयूं पापी रूप थड़े होगे,
नाम लेण नै कोय बच्चा ना फंसग्या मुल्क हवालें म्हँ।''[4]

अत्री जी कहते है कि जब देश के रक्षक ही भक्षक बन खाते है तो उस देश का सुरक्षित बच पाना कठिन हो जाता है। उनका मानना है कि देश में बहुत से नेता है परन्तु गांधी और पटेल जैसे नेताओं की देश को जरूरत है। देश में बहुत से राजनीतिक दल बन चुके है परन्तु हर कोई कुर्सी के पीछे भागता हुआ नजर आता है।

लहणा सिंह अत्री प्रजातंत्र के हिमायती है। प्रजातंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है, जिसमें जनता अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिनिधि चुन सकती है। प्रजातंत्र शासन का एक ऐसा रूप है जिसमें शासकों का चयन प्रजा द्वारा किया जाता है। प्रजातंत्र में सभी लोगो को समान अधिकार प्राप्त होते है। एक उत्तम कोटी का प्रजातंत्र वह होता है जिसमें नागरिकों को राजनीतिक के साथ–साथ सामाजिक तथा आर्थिक न्याय भी प्राप्त हो। इस प्रकार की प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली लोगों को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान करती है। अत्री जी इसी प्रकार के प्रजातंत्र के हिमायती है। उनके अनुसार देश में ऐसा प्रजातंत्र कहीं दिखाई नही देता है। प्रजातंत्र समाप्त ही हो गया है और देश में भ्रष्टाचार फैल गया है। लोकतंत्र ढूडने से भी नहीं मिलता क्योंकि भ्रष्टाचार की जड़े बहुत गहरे तक फैल चुकी है। प्रजातंत्र के बारे में लहणा सिंह अत्री लिखते है :–

''प्रजातंत्र नै कित टोहऊ, ना टोहे तै पाया हमने।
वोट दिए अर शोषित बणग्ये, ना भेद समझ आया हमनै।[5]

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लहणा सिंह अत्री का राजनीतिक बोध उत्कृष्ट कोटी है। लहणा सिंह अत्री ने बड़ी सुक्षमता के साथ स्थानीय आम बोलचाल की भाषा में नेताओं के अवसरवादी और स्वार्थसिद्धि पूर्ण चरित्र को उजागर किया है। लहणा सिंह अत्री ने राजनीतिक कुटिलताओं को निशाना बनाते हुए निरीह जनता की विविशता और ज्वलंत परिवेश से जन्मी कुंठा, आक्रोश, टीस, पीड़ा, अन्तर्द्वन्द्व तथा सामान्य जन की घूटन–टूटन का मार्मिक चित्रण किया है। सियासी राजनीतिक चालों पर करारा व्यंग इनकी रागनियों में निहित

व्यंजकता का तो प्रमाण है ही साथ ही कवि की विलक्षण व्यंगात्मक शक्ति का परिचायक भी है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. लहणा सिंह अत्री, क्याँ का करै गुमान बावले, टैगारे प्रकाशन नारनौद (हिसार) प्रथम संस्करण, प्रकाशन वर्ष–2019, 48
2. वही, पृ0 34
3. वही पु0 120
4. संपादक डॉ0 बाबूराम, एकलव्य स्वरूप पं० लहणा सिंह अत्री, लक्ष्मण साहित्य प्रकाशन, रोहतक प्रकाशन वर्ष 2005 पृ0 172, 173
5. लहणा सिंह अत्री चाल दिखाद्यूँ अजब नजारा, आचार्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष 2015, पृ0 84

Mob : 8813914768

Email : babei Morwal 1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 160-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सरोज दहिया के साहित्य की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

अनीता, शोधकर्ता,
डॉ. आशा सहारण, शोध निर्देशिका
हिन्दी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय (रोहतक)

सारांश :-

प्रासंगिकता से अभिप्राय है– जरूरत संबध, हालत आवश्यकता अतः वे समस्याएं, मामले, सूचनाएँ विषय जो समाज के विभिन क्षेत्रों मे विचारणीय है। उन मुद्दों पर चर्चाएं विचार करना ही प्रासंगिकता है। प्रासंगिकता उन तथ्यों पर विचार करती है जो तार्किक रूप से प्रमाणित होते है। समाज में फैली वे विकराल समस्याएं जो वर्षो से विचाराधीन है उनको प्रकाश में लाना उन पर विचार करना ही प्रासंगिकता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्र चाहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक या फिर सांस्कृतिक आदि हो।

प्रस्तावना :-

वर्तमान समय में समाज में अनेक समस्याएं फैल रही है। जिन पर विचार करना आवश्यक है। सरोज दहिया जी के सम्पूर्ण साहित्य में समाज में फैली न केवल विभिन्न समस्याएं का चित्रण है अपितु उन समस्याओं का समाधान भी दिखाई पड़ता है। आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रो चाहे समाज, राजनीतिक, धार्मिक, सास्कृतिक आर्थिक आदि में विभिन्न समस्याएं तेजी से फैल रही है। कवयित्री सरोज दहिया जी की सामाजिक स्तर पर प्रासंगिकता आज समाज में संयुक्त परिवार नहीं रहे। शायद ही कोई एकाधा ही यदि ढुंढने से मिल भी जाऐ तो उनमें वो प्यार–प्रेम वाली बात नहीं जो एक संयुक्त परिवार में होनी चाहिए या तो व दबाव में या स्वार्थ के कारण ही संयुक्त है। अतः कवयित्री सरोज दहिया जी ने 'कूपकानन' प्रबंध काव्य में एक आदर्श परिवार का वर्णन किया है कि परिवार ऐसा हो जहाँ सभी एक साथ बैठकर भोजन कर सके घर–परिवार के लेन–देन, सुख–दुख, लाभ–हानि के विषय में बात कर सके। आदर्श परिवार वही होगा जहाँ स्वार्थ का कोई स्थान न हो। यदि परिवार का कोई सदस्य पीड़ा में दुःख में मुसीबत में हो तो दूसरा सदस्य बिना कुछ बताएँ ही उसकी भावनाओं को समझ जाऐ राजा यमन्ति जब देववाणी से विवाह करके लाता है तो राजा यमन्ति परेशान या उसकी परेशानी को उसकी माँ ताड़ जाती है।

निम्न उदाहरण देखिए :-

''रानी माँ घिर कर बैठी थी, सबको भोजन दे बैठी थी, सबने ही छक–छक कर खाया, राजा जी को

तनिक न भाया माँ ने सब कुछ जान लिया था विचलन को पहचान लिया था राजा जी को चिंता भारी सब सह जाने की लाचारी।''

आज परिवार मे वृद्वों का सम्मान, कम होता जा रहा है। प्राचीन समय मे घर का ही वृद्व नहीं अपितु आस–पड़ोस का भी कोई बात कह देते थे तो उनको सम्मान दिया जाता था। उनकी बात को अनदेखा व अनसुना नहीं किया जाता था। परंतु आज वृद्वों की बात सुनना तो दूर उनकी बातों पर ध्यान भी नहीं दिया जा रहा जो कि चिंता की बात है। इससे सिद्व होता है कि आज संस्कार कम होते जा रहे है। आज जरूरत है अपनी संतान को अच्छे संस्कार देने की। कवयित्री सरोज दहिया जी ने समाज में वृद्वों की स्थिति के विषय में लिखा है कि वृद्धों का सम्मान होना चाहिए यही हमारी परम्परा व संस्कार है। जिसे मनुष्य को नहीं भूलना चाहिए। वृद्धों को जीवन का अनुभव संतान से ज्यादा होता है। उन्होने जीवन के थपेड़ो को सहन किया होता है। इसलिए उन्हे मुसीबतों का आभास पहले ही हो जाता है।

''रानी माँ कुछ सोच रही थी, न रानी की बात जची थी मन को मन में दखकर बोली बालपन से रही सहेली आजीवन का संग साथ है। दोनों का ही एक नाथ है, तीनों आप सदाचारी है न कोई भी लाचारी है। संकट सारे टले हुये है, फूल पके फल मधुर बने है।''

''टोक दिया तै के हुआ, देख लिया था दोसः
बड्डा माणस मै कदें, मत नया करिये रोस।।''

युवा पीढ़ी न केवल अपने मार्ग से भटक रहे है। अपितु अपने संस्कारों को भी भूल रहे है। कवयित्री सरोज दहिया जी ने युवा का सही मार्ग का अनुशरण करने का संदेश दिया है। जो न केवल परिवार के लिए अपितु राष्ट्र के लिए भी हितकारी है। व लिखती है :–

''ढलता सूरज ढल गया, चाहे दूर सवेरा है,
लेकिन क्या सूरज से पहले काम ने कोई तेरा है।
नये सवरे का आनद भी, तब ही लेने पायेगा,
तन–मन से जब चेतन होगा, तब कुछ करने पायेगा।

जब समाज का युवा जागृत होगा तभी तो राष्ट्र उन्नत बनेगा और तभी न केवल परिवार से अपितु समाज व राष्ट्र से भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, मंहगाई जैसी का ईलाज बिमारियों से छुटकारा मिल पायेगा। कवयित्री सरोज दहिया जी ने अपने साहित्य में युवाओं को अपने वोट का उचित उपयोग करने की सलाह दी है जो कि आज आवश्यकता है– जब हमारी लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली ठीक होगी तो हमारा समाज व राष्ट्र भी ठीक होगा व युवाओ को समझाते हुए लिखती है।

''यथा बनी जनता, यहाँ तथा बनेगा राज।
लोकतंत्र उल्टा हुआ, उलट पुलट सब काज।।''

युवाओं में राष्ट्र प्रेम के संस्कार बचपन से ही डालने शुरू करने होगे व नेताओं को भी समझाती है कि सर्वश्रेष्ठ नेता वही है जो प्रजा के हित के विषय में सोचे। वे श्रीरामकथा मे राम व भरत के माध्यम से समझाती है कि आज जरूरत है राम जैसे राजा की जो जनता के हित को सर्वप्रिय रखते थे।

''राजा बठाकैं सेवा कर लें, इसते बड़ा मार्ग कोन्या,

प्रजा न परिवार समझ ले, इसतै बड़ा धर्म कोन्या,
प्रजा त सुख देणा चाहिये, अपणे सुख नै छोड़ दिये
प्रजा व परिवार समझ वु, सच्चा नाता जोड़ लिये।।''

आज समाज में विभिन्न समस्याएं जैसे दहेजप्रथा, नारी हिंसा, बालविवाह, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, महंगाई बलात्कार, अपहरण, बाल मजदूरी न जाने अनेक समस्याएं है जो दिन–प्रतिदिन दानव रूपधारण कर रही है। आज आवश्यकता है कि इन समस्याओं पर लगाम लगाने की समाज में जब हम रिश्वत जैसा कलंक समाप्त हो जाऐगा तो इसके साथ अनेक समस्याएं जैसे महंगाई, दहेज जैसी समस्याएं कम हो जाऐगी। आज प्रासंगिकता है रिश्वत के प्रति सचेत जागरूक होने की रिश्वत खोरो से कवयित्री प्रश्न करते हुए नजर आती है :–

''कैसा तेरा पेट है, जहाँ अनोखी भूख।
पेट कभी भरता नही, ओर ओर की चीख।।''

वे रिश्वतखोरों को समझाते हुए लिखती है :–

''लिप्सा धन की रूप की यही पतन का मूल।
लिप्सा जहाँ हावी हुई, नीति जाता भूल।।''

दिन–प्रतिदिन महंगाई बढ़ती जा रही है। जिसमें एक गरीब सामान्य परिवार पिसता जा रहा है। वो अपना व अपने परिवार का पेट पालने मे असमर्थ है। अब परिवार का भरण–पोषण करना उसका दायित्व है तो उसे कैसे भी करके अपने दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है और इस कार्य की पूर्ति के लिए उसे अनैतिकता के मार्ग पर चलना पड़ता है। अतः कवयित्री सरोज दहिया जी कहती है कि आज समाज में महंगाई को कम करने के लिए जरूरी है। उचित योजनाओं को लागू करने की जिन वस्तुओं से स्वास्थ पर विपरीत प्रभाव पड़ते है उनकी उच्च दामों पर बिक्री होनी चाहिए और जो दैनिक जीवन की वस्तुएं है जैसे रोटी, कपड़ा व अन्य वस्तुएं वे सभी के लिए कम दामों मे सुलभ होनी चाहिए :–

''टैक्सा तै जनता दुखी, पिसगे बिचले लोग।
हीणे सरकारी बणे, ठाहडे भोगै भोग।।''

वर्तमान राजीतिक व्यवस्था जो दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। आज जरूरत है उन मुद्दों की सुलझाने की जो प्राचीन समय से उलझे हुए है। आज आवश्यकता है युवाओं को अवसर देने की। आज भी राज सत्ता कुछ ही व्यक्तियों के हाथों मे सिमट कर रह गई है और जनता बेबस लाचार बनी हुई है।

जब चुनाव नजदीक आते है तो जनता को अनेक बार वायदें किए जाते है। जब सरकार बन जाती है। तो नेता जनता को भूल जाते है। कवयित्री सरोज दहिया जी कहती है कि आज प्रासंगिता निर्णय लेने की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के विशय मे लिपटी है।

''लोकतन्त्र शासन है यहाँ पर राजतन्त्र की तर्ज बनी,
सिमटी सता कुछ हाथों में जनता है लाचार बनी।
चले चुनावी दौर देश में जनता का भला करे,
बन जाये सरकार किसी की क्यो जनता को याद करे।।''

आज आवश्यकता है ऐसे राज नेताओं की जो अपनी जनता का ध्यान रखे। 'कूप–कानन' प्रश्न काव्य

में राजा यमन्ति अपनी प्रजा का सभी तरह से ध्यान रखता है। उदाहरण देखिए :–

''खोज खबर प्रजा की लेते जहाँ जरूरत सब कुछ देते,
नहीं राज में कमी कही थी सारी प्रजा सुखी घनी थी।
सब पे निधिया बरस रही थी कृषि भूमि सरस रही थी,
चोर–जार डरकर रहते थे, दोष जान दण्डित करते थे।।''

अतः उपर्युक्त विवेचना के आलोक में निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में अनेक ऐसे मुद्दे है। जिन पर विचार विमर्श करना आवश्यक है। यदि इन समसओं पर विचार नहीं किया गया तो न केवल समाज व अपितु राष्ट्र विकास पर भी इन समस्याओं का प्रभाव पड़ेगा। इसलिए तो कहा गया है :–

''कायम नैतिकता जहाँ, होता सुख का राज।
जैसा राजा हो जहाँ, वैसा वहाँ समाज।।''

संदर्भ ग्रंथ :–

1. सरोज दहिया, कूप–कानन, प्रकाशन वर्ण (2021), पृ0 स0 141
2. सरोज दहिया, कूप–कानन, प्रकाशन वर्ण (2021), पृ0 स0 184
3. सरोज दहिया, दहिया के दोहे, प्रकाशन वर्ण (2023), दोहा न0 895
4. सरोज दहिया, सरोज रात दल, प्रकाशन वर्ण (2010), पृ0 स0 41
5. सरोज दहिया, वर्ण वेणी, प्रकाशन वर्ण (2022), पृ0 279
6. सरोज दहिया, हरियाणवी श्री राम कथा, प्रकाशन (2011), पृ0 113
7. सरोज दहिया, वर्ण वेणी, प्रकाशन वर्ण (2022), पृ0 44
8. सरोज दहिया, कूप–कानन, प्रकाशन वर्ण (2022), पृ0 303
9. सरोज दहिया, दहिया के दोहे, प्रकाशन वर्ण (2023), दोहे 890
10. सरोज दहिया, सरोज रात दल, प्रकाशन वर्ण (2010), पृ0 51
11. सरोज दहिया, कूप–कानन, प्रकाशन वर्ण (2021), पृ0 36
12. सरोज दहिया, कूप–कानन, प्रकाशन वर्ण (2021), पृ0 स0 38

गाँव–थाना खुर्द, तहसील–खरखौदा
पोस्ट आफिस–थाना कला, जिला– सोनीपत (हरियाणा)
मो0 न0–8307030572
पिन कोड–131402

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 164-169

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. नरेश सिहाग की 'बोध कथाएँ' और कर्म

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

सार :–

भारतीय साहित्य के अध्ययन के पश्चात यह कहना उचित है कि भारत की ज्ञान परंपरा कर्मों को ही प्राथमिकता देती है। साहित्य, समाज और कर्म का अटूट संबंध रहा है। वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान साहित्य तक कर में शील बनने की प्रेरणा प्रदान की गई है। चींटी से हाथी तक संपूर्ण जीव कर्म के कारण ही जीवित और विकसित हो रहे हैं।

डॉ. नरेश सिहाग के संकलित ग्रंथ 'बोध कथाएँ' के अंतर्गत छोटी किन्तु महत्वपूर्ण कथाओं के द्वारा संपूर्ण मानव जाति को कर्म करने की अद्भुत सीख प्रदान की गई है। इस संकलन की कथाओं को तीन वर्ग में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के अंतर्गत संत और महात्माओं के चरित के माध्यम से कर्म करने की प्रेरणा प्रदान की गई है। द्वितीय वर्ग में पशु–पक्षियों के विभिन्न दृष्टांतों के माध्यम से कर्म की प्रधानता को वर्णित किया गया है। तृतीय वर्ग की कथाओं में जन सामान्य की प्रेरणादायी कथाएं समाहित हैं, जिनमें कर्म की ही प्रधानता है।

बीज शब्द :– वेद, श्रीमद्भागवत गीता, बोध कथाएँ, कर्म, आत्मनिर्भरता, सत्कर्म, ज्ञान, ईमानदारी।

प्रस्तावना :–

संसार का प्रत्येक प्राणी कर्म करने के कारण ही जीवित है क्योंकि यह कर्मलोक है। यहाँ कोई भी एक पल बिना कर्म के नहीं रह सकता। कर्मशील ही जीवित रहते हैं और एक नई मिसाल कायम दुनिया से विदा होते हैं। कर्मवीर अमर हो जाते हैं तथा अकर्मण्य गुमनामी के तिमिर में खो जाते हैं। ब्रह्म ने भी समय–समय पर अवतार लेकर कर्मरत रहने का मार्ग प्रशस्त किया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की शिराओं में कर्मवादी रक्त प्रवाहित हो रहा है। वैदिक वाङ्मय से लोक साहित्य पर्यंत कर्म की मनोहारी छटा है। लोक साहित्य में कथाओं का विशेष महत्व रहा है। माँ की गोदी से लेकर वैश्विक धरातल पर पसरी इन कथाओं के मध्य ही मानव जीवन बिताता है और अपनी अच्छी अथवा खराब कथा छोड़कर जीवन यात्रा पूरी करता है।

लोक जीवन में बोध कथाओं की अपनी अलग ही पहचान है। जब कोई व्यक्ति मार्ग च्युत हो जाता है अथवा हताश एवं निराश हो जाता है तो बोध कथाएँ ही उसमें आशा का संचार कर नवीन दिशा में एवं नव दृष्टि से कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं।

इस शोध पत्र में डॉ. नरेश सिहाग द्वारा संकलित 'बोध कथाएँ' नामक ग्रंथ में कर्म करने की प्रेरणा और विविध आयामों की विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

कर्म का मर्म :–

व्याकरणिक दृष्टि से 'कर्म' शब्द नपुंसक लिंग है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कर्म शब्द 'कृ' और 'मनिन्' के योग से व्युत्पन्न हुआ है। 'कृ' धातु करने हेतु प्रयुक्त होती है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर कर्म शब्द कई संदर्भों में प्रयुक्त किया जाता है, जिसके कारण इसके कई अर्थ होते हैं– "1. कृत्य, कार्य, 2. कार्या न्वयन, सम्पादन, 3. व्यवसाय, पद, कर्तव्य, 4. धार्मिक कृत्य (यह चाहे, नित्य हो, नैमित्तिक हो या काम्य हो), 5. विशिष्ट कृत्य, नैतिक कर्तव्य, 6. धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान (कर्मकाण्ड) जो ब्रह्मज्ञान या कल्पना प्रवण धर्म का विरोधी है, 7. फल, परिणाम, 8. नैसर्गिक या सक्रिय सम्पत्ति (धरती के आश्रय के रूप में) 9. भाग्य, पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का फल, 10. कर्म का उद्देश्य।'[1]

कर्म प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की क्रियाओं को अपने में समाहित किए हुए है। यह इहलौकिक और पारलौकिक परिणामों का द्योतक है। विद्वानों एवं शास्त्रों द्वारा कर्म की अनेक श्रेणियाँ निर्धारित की गई हैं, जिनके भिन्न–भिन्न आधार भी हैं। परिणाम की कामना के आधार पर दो प्रकार के कर्म हैं– सकाम और निष्काम। जब किसी भी क्रिया को करते हुए उसके परिणाम पर ध्यान केंद्रित रहता है तो ऐसे कर्म 'सकाम' है। परंतु जब परिणाम की चिंता किए बगैर स्वतरू कार्य सम्पन्न किया जाता है तो वह बन्धन रहित कार्य 'निष्काम' कर्म है। द्वितीय श्रेणी में संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण नामक तीन प्रकार के कर्म हैं। पूर्व जन्म में सभी तरह के सम्पन्न किए गए कार्य 'संचित कर्म' कहलाते हैं। 'प्रारब्ध कर्म' पूर्व जन्म के कार्यों में से जिनका परिणाम इस जन्म में भोगना पड़ता है, वे सभी प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। इस जिंदगी में किये जा रहे कार्य 'क्रियामाण कर्म' कहलाते हैं।

तृतीय श्रेणी में आयु कर्म आते हैं। ये कर्म किसी भी प्राणी को जीवन की एक निश्चित मात्रा देते हैं। इसके अंतर्गत उम्र के हिसाब से कर्म शोभनीय या अशोभनीय हो जाते हैं। जैसे एक बालक का तुतलाना सबको भाता है परंतु जब वही बालक युवावस्था में भी तुतलाता है तो तुतलाहट को दोष के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके अंतर्गत उम्र के हिसाब से कर्म शोभनीय या अशोभनीय हो जाते हैं। जैसे एक बालक का तुतलाना सबको भाता है परंतु जब वही बालक युवावस्था में भी तुतलाता है तो तुतलाहट को दोष के रूप में स्वीकार किया जाता है। इन कर्मों को दो उप–श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है, पहले करणीय और दूसरे अकरणीय। जो समाज, राष्ट्र एवं विश्व के लिए कल्याण कारक कर्म हैं, वे सभी करणीय तथा जो अकल्याणकारी कर्म हैं वे सब अकरणीय हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में कर्म–मानव सभ्यता के विकास के मूल में कर्म ही है। जब कहते हैं कि आवश्यकता ही अविष्कार की जननी है तो इस वाक्य में कहीं न कहीं कर्म करने की अवधारणा ही छुपी हुई है। जब कोई कर्म करते हुए आगे बढ़ते हैं तभी आवश्यकता अनुभव होती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में वैदिक साहित्य में कर्म के बीज सन्निहित हैं। श्रीमद्भागवत गीता में भगवान् कर्म की परंपरा के आरंभ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :–

"कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।"[2]

अर्थात् कर्म को वेद से उत्पन्न जानो और वेद को अच्युत से उत्पन्न जानो। अतएव सर्वव्यापक ब्रह्म सर्वदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित हैं।

वेदों के पश्चात् उपनिषद और पुराणों में कर्म की प्रधानता ही वर्णित किया गया है। महाकाव्यों में भी कर्म की महत्ता का बखान किया गया है। महाभारतांश गीता का तृतीय अध्याय कर्मयोग पर आधारित है। जिसमें भगवान श्रीकृष्ण धनंजय को समझाते हुए कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति एक पल कर्म किए बिना नहीं रह सकता है। उनका कहना है :–

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।"[3]

कर्म की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए कहा गया कि सभी पुरुष स्वभाव से उत्पन्न राग–द्वेषादि गुणों के अधीन होकर कर्म में प्रवृत्त होते हैं। पार्थ से सारथी बने श्रीकृष्ण कहते हैं कि सभी जीव अन्नसे उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है। वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है। यदि इस क्रम विपरीत ढंग से पढ़ा जाए तो कर्म से यज्ञ, यज्ञ से वर्षा, वर्षा से अन्न और अन्न से जीव उत्पन्न होते हैं। अर्थात् जीवोत्पत्ति का मूल बिंदु कर्म ही है। श्लोक द्रष्टव्य है :–

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जपन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।"[4]

संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के वाङ्मय में भी कर्म की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। हिंदी साहित्य के स्वर्ण काल के अंतर्गत लोक नायकत्व से परिपूर्ण महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, यह संसार कर्म की प्रमुखता से युक्त है तथा जो जैसा कर्म करता है, उसको निश्चित ही वैसा परिणाम प्राप्त होकर ही रहता है। उन्होंने कहा है :–

"करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।"[5]

भगवान् पर अनन्य विश्वास रखने वाले गोस्वामी जी ने मनुष्यों को कर्म करते रहने की प्रेरणा दी है। उनका मानना है कि, अकर्मण्य मुसीबत के वक्त केवल देवताओं को पुकारते रहते हैं और यह एक कायरता का लक्षण भी है जबकि, कर्मठ आगे बढ़कर उसे दूर करने का प्रयास करते हैं। उन्होंने कहा है :–

"कादर मन कहुँ एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा।।"[6]

'करो या मरो' का नारा बुलंद करने वाले महात्मा गाँधी कर्म के संबंध में लिखते हैं– "मनुष्य और उसका काम ये दो भिन्न वस्तुएँ हैं। अच्छे काम के प्रति आदर और बुरे के प्रति तिरस्कार होना ही चाहिये। भले–बुरे काम करने वालों के प्रति सदा आदर अथवा दया रहनी चाहिये। यह चीज समझने में सरल है, पर इसके अनुसार आचरण कम–से–कम होता है। इसी कारण इस संसार में विष फैलता रहता है।"[7]

हिन्दी साहित्य के छायावादी महाकवि जयशंकर प्रसाद ने कर्म को जीवन को सुखमय बनाने के साधन के रूप में वर्णित करते हुए कहते हैं :–

"परंपरागत कर्मों की वे कितनी सुंदर लड़ियां,
जीवन-साधन की उलझी हैं जिसमें सुख की घड़ियां।
जिनमें हैं प्रेरणामयी-सी संचित कितनी कृतियां,
पुलकभरी सुख देने वाली बनकर मादक स्मृतियां।"[8]

जयशंकर प्रसाद अपने कामायनी महाकाव्य में जो कर्म की व्याख्या की है, उसके अंतर्गत कर्मफल को प्रधान माना गया है। संसार में जड़ हो या चेतन सभी को कर्म के अनुरूप परिणाम प्राप्त होता है तथा परिणाम के अनुरूप भावी कर्म निर्धारित होते हैं। जीवन चक्र, जल चक्र, भोजन चक्र और धर्म चक्र की भाँति कर्म चक्र भी होता है। प्रसाद जी कामायनी के श्रद्धा सर्ग में काम पुत्री श्रद्धा के मुख कहलवाते हैं :–

"एक तुम, यह विस्तृत भू खंड प्रकृति वैभव से भरा अमंद,
कर्म का भोग, भोग का कर्म, यही जड़ का चेतन-आनंद।"[9]

संपूर्ण भारतीय ज्ञान परंपरा कर्म की मजबूत रज्जु से बँधी हुई है। जिसके अंतर्गत कर्म को ही जीवन का सार बताया गया है और कर्म की विमुखता को मृत्यु के रूप में परिभाषित किया गया है।

बोध कथाएँ तथा कर्म :-

भारतीय जन जीवन में बोध कथाएँ कदम–कदम पर मिल जाते हैं। इन कथाओं के माध्यम से कर्म विमुख मनुष्यों को कर्तव्य बोध कराया जाता है। इसी कारण इन्हें बोध कथा कहा जाता है। यह कथाएं एक तरह की बूस्टर का काम करती हैं जो हताश, निराश एवं दिग्भ्रमित व्यक्तियों को नई दिशा तय करने में सहायक सिद्ध होती हैं। ये कथाएँ मुख्यतः श्रुति परंपरा पर आधारित हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी मंजिल तय कर रही हैं।

बोध कथाओं को श्रुति से लिखित परंपरा में लाने का सफल एवं महत्वपूर्ण कार्य वर्तमान में जाने–माने साहित्यकार, संपादक, शिक्षाविद्, कानूनवेत्ता एवं अनुसंधान कर्ता डॉ. नरेश सिहाग द्वारा किया गया है। उन्होंने अपने संकलन ग्रंथ 'बोध कथाएँ' में कुल 48 कथाएँ संकलित की हैं। जो मानव समाज को कर्तव्य परायण बनाने में सहायक हैं। इन कथाओं में मनुष्य को स्वप्निल सिंहासन से उतरकर वास्तविक धरातल पर चहलकदमी करने की प्रेरणा दी गई है।

मनुष्य को जो भी बिना मेहनत के मिल जाता है, वह उसका दुरुपयोग करने लगता है और उसके महत्व को नहीं समझ पाता है। जिसके कारण अकर्मण्य हो जाता है। इसी संदर्भ में एक कथा में वर्णित किया गया है–

"लक्ष्मी जी जहां भी गई, वरदान बांटती गई और इस तरह सभी लोगों को वरदान बांटने के बाद लोगों ने काम करना और मेहनत करना छोड़ दिया। बिना मेहनत किए वरदान मिलने से काम चल गया था, इसलिए अब आदमी को मेहनत और काम करने की जरूरत नहीं रह गई थी।"[10]

कर्म किए बिना उपयोग करना दुखदायी होता है। इसी कथा में उल्लेखित किया गया है कि पृथ्वी की बात ना मानने के कारण लक्ष्मी द्वारा वरदान प्राप्त होने पर भी मनुष्यों को दुःख होना पड़ा। दुःखी मनुष्यों को देखकर पृथ्वी ने द्रवित होकर पुनः कर्मशील और मेहनती बनने की प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा :–

"काम और मेहनत का अपना वरदान ऐसा है जिसकी ताकत कभी खत्म नहीं होती। आओ, जब भी दुःखी होने की जरूरत नहीं। सब मिलकर काम और मेहनत करो, फिर से सब कुछ ठीक और वैसा ही हो जायगा।"[11]

भारतीय संत समाज ने मात्र कर्म करने की शिक्षा ही नहीं प्रदान की बल्कि, स्वयं कार्य करके भी दिखाया

है। संकलन के अंतर्गत एक कथा में दक्षिण भारत के प्रसिद्ध संत का वर्णन इस प्रकार किया गया है– "दक्षिण भारत में एक बहुत जाने–माने संत हुए हैं–संत तिरुवल्लुवर। वे जात के जुलाहे थे और काम भी जुलाहे का करते थे। जिस प्रकार उत्तर भारत में सूरदास, तुलसीदास, और कबीरदास को लोग मानते हैं। ठीक उसी प्रकार दक्षिण भारत में भी संत तिरुवल्लुवर को माना जाता है।"[12] भारतीय संत परम्परा में जितने भी संत हैं सभी ने कर्म करके अपनी जीविकोपार्जन किया था। उन्होंने न तो भिक्षावृत्ति को अपनाया और न ही धन संग्रह की प्रवृत्ति को पनपने दिया।

किसी भी कार्य को करने के लिए मेहनत के साथ–साथ समझदारी और धैर्य की भी आवश्यकता होती है। इस बात को एक कथा में नर्तकी के मुखिया के मुख से इस प्रकार उच्चारित किया गया है :–

"बहुत गई थोड़ी रही, हवे थाके वणसे काम, एवं समजी सुन्दरि! सुधारी त्यो घरी हाम!"[13] अर्थात् बहुत वक्त बीत गुजर गया है। अब तो थोड़ा–सा ही वक्त शेष है। ऐसे अवसर पर आलस्य से कार्य बिगड़ जाएगा। अब क्या थकती हो । बिगड़ती बाजी भी सुधर सकती है, यदि तुम समझदारी से काम लो और धैर्य न छोड़ो। धैर्य बनाए रखने से कर्म का समुचित और सकारात्मक परिणाम प्राप्त होता है।

संकलन की एक कथा यह बताती है कि, चालाक लोग अपनी चालाकी से भोले–भाले मासूमों को ठगने का कर्म करते हैं, जिसके कारण मासूम कर्म तो करते हैं लेकिन उसका लाभ उन चालाकों को प्राप्त होता है। कथा इस प्रकार है :–

"एक बार एक शेर शिकार के लिए निकला तो उसने गधे को अपने साथ ले लिया और उससे बोला– गधे! तुम जंगल में जाकर पूरे जोर से रेंको। तुम्हारा गला काफी बड़ा है। तुम्हारे रेंकने से जो भी जानवर डरकर भागने लगेंगे, मैं उन्हें झपट लूँगा। गधे ने ऐसा ही किया। वह खूब जोर से रेंकने लगा और जानवर अपनी सुध–बुध भूलकर दौड़ने लगे। शेर उनका शिकार कर लेता था। शिकार खत्म होने पर शेर ने गधे से कहा–शाबाश, तुम खूब रेंकते रहे। तब से गधा इसी तरह रेंकता और यह इन्तजार करता रहता है कि कोई उसकी तारीफ करे।"[14]

अक्सर भाग्यवादी कर्म किए बिना बहुत कुछ प्राप्त करना चाहते हैं और नहीं मिलने पर भाग्य को दोषी ठहराते हैं। किंतु यह सत्य है कि बिना कर्म के भाग्य भी नहीं देता है। एक कथांश प्रस्तुत है जिसमें सोते हुए किसान किस्मत क्या कहती है, उसका कथन ध्यातव्य है– "यहाँ काम करने के बजाय सो रहा है, अच्छे मौसम के दौरान घास जमा नहीं कर पाएगा और बाद में मुझे दोष देगा। यह कहेगा– मेरी किस्मत अच्छी नहीं।"[15]

निष्कर्ष :–

इस प्रकार संपूर्ण शोध पत्र में बोध कथाओं के माध्यम से कर्म की प्रधानता को वर्णित किया गया। कर्म करने का आदिम स्त्रोत वैदिक साहित्य में निहित है। डॉक्टर नरेश सिहाग द्वारा संकलित सभी बोध कथाएँ मनुष्य को कर्मशील पबनने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। इसके अंतर्गत सिर्फ मानव ही नहीं मानवेत्तर प्राणी भी सार्थक और सकारात्मक कर्मों में प्रवृत्त होने की शिक्षा प्रदान करते हैं।

संदर्भ :–

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ.–253, प्रथम संस्करण सन्–1966, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।

2. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्रीमद्भागवत गीता, 3/15, पृ.–55, नब्बेवां संस्करण सन्–2020, गीता, प्रेस गोरखपुर।
3. वही, 3/05, पृ.–52
4. वही, 3/14, पृ.–55
5. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (टीकाकार), श्रीरामचरितमानस, 02/218/02, पृ.–525, 151वाँ संस्करण सन्–1999, गीताप्रेस, गोरखपुर।
6. वही, 05/50/02, पृ.–760
7. गाँधी, मोहनदास करमचंद (लेखक), त्रिवेदी, काशिनाथ (अनुवादक), सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ.–248, संस्करण सन्–2011, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
8. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, कर्म सर्ग, पृ.–62, नवीन संस्करण सन्–2012, राजा पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली ।
9. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ.–37
10. सिहाग, डॉ. नरेश (संकलन कर्ता), बोध कथाएँ, पृ.–11, प्रथम संस्करण सन्–2025, बी. बी. प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. वही, पृ.–12
12. वही, पृ.–19
13. वही, पृ.–47
14. वही, पृ.–80
15. वही, पृ.–82

संपर्क–8604112963,
ईमेल– putupiyush@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 170-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Historic Architecture of Jodhpur
जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापत्य कला

Bharat Bhoosan Chouhan
S/o KANARAM CHOUHAN, PIOT NO. AA6, MAHAVEER NAGAR, BARMER (RAJ.)

प्रस्तावना :-

जोधपुर, जिसे 'नीला शहर' के नाम से भी जाना जाता है, भारत के राजस्थान राज्य में स्थित है। यह शहर अपने समृद्ध ऐतिहासिक धरोहर, स्थापत्य कला, और सांस्कृतिक विविधता के लिए प्रसिद्ध है। जोधपुर का इतिहास बहुत ही प्राचीन है, जिसकी नींव 1459 में राठौड़ वंश के राव जोधा ने राखी थी। इस शहर की स्थापना के पीछे का मुख्य उद्देश्य व्यापार को बढ़ावा देना और अपने साम्राज्य की रक्षा करना था। जोधपुर के किले, महलों और मंदिरों ने इसे एक प्रमुख राजनीतिक और व्यावासिक केंद्र बनाया। यहाँ का मेहरानगढ़ किला, जो कि सती सती की चोटी पर स्थित है, एक अद्भुत स्थापत्य की बेजोड़ मिसाल है। यह किला अपने विशाल आकार और भव्यता के कारण हर साल हजारों पर्यटकों को आकर्षित करता है। जोधपुर के विकास ऐतिहासिक यात्रा बहुत लंबी और विभिन्न साम्राज्य और संस्कृतियों की बुनाई के रूप में अभी भी जारी है। प्रारंभ में यह मेवाड़ और गुजरात के साम्राज्यों के अंतर्गत आया। 15वीं सदी में राव जसवंत सिंह की पदवी के तहत जोधपुर स्वतंत्र हो गया। यह शहर धीरे–धीरे एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र बन गया, विशेषकर ऊनी कपड़ा, जितना की कला कार्य और कारीगरी के लिए प्रसिद्ध है। इसके बाद जोधपुर ने विभिन्न राजवंशों का राज देखा, जिसमें मेवाड़, मारवाड़ और अन्य शक्तिशाली राजपुरुष शामिल थे। 19वीं सदी तक जोधपुर ने एक सकारात्मक शहरी विकास का अनुभव किया। राजा गजसिंह ने शहर में कई सुधार किए, जिससे जोधपुर की संस्कृति और अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला। आज भी जोधपुर का महत्व राजस्थान के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिदृश्य में अद्वितीय है। जोधपुर की स्थापत्य कला न केवल इसकी भव्यता के लिए जानी जाती है, बल्कि इसके सांस्कृतिक प्रभाव के कारण भी महत्वपूर्ण है। जोधपुर के किलों और महलों की संरचना में राजस्थानी, मुगल और यहां तक कि कुछ यूरोपीय शैलियों का मिश्रण देखने को मिलता है। यह स्थापत्य कला भारतीय दिग्गजों की अद्वितीय रचनात्मकता को प्रदर्शित करती है। मेहरानगढ़ किला इस शहर की स्थापत्य कला का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। यह किला 68 मीटर ऊँची चोटी पर स्थित है और इसकी दीवारें 36 किलोमीटर तक फैली हुई हैं। किले में लकड़ी की सुंदर कारीगीरी से बने दरवाजों और खिड़कियों से भरपूर महल, गैलरी और संग्रहालय हैं। यहाँ की स्थापत्य कला में रंगीन कांच और चूने से बनी दीवारों के साथ अद्वितीय जालियों का उपयोग किया गया है जो खासकर रजवाड़ों के रहने के दौरान आम था। जोधपुर की स्थापत्य कला की एक और विशिष्टता यहाँ की पेंटिंग और चित्रकला

है। यह कला भारतीय संस्कृति की गहराई को दर्शाती है और जोधपुर के किलों और महलों में उनकी प्रस्तुति अद्भुत है। जोधपुर की इस स्थापत्य शैली ने न केवल स्थानीय लोगों पर, बल्कि समृद्ध भारतीय संस्कृति पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इन सभी विशेषताओं के साथ, जोधपुर का स्थापत्य कला भारतीय शिल्पकला और इतिहास का एक जीवंत उदाहरण है। यहाँ आए पर्यटक इस धरोहर को देखकर केवल संतुष्ट नहीं होते, बल्कि वे इसकी अद्भुत विशालता और जटिलता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इसलिए, जोधपुर का ऐतिहासिक और स्थापत्य दृष्टिकोण दोनों ही भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा हैं और इसे संरक्षित करने की आवश्यकता है।

1. जोधपुर का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

'नीली नगरी' के नाम की पहचान रखने वाला जोधपुर, राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में स्थित एक ऐतिहासिक शहर है। इसका पृष्ठभूमि और विकास न केवल उस स्थान के भूगोल से, बल्कि यहाँ के संसाधनों, राजनीतिक स्थिति और सांस्कृतिक प्रभावों से भी प्रभावित हुए हैं। जोधपुर का इतिहास काफी समृद्ध और विविधतापूर्ण है, जो इसे राजस्थान के अन्य शहरों से एक अलग स्थान प्रदान करता है।

मारवाड़ क्षेत्र का इतिहास :– मारवाड़ क्षेत्र, जो कि जोधपुर का एक हिस्सा है, ऐतिहासिक दृष्टि से वैभवशाली रहा है। पुरातात्त्विक अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ पर मानव सभ्यता का विकास प्राचीन काल में ही शुरू हो गया था। यह क्षेत्र विभिन्न राजवंशों का केंद्र रहा है, यहाँ के सैनिक, व्यापारी और कृषि संस्कृति ने इसे एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बना दिया। मारवाड़ का विस्तार इतिहास में विभिन्न साम्राज्यों, जैसे कि गुर्जर प्रमाणिकों एवं चौहान राजपूतों द्वारा किया गया था, जिन्होंने यहाँ पर अपनी–अपनी छाप छोड़ी। मारवाड़ में राजपूतों का शासन मुख्य रूप से 6वीं सदी से आरंभ हुआ, जब यहाँ के कुछ क्षेत्रों पर कर्नाटकों का प्राभुत्व था। इसके पश्चात, 12वीं सदी में, चौहान राजपूतों ने इस क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया, जिसके फलस्वरूप यह क्षेत्र आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का केंद्र बन गया (जैन, 2010)।

जोधपुर का स्थापना और विधेयक :– जोधपुर की स्थापना 1459 में राठौड़ वंश के महाराजा राव जोधा ने की थी, जिन्हें अपनी नेतृत्व क्षमता और सैन्य कौशल के लिए जाना जाता था। महाराजा राठोर ने जोधपुर को एक नई राजधानी के रूप में स्थापित किया, ताकि वह अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ा सकें। उस समय जोधपुर का नाम 'जोधपुरगढ़' रखा गया, जिसका अर्थ था 'जोहन (राठौड़ वंश का उपनाम) का किला'। इस किले का निर्माण करने के लिए उन्होंने आस–पास के दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों का चयन किया, जिससे किला दुर्गम और सुरक्षित बना रहे (सिंह, 2012)। जोधपुर का किला, जिसे मेहरानगढ़ के नाम से जाना जाता है, इस नगर का केंद्र माना जाता है। यह किला अद्वितीय वास्तुकला और विशालता के लिए प्रसिद्ध है और शहर का प्रमुख आकर्षण है। इसकी दीवारें और फाटकों में एक दिव्य सौंदर्य और कला का समावेश देखने को मिलता है। किले के भीतर राज महल, मंदिर एवं खंडहर फैले हुए हैं, जो इस क्षेत्र की ऐतिहासिक समृद्धि को दर्शाते हैं।

राठौड़ वंश की भूमिका :– राठौड़ वंश ने जोधपुर के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस वंश ने न केवल जोधपुर को स्थापित किया, बल्कि इसे सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से समृद्ध भी किया। राठौड़ रजवाड़े ने अपनी नीतियों, मोर्चों और विवाहों के माध्यम से विभिन्न अन्य राजपूतों और साम्राज्यों के साथ संबंध बनाए। इस वंश के राजा ने स्थानीय लोगों के कल्याण के लिए विभिन्न योजनाओं और कानूनों को लागू

किया, जिससे जनता में राठौड़ वंश के प्रति विश्वास और सम्मान बढ़ा। राठौड़ वंश के अधिकांश राजाओं ने अपनी कला और स्थापत्य में भी योगदान दिया। उन्होंने कई महत्वपूर्ण संरचनाएं और मंदिरों का निर्माण किया, जो आज भी राठौड़ वंश के वैभव और रचनात्मकता का प्रतीक हैं। विद्योत्सव, मेला और धार्मिक समारोहों के आयोजन से इस क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर को भी समृद्ध किया गया। इस प्रकार, जोधपुर का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि न केवल यहाँ के भूगोल, संसाधनों और संस्कृति पर आधारित है, बल्कि राठौड़ वंश एवं उनके साम्राज्य पर भी निर्भर करता है। जोधपुर ने समय के साथ अपना अद्वितीय स्वरूप विकसित किया है और आज भी यह भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र बना हुआ है। जोधपुर का ऐतिहासिक महत्व, यहाँ की स्थापत्य कला, संस्कृति और स्थानीय लोगों के जीवन में इसकी गहराई ने इस क्षेत्र को एक अद्वितीय पहचान प्रदान की है।

2. जोधपुर की प्रमुख स्थापत्य कला के उदाहरण : मेहरानगढ़ किला :–

मेहरानगढ़ किला 1459 में राव जोधा द्वारा स्थापित किया गया था, जो जोधपुर राज्य के संस्थापक थे। किले का निर्माण जूंफरी पर्वत के ऊपर किया गया, जिससे यह आसपास के क्षेत्र में सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया। किले का नाम 'मेहरान' का अर्थ है 'प्रेम' और इस किले का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्र की रक्षा करना था। जोधपुर अपनी विशेष स्थापत्य कला और ऐतिहासिक स्थलों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें सबसे प्रमुख उदाहरण मेहरानगढ़ किला है, जो न केवल जोधपुर का प्रतीक है बल्कि भारतीय किलों की वास्तुकला का भी अद्‌भुत उदाहरण है। किले का निर्माण राव जोधा द्वारा अपनी राजधानी को स्थानांतरित करने के दौरान शुरू हुआ। किले का निर्माण कार्य समय–समय पर विभिन्न शासकों द्वारा जारी रहा, जिसमें राव सूरज सिंह सहित कई अन्य महत्वपूर्ण शासक शामिल थे। इस किले ने न केवल युद्धों और आक्रमणों का सामना किया, बल्कि यह राजस्थानी संस्कृति और परंपरा का संरक्षण भी करता रहा। मेहरानगढ़ किले की वास्तुकला भारतीय किलों की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी निर्माण शैली में राजपूत और मुसलमान वास्तुकला का अनूठा संयोग देखने को मिलता है। इस किले की प्रमुख विशेषताए है,

– **दिवाले और गढ़ :** किले की दीवारे लगभग 36 मीटर ऊंची हैं और इसे लोहे के मजबूत किलों से सुरक्षित किया गया है। किले की दीवारें लगभग 1,200 मीटर लंबी हैं, जिन्हें चट्टानों से काटकर बनाया गया है। किले के चारों ओर तीव्र ढलान और गहरी खाइयाँ हैं, जो इसे रक्षा करने में मदद करती हैं।

– **सजावट :** किले के अंदर कई महल और मंदिर हैं, जिनकी सजावट अद्‌भुत है। किले में बने महलों में फूल महल, मरीन महल और चंद्र महल शामिल हैं। यहाँ की सजावट में जटिल कारीगरी, रंगीन कांच की खिड़कियाँ, और नक्काशीदार पिलर शामिल हैं। भागों में अद्वितीय रंगों और चित्रिणियों का उपयोग किया गया है, जो भारतीय स्थापत्य कला की समृद्धि को दर्शाते हैं।

– **सांस्कृतिक स्पर्श :** किले के हर कोने में राजस्थानी संस्कृति की खुशबू बसी हुई है। यहाँ के मंदिरों में देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ और विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों की तस्वीरें दिखाई देती हैं। इस किले में हर त्योहार, अवसर और महत्वपूर्ण घटनाओं का आयोजन किया जाता है।

किले का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व :– मेहरानगढ़ किले का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व अत्यधिक है। यह किला ना केवल जोधपुर की पहचान है, बल्कि राजस्थानी इतिहास का भी महत्वपूर्ण हिस्सा

है। किले ने न केवल युद्धों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, बल्कि यह क्षेत्रीय राजनीति और संस्कृति में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आज, यह किला एक प्रमुख पर्यटन स्थल बन गया है, जहाँ हर साल हजारों पर्यटक आते हैं। किले के भीतर स्थित संग्रहालय में पुरातात्त्विक वस्तुएँ और ऐतिहासिक दस्तावेजों का भंडार है, जो इसे शिक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र बनाते हैं। मेहरानगढ़ किला केवल एक भव्य इमारत नहीं है, बल्कि यह जोधपुर की सांस्कृतिक धरोहर, इतिहास और स्थापत्य कला का प्रतीक है। इसकी दीवारों में छिपी कहानियाँ, भव्य महल, और अद्वितीय सजावट इसे भारत के सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों में शामिल करते हैं। इस प्रकार, मेहरानगढ़ किला जोधपुर और राजस्थान की ऐतिहासिक पहचान का अभिन्न हिस्सा है।

जोधपुर की प्रमुख स्थापत्य कला के उदाहरण : उम्मेद भवन :– राजस्थान के जोधपुर शहर में स्थित उम्मेद भवन एक ऐसा ऐतिहासिक निर्माण है जो न केवल भारतीय वास्तुकला को बल्कि राजा के साम्राज्य के विभिन्न पहलुओं को भी प्रदर्शित करता है। यह भवन जोधपुर के महाराजा उम्मेद सिंह द्वारा 1929 में बनवाया गया था, और इसका निर्माण साम्राज्य के दरबार की साधारणता से लेकर समृद्धि और शान के प्रतीक के रूप में किया गया। उम्मेद भवन का निर्माण एक उत्कृष्ट राजसी महल के रूप में किया गया जो कि मुख्यतः 1921 से 1943 के बीच कार्यरत रहा। इस भवन के निर्माण की कहानी ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ी हुई है। जब जोधपुर में विनाशकारी सूखा पड़ा था और जनता की स्थिति दयनीय हो गई थी, तब महारा उम्मेद सिंह ने इसे रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से बनवाने का निर्णय लिया। यह न केवल एक महल था, बल्कि एक निर्माण परियोजना के रूप में भी देखा गया, जिसके जरिये स्थानीय लोगों को रोजगार मिला और समाज की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ (गर्ग, 2016)। उम्मेद भवन के निर्माण में आर्ट डेको की शैली की वास्तुकला की झलक देखने को मिलती है। यह शैली आमतौर पर 1920 से 1940 के बीच प्रचलित रही थी, जिसमें भव्यता, सरलता और आधुनिकता का का समावेश होता था। उम्मेद भवन का डिजाइन इसका बेहतरीन उदाहरण है, जिसमें यूरोपीय और भारतीय वास्तुकला के तत्वों का सुंदर समन्वय दिखता है। इस भवन की बाहरी दीवारों पर सुंदर पेंटिंग्स, मूर्तियों और जटिल डिजाइनिंग की गई है। इसका मुख्य भवन बलुआ पत्थर से बना है, जिसमें आंतरिक सज्जा में राजस्थानी कलाकारी का समावेश किया गया है। उजले रंग के बलुआ पत्थर और गोलाकार गुंबद इसकी खूबसूरती को और बढ़ाते हैं (पारीख, 2018)।

वर्तमान समय में, उम्मेद भवन एक प्रमुख पर्यटक स्थल के रूप में विकसित हो चुका है। इसे एक महल होटल में परिवर्तित किया गया है, जहाँ पर्यटक न केवल इसकी भव्यता का आनंद लेते हैं, बल्कि वहाँ ठहरने का अनुभव भी लेते हैं। होटल के रूप में, उम्मेद भवन में आलीशान कमरे, एक विस्तृत स्विमिंग पूल और उच्च गुणवत्ता वाले रेस्तरां हैं, जहाँ स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय व्यंजन उपलब्ध हैं। इसके अलावा, उम्मेद भवन में एक संग्रहालय भी है, जिसमें जोधपुर की इतिहास, समृद्ध विरासत और राजसी जीवनशैली को दर्शाने वाली विविध कलाकृतियों का संग्रह है। यहाँ पर पर्यटक स्थानीय संस्कृति, कला, और इतिहास के बारे में जान सकते हैं। यह भवन एक ऐसा स्थल है जहाँ लोग न केवल ऐतिहासिक इमारतों की सुंदरता देख सकते हैं, बल्कि उस दौरान यहां की संस्कृति का अनुभव भी कर सकते हैं (सिंह, 2020)। उम्मेद भवन जोधपुर की स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो इतिहास, संस्कृति और प्रगति को दर्शाता है। इसका निर्माण एक युग के बदलाव का प्रतीक है, जहाँ राजसी शक्ति ने सामान्य जनता के कल्याण की ओर ध्यान दिया। आज यह भवन न केवल

एक भव्य होटल और संग्रहालय है, बल्कि भारतीय स्थापत्य कला के अद्वितीय मिश्रण का प्रतीक भी है।

जोधपुर की प्रमुख स्थापत्य कला के उदाहरण : जसवंत थड़ा :– जोधपुर, अपनी विविध स्थापत्य कला के लिए भी जाना जाता है। इस शहर में विभिन्न ऐतिहासिक स्मारक, महल और किलें हैं, जो इसकी समृद्ध संस्कृति और इतिहास को दर्शाते हैं। इन स्मारकों में से एक प्रमुख उदाहरण है जसवंत थड़ा। यह स्मारक महाराज जसवंत सिंह II की स्मृति में निर्मित किया गया था, जो मेवाड़ की रजवाड़ी की एक महत्वपूर्ण शख्सियत थे। जसवंत थड़ा न केवल एक समर्पण का प्रतीक है, बल्कि यह जोधपुर की स्थापत्य कला का एक अद्वितीय उदाहरण भी प्रस्तुत करता है। जसवंत थड़ा का निर्माण 1899 में हुआ, जिसमें इसकी स्थापत्य कला और क्षेत्रीय इतिहास की गहराई को दर्शाया गया है। यह स्मारक महाराज जसवंत सिंह II को समर्पित है, जिन्होंने जोधपुर राज्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस स्मारक का महत्व सिर्फ एक ऐतिहासिक चरित्र को सहेजने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक भी है। जोधपुर के निवासियों के लिए, जसवंत थड़ा उनकी सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। समर्पण का यह स्वरूप दर्शाता है कि किस प्रकार एक समाज अपने नायकों को श्रद्धांजलि देता है। महाराज जसवंत सिंह II के कार्यों को याद रखने के लिए यह स्मारक न केवल उनके प्रति आदर का संकेत है, बल्कि यह जोधपुर के लिए एक महत्वपूर्ण पर्यटन स्थल भी बन गया है। आज, यह स्मारक न सिर्फ स्थानीय लोगों बल्कि पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केंद्र बना हुआ है, जो वास्तुकला की सुंदरता और सांस्कृतिक इतिहास का आनंद लेने आते हैं।

स्थापत्य शैली और सामग्री का विवरण :– जसवंत थड़ा की स्थापत्य शैली राजस्थानी वास्तुकला का एक उत्तम उदाहरण है, जिसमें भारतीय, अरबी और स्थानीय स्थापत्य तत्वों का अद्‌भुत मिश्रण देखने को मिलता है। इसकी विशेषता में सफेद संगमरमर का उपयोग है, जो इसे भव्यता और अनूठापन प्रदान करता है। स्मारक की भौतिक संरचना में जटिल रूपांकनों और सुनहरे काम का समावेश है, जो इसे विशेष बनाता है। जसवंत थड़ा की इमारत में उत्कृष्ट शिल्प कौशल का प्रदर्शन होता है। इसकी भव्यता को दर्शाते हुए, स्मारक की दीवारों पर नक्काशी की गई है, जिसमें जटिल ज्यामितीय डिजाइन और फूलों के नमूने शामिल हैं। इन नक्काशियों में एक ऐसा सौंदर्य है, जो आगंतुकों को मंत्रमुग्ध कर देता है। इसके अलावा, स्मारक के चारों ओर बाग–बगिचों का विस्तार है, जो इसके सौंदर्य को और बढ़ाता है। सामग्री के चयन में सफेद संगमरमर का उपयोग किया गया है, जो न केवल सौंदर्य को बढ़ाता है, बल्कि स्थानीय जलवायु के लिए भी उपयुक्त है। यह संगमरमर गर्मी को सहन करने की क्षमता रखता है, जिससे गर्मियों में यह ठंडा रहता है।

इस प्रकार, जसवंत थड़ा की वास्तुकला न केवल कलात्मक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह कार्यात्मक दृष्टिकोण से भी विचारशीलता को दर्शाता है। जसवंत थड़ा, जोधपुर की स्थापत्य कला का एक अद्वितीय उदाहरण है, जो न केवल स्थापत्य शैली में अपने कौशल के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक स्मारक के रूप में भी सम्मानित है। यह महाराज जसवंत सिंह II की स्मृति को अमर बनाता है और जोधपुर के सांस्कृतिक धरोहर को प्रकट करता है। इस स्मारक ने न केवल स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित किया है, बल्कि यह जोधपुर को एक प्रमुख पर्यटन स्थल के रूप में स्थापित करने में भी मदद की है। इस प्रकार, जसवंत थड़ा न केवल स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है, बल्कि यह एक समुदाय की पहचान और समर्पण का प्रतीक भी है।

3. जोधपुर की अन्य महत्वपूर्ण संरचनाएँ :-

राजस्थान के ऐतिहासिक नगर जोधपुर में, रीति–रिवाजों, सांस्कृतिक धरोहरों और अद्‌भुत वास्तुकला द्वारा प्रभावित कई महत्वपूर्ण संरचनाएँ मौजूद हैं। इनमें से एक प्रमुख संरचना है 'कादिर के हौज', जो जल संरक्षण की पारंपरिक विधियों का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। कादिर के हौज, जो आज भी जोधपुर वासियों के लिए जल संरक्षण का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, एक सुंदर जलाशय है जो पारंपरिक वास्तुकला और सामुदायिक जीवन का प्रतीक है। यह हौज प्राचीन समय में स्थानीय निवासियों के लिए जल स्रोत के रूप में कार्य करता था और आज भी इसकी उपयोगिता बनी हुई है। इसके अलावा जल संरक्षण की पारंपरिक विधियाँ भारत की सांस्कृतिक धरोहर का अहम हिस्सा हैं। कादिर के हौज में भी ऐसी कई विधियाँ देखने को मिलती हैं। यहाँ जल का संचय और निस्पंदन करने के लिए विशेष तकनीकें अपनाई गई हैं।

1. **स्रोत जल का संचय :** कादिर के हौज में वर्षा के पानी को एकत्रित करने के लिए गड्ढे और नदियों के समानांतर व्यवस्था की गई है। ये गड्ढे बारिश के पानी को संग्रहित करते हैं, जिससे यहाँ साल भर जल उपलब्ध रहता है।
2. **वृक्षारोपण :** हौज के आसपास वृक्षारोपण की विधियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। पेड़–पौधे जल को अवशोषित करने में मदद करते हैं और मिट्टी को स्थिर रखते हैं।
3. **सामुदायिक भागीदारी :** कादिर के हौज के आसपास की स्थानीय आबादी को जल संरक्षण के लिए एकजुट किया गया था। सामुदायिक प्रयासों के माध्यम से न केवल जल की उपलब्धता बढ़ाई गई, बल्कि लोगों के भीतर संरक्षण के प्रति जागरूकता भी फैलायी गयी।

वास्तुकला की विशेषताएँ और उपयोगिता :- कादिर के हौज की वास्तुकला अपने आप में अनूठी है। इसे बनाने के समय विभिन्न वास्तुशिल्प तकनीकों का उपयोग किया गया था।

1. **वास्तुकला की विशिष्टता :** कादिर के हौज की दीवारें जटिल नक्काशियों और खूबसूरत केलिकोट्स से सजाई गई हैं। इस हौज के चारों ओर का वातावरण बेहद आकर्षक है, जिससे यह एक दर्शनीय स्थल भी बना हुआ है। इसके निर्माण में उत्कृष्ट संगमरमर और बालू पत्थर का उपयोग हुआ है, जो इसे एक विशेष भव्यता प्रदान करता है।
2. **जल वितरण प्रणाली :** इस हौज का जल वितरण व्यवस्था ऐसी है कि यह जल की आवश्यकता के अनुसार प्रवाहित होता है। जल को कुशलतापूर्वक विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचाने के लिए बनी पाइपलाइन और जल चैनल की व्यवस्था अद्वितीय है।
3. **सामाजिक कनेक्शन :** कादिर के हौज केवल जल संग्रहण का माध्यम नहीं है, बल्कि यह स्थानीय निवासियों के लिए सामाजिक मिलन स्थल भी है। यहाँ लोग मिलते–जुलते हैं, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं, और यह समुदाय की एकता को भी दर्शाता है।

जोधपुर के कादिर के हौज जैसी संरचनाएँ न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये हमें जल संरक्षण के महत्व और पारंपरिक भारतीय वास्तुकला की उत्कृष्टता के बारे में भी शिक्षित करती हैं। आज की आधुनिक दुनिया में, जब जल संकट एक बड़ा मुद्दा बन चुका है, तब कादिर के हौज द्वारा हमें जल की बचत और संरक्षण की पारंपरिक विधियों का महत्व समझ में आता है। इस प्रकार, यह संरचना जोधपुर की सांस्कृतिक

और वास्तुशिल्पीय धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो हमें हमारे अतीत से जोड़ता है और भविष्य के लिए आवश्यक ज्ञान प्रदान करता है।

जोधपुर की अन्य महत्वपूर्ण संरचनाएँ :-

जोधपुर, जो कि राजस्थान राज्य का एक प्रमुख शहर है, अपनी ऐतिहासिक धरोहर, रियासतों की संस्कृति और विविध वास्तुसंबंधी खासियतों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की संरचनाएँ न केवल स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये शहर के इतिहास और सांस्कृतिक विकास की कहानी भी बयां करती हैं। इसमे दो महत्वपूर्ण संरचनाए संदेश द्वार और चौपासनी है, जो शहर के द्वार और उनकी ऐतिहासिक महत्ता को दर्शाती है। जोधपुर की वास्तुकला में द्वारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनमें से एक प्रमुख द्वार है संदेश द्वार। यह द्वार शहर के पुराने हिस्से का एक महत्वपूर्ण प्रवेश बिंदु है। अपने समय में, कह सकते हैं कि यह द्वार जोधपुर की सुरक्षा और उनके सामरिक महत्व का प्रतीक था। द्वार का निर्माण रानी जसोमति के द्वारा किया गया था, जो कि जोधपुर के संस्थापक राव जोधा की पत्नी थीं। यह द्वार एक सुरम्य नजारे का हिस्सा है, जो इसकी ऐतिहासिकता को और भी बढ़ाता है। द्वार का नाम 'संदेश' उस समय के संदेशवाहकों की गतिविधियों को दर्शाता है, जो किसी समय इस मार्ग को पार कर महत्वपूर्ण संदेश लाते और ले जाते थे (सिंह, 2020)। इसके अलावा जोधपुर के अन्य द्वार, जैसे कि चांदपोल और नालापोल भी इसी प्रकार की ऐतिहासिक महत्ता रखते हैं। ये द्वार शहर के विभिन्न हिस्सों को जोड़ते हैं और यहाँ की संस्कृति तथा व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी देते हैं। इन द्वारों की दीवारों पर बनी नक्काशी और चित्रण इस क्षेत्र की धरोहर को जीवंत बनाते हैं।

स्थापत्य तत्वों की चर्चा से पता चलता है संदेश द्वार की निर्माण कला इसमें मौजूद स्थापत्य तत्वों को जोड़ते हैं। इस द्वार की बनावट में राजस्थानी वास्तुकला की अद्‌भुत झलक मिलती है। यह द्वार लाल और पीले बलुआ पत्थर से निर्मित है, जो इसको बेजोड़ बनाता है। द्वार के ऊपर की ओर बनी चित्रकारी और नक्काशी इसे और भी आकर्षक बनाती है। इन चित्रकलाओं में देवताओं और विभिन्न धार्मिक प्रतीकों की छवियाँ शामिल हैं, जो उस समय की धार्मिक प्रथाओं को दर्शाती हैं (कुमार, 2021)। चौपासनी की चर्चा करते हुए, यह भी एक अद्वितीय संरचना है जो जोधपुर की अन्य महत्वपूर्ण विशेषताओं को दर्शाती है। इसकी नींव भी राजस्थानी संस्कृति के स्थापत्य तत्वों पर आधारित है। चौपासनी, जो कि एक उपनगर है, अपने जलाशयों और हरित क्षेत्रों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के जलाशय, अतीत में जल आपूर्ति के स्त्रोत रहे हैं, जो ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए आवश्यक थे। इस प्रकार, जोधपुर की अन्य महत्वपूर्ण संरचनाएँ – संदेश द्वार और चौपासनी, शहर की स्थापत्य और सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये न केवल आर्किटेक्चरल दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि जोधपुर के इतिहास, उसके साम्राज्य और सांस्कृतिक विकास को भी उजागर करती हैं। इन संरचनाओं का संरक्षण और अध्ययन हमें अतीत से जुड़ने और सांस्कृतिक धरोहर को संजोने में मदद करता है। जोधपुर की ऐतिहासिक महत्ता और इसकी संरचनाएँ, इसे एक अतुलनीय अनुभव प्रदान करती हैं, जो हर पर्यटक को आकर्षित करती हैं।

4. सांस्कृतिक प्रभाव और कलात्मकता :-

भारत की सांस्कृतिक धरोहर अत्यंत विस्तृत और विविधतापूर्ण है, और राजस्थान इस विविधता का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। राजस्थान की कला, संस्कृति और वास्तुकला ने न केवल भारतीय

उपमहाद्वीप को प्रभावित किया है, बल्कि विश्व स्तर पर भी अपनी पहचान बनाई है। इस विवरण में हम राजस्थानी चित्रकला, स्थानीय कलाकृतियों का योगदान, तथा वास्तुकला में धार्मिक और आध्यात्मिक तत्वों का समावेश करेंगे। राजस्थानी चित्रकला, जो आंचलिक कलाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, अपनी चमकीली रंगों, विशेष विषयों, और बारीक रेखांकन के लिए प्रसिद्ध है। यह कला मुख्य रूप से राजपूत राजाओं की संरक्षण में विकसित हुई और इसे 'विथ्दुसार' शैली के नाम से भी जाना जाता है। विथ्दुसार एक विशेष चित्रकला शैली है, जिसे आमतौर परकालीन आभिजात्य के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। राजस्थानी चित्रकला में कई प्रकार की शैलियाँ होती हैं, जैसे कि मींड, पिचवाई, और भित्ति चित्र। मींड चित्रकला मुख्यतः कांच के टुकड़ों और रेशमी वस्त्रों पर बनती है, जबकि पिचवाई चित्रकला भगवान कृष्ण की लीलाओं का चित्रण करती है। भित्ति चित्रों की बात करें तो ये आमतौर पर महलों और किलों की दीवारों पर बनाए जाते हैं। इन चित्रों में भारतीय पौराणिक कथाओं, लोककथाओं, और धार्मिक विषयों का गहरा प्रभाव होता है। इनमें रंगों का प्रयोग न केवल सौंदर्य के लिए किया जाता है, बल्कि गहरी आध्यात्मिकता और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी किया जाता है।

स्थानीय कलाकृतियों का योगदान :– राजस्थान की स्थानीय कलाकृतियाँ, जैसे कि मिट्टी के बर्तन, काठ की नक्काशी, और हाथ से बनाए गए वस्त्र, सांस्कृतिक पहचान और कलात्मकता में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। हर क्षेत्र की अपनी विशेषता और पहचान होती है। उदाहरण के लिए, काठ की नक्काशी जो कि जोधपुर में प्रसिद्ध है, अपने अद्वितीय डिजाइनों और बारीकी के लिए जानी जाती है। यहाँ के कारीगरों द्वारा काठ पर नकेश करने की प्रथा सैकड़ों वर्षों पुरानी है और इसे पीढ़ी दर पीढ़ी सिखाया जा रहा है। इसी प्रकार, मेवाड़ क्षेत्र की मीनाकारी और जॉवेलरी भी इस राज्य की कला का अभिन्न हिस्सा हैं। यह कलाएँ न केवल वाणिज्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत को भी संरक्षित करती हैं। स्थानीय कलाकृतियों का व्यापक उपयोग सामाजिक आयोजनों, जैसे कि विवाह, उत्सव आदि में किया जाता है, जिससे उनकी सांस्कृतिक प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

वास्तुकला में धार्मिक और आध्यात्मिक तत्व :– राजस्थान की वास्तुकला में धार्मिक और आध्यात्मिक तत्वों का गहरा समावेश है। राज्य के विभिन्न हिस्सों में मंदिरों, महलों, और किलों की वास्तुकला में हिंदू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का संगम दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, अजमेर शरीफ का दरगाह मुस्लिम आस्था का महत्वपूर्ण स्थल है, जबकि कुंभलगढ़ और चित्तौड़गढ़ जैसे किलों में हिंदू आस्थाओं का गहरा प्रभाव है। राजस्थान के मंदिरों, जैसे कि जोगेश्वर मंदिर और बृजमंडल के मंदिर, की वास्तुकला में न केवल धार्मिक किंवदंतियों का चित्रण होता है, बल्कि इसमें स्थापत्य कला के अद्भुत उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। यहाँ के मंदिरों की दीवारों पर की गई नक्काशी और भित्ति चित्रों में एक अद्वितीय धार्मिक इशारा होता है। ये इमारतें केवल भौतिक संरचनाएँ नहीं हैं, बल्कि ये लोक और आध्यात्मिक संदर्भों में गहराई से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार, राजस्थान की सांस्कृतिक विविधता और कलात्मकता एक–दूसरे के पूरक हैं। यहाँ की चित्रकला, स्थानीय कलाकृतियाँ और वास्तुकला, जो धार्मिक और आध्यात्मिक तत्वों को अपने में समाहित किए हुए हैं, इस क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक हैं। इन तत्वों का अध्ययन और संरक्षण न केवल राजस्थान की पहचान को बनाए रखने में सहायक है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति की विविधता को भी प्रकट करता है।

5. जोधपुर की स्थापत्य कला का संरक्षण :-

भारत देश के राजस्थान राज्य में स्थित जोधपुर शहर की स्थापत्य कला भारत के इतिहास और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यहाँ के किले, महल, और अन्य ऐतिहासिक संरचनाएँ न केवल स्थापत्य कौशल का प्रमाण हैं, बल्कि यह शहर की सांस्कृतिक विविधता का भी प्रतीक हैं। लेकिन, समय के साथ, इन अद्‌भुत संरचनाओं का संरक्षण एक बड़ी चुनौती बनता जा रहा है।

संरक्षण में चुनौतियाँ :- जोधपुर की स्थापत्य कला का संरक्षण कई दृष्टिकोण से चुनौतीपूर्ण है। सबसे पहले, जलवायु परिवर्तन और मौसम की चरमताएँ इन संरचनाओं पर भारी पड़ रही हैं। बारिश, धूप, और समय के साथ आने वाली रासायनिक क्रियाएँ चित्तौड़ के किलों और महलों के लिए हानिकारक साबित हो रही हैं। इसके अलावा, बिना उचित देखरेख और संरक्षण के कारण अनेक ऐतिहासिक इमारतें धीरे–धीरे जर्जर हो रही हैं। दूसरे, आर्थिक साक्षरता और संसाधनों की कमी भी एक बड़ी बाधा है। स्थानीय सरकारी संस्थाएँ और सामुदायिक संगठन अक्सर संरक्षण के लिए आवश्यक फंडिंग की कमी का सामना करते हैं, जिससे मौजूदा संरचनाओं की देखभाल में बाधा आती है। इसके अलावा, लोग इन ऐतिहासिक धरोहरों के महत्व को पूरी तरह से नहीं समझते हैं, जिससे संरक्षण के प्रयासों में स्थानीय समर्थन की कमी हो जाती है। तीसरे, अव्यवस्थित शहरीकरण भी संरक्षण के प्रयासों में रुकावट डाल रहा है। जोधपुर की तेजी से बढ़ती जनसंख्या और शहर का बढ़ता हुआ दायरा, ऐतिहासिक स्थलों के आसपास अव्यवस्थित निर्माण कार्यों का कारण बन रहे हैं। इससे न केवल संरचनात्मक स्थिरता प्रभावित होती है, बल्कि धरोहर के मानसिकता को भी नुकसान पहुंचता है।

स्थानीय सरकार और एनजीओ की भूमिका :- स्थानीय सरकार और कई गैर–सरकारी संगठनों (एनजीओ) ने जोधपुर की स्थापत्य कला के संरक्षण के लिए ठोस कदम उठाए हैं। राज्य और स्थानीय सरकारें कई योजनाएँ और नीतियाँ बना रही हैं ताकि शहर की धरोहरों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। इन योजनाओं में संरचनाओं का नियमित निरीक्षण, संरक्षण कार्यों के लिए फंडिंग, और सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रम शामिल हैं। विभिन्न एनजीओ, जैसे कि 'द एसोसिएशन फॉर कंसर्वेशन', ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण के लिए जागरूकता बढ़ाने में सक्रिय हैं। ये संगठनों न केवल संरक्षण कार्यों में सहायता करते हैं, बल्कि स्थानीय समुदाय के साथ मिलकर लोगों को जोधपुर की धरोहर के महत्व से अवगत कराने का भी प्रयास करते हैं। इसके अलावा, वे कार्यशालाएँ और सेमिनार आयोजित करते हैं, जिसमें स्थानीय निवासियों को अपने आसपास की ऐतिहासिक संरचनाओं की देखभाल करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

जागरूकता बढ़ाने के कार्यक्रम :- जागरूकता बढ़ाने के कार्यक्रम जोधपुर की स्थापत्य कला के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न संगठनों द्वारा आयोजित इन कार्यक्रमों का उद्देश्य स्थानीय निवासियों और पर्यटकों को ऐतिहासिक धरोहरों के महत्व से अवगत कराना है। उदाहरण के लिए, स्कूलों में चलाए जाने वाले कार्यक्रम, जहां बच्चों को जोधपुर की स्थापत्य कला के बारे में सिखाया जाता है, दीर्घकालीन प्रभाव डालते हैं। इसके अलावा, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग करके भी जागरूकता बढ़ाई जा रही है। तस्वीरें, वीडियो, और अन्य सामग्री साझा करके लोग न केवल अपने शहर की धरोहर का महत्व समझते हैं, बल्कि उनके संरक्षण में भी भागीदारी करते हैं। इन्हीं प्रयासों के अंतर्गत, स्थानीय सरकार ने स्वयंसेवी समूहों के साथ मिलकर 'धरोहर सप्ताह' जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया है। इन कार्यक्रमों में ऐतिहासिक स्थलों की सफाई,

अध्ययन और संरक्षण के कार्य किए जाते हैं, जिससे स्थानीय समुदाय में एकता और संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ती है। जोधपुर की स्थापत्य कला का संरक्षण एक महत्वपूर्ण कार्य है जो स्थानीय सरकार, एनजीओ, और समुदाय के सामूहिक प्रयासों पर निर्भर है। चुनौतियाँ अवश्य हैं, लेकिन उचित उपायों और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से, इन अद्‌भुत संरचनाओं को सुरक्षित रखना संभव है। जोधपुर की धरोहर न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह स्थानीय संस्कृति और पहचान का भी अभिन्न हिस्सा है। यहाँ की स्थापत्य कला का संरक्षण आने वाली पीढ़ियों के लिए न केवल एक धरोहर होगी, बल्कि यह भारतीय संस्कृति की गहराई और विविधता को भी दर्शाएगी।

6. वर्तमान समय में जोधपुर का स्थापत्य :–

भारतीय राज्य राजस्थान का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और ऐतिहासिक केंद्र है। जोधपुर न केवल अपने ऐतिहासिक महलों और किलों के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि यहाँ की आधुनिक वास्तुकला में भी अद्वितीयता का समावेश हुआ है। इस लेख में हम वर्तमान समय में जोधपुर के स्थापत्य को विभिन्न पहलुओं से देखेंगे : इसमें आधुनिक वास्तुकला और पारंपरिक शैली का समावेश, पर्यटन का बढ़ता प्रभाव, और आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थायी विरासत के निर्माण पर चर्चा करेंगे।

1. आधुनिक वास्तुकला और पारंपरिक शैली का समावेश :–

जोधपुर का स्थापत्य कला का एक अद्वितीय मिश्रण है, जहाँ पारंपरिक राजस्थानी वास्तुकला की भव्यता और आधुनिककाल की डिजाइन संवेदनाएँ एक साथ मिलती हैं। पारंपरिक शैली में आमतौर पर रतनदानि लाल बलुआ पत्थर से बने भवनों का निर्माण होता है, जिनकी जालीदार खिड़कियाँ, ऊंचे मेहराब, और समृद्ध सजावट इसे और भी आकर्षक बनाती हैं। मेहरानगढ़ किला और उम्मेद भवन जैसे प्रतिष्ठित उदाहरण पारंपरिक स्थापत्य कला की श्रेष्ठता को प्रस्तुत करते हैं (सिंह, 2019)। वहीं, आधुनिक वास्तुकला में स्थानीय और वैश्विक दोनों तरह के तत्व शामिल हैं। नई इमारतों में विश्व स्तर की सामग्रियों का उपयोग किया जाता है और पर्यावरण के अनुकूल उपायों को भी ध्यान में रखा जाता है। उदाहरण स्वरूप, कई होटल और रेजॉर्ट जोधपुर में ऐसे बनाए गए हैं, जो आधुनिक सुविधाओं के साथ–साथ पारंपरिक वास्तुकला के तत्वों का समावेश करते हैं (कुमार, 2020)। इससे न केवल इमारतों की खूबसूरती बढ़ती है, बल्कि वे स्थानीय संस्कृति और विरासत की भी सच्ची प्रतीक बनती हैं।

2. पर्यटन का बढ़ता प्रभाव :–

जोधपुर एक प्रमुख पर्यटन स्थल रहा है, जोकि न केवल घरेलू बल्कि अंतरराष्ट्रीय पर्यटकों को भी आकर्षित करता है। इसके ऐतिहासिक स्थलों के साथ–साथ आधुनिक स्थापत्य निर्माण ने यहां के पर्यटन में वृद्धि की है। आधुनिक इमारतों जैसे कि होटल, कैफे और शॉपिंग मॉल ने शहर की सूरत को बदल दिया है। पारंपरिक बाजारों और शिल्प कौशल का समावेश भी पर्यटन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्यटक केवल किलों और महलों का दौरा नहीं करते, बल्कि स्थानीय संस्कृति, क्राफ्ट, और खाद्य पदार्थों का भी अनुभव करते हैं। इस संदर्भ में, जोधपुर में आयोजित होने वाले विभिन्न त्यौहार और मेले, जैसे कि जोधपुर रिवेरा और राजस्थान अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव, पर्यटन को और बढ़ावा देते हैं (आर्या, 2021)।

3. आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थायी विरासत :-

जोधपुर का स्थापत्य केवल वर्तमान के लिए नहीं है, बल्कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्थायी विरासत का प्रतीक है। ऐतिहासिक इमारतों के संरक्षण और आधुनिक इमारतों के विकास के द्वारा प्रशासन और स्थानीय समुदाय दोनो ने यह सुनिश्चित किया है कि जोधपुर की सांस्कृतिक धरोहर बनी रहे।

स्थायी वास्तुकला की विशेषता यह है कि इसे निर्माण में उपयोग की जाने वाली सामग्रियों और तकनीकों का ध्यान रखा जाता है। जैसे कि, जल संचयन और ऊर्जा के संरक्षण संबंधी उपायों को अपनाकर, नए निर्माणों को पारंपरिक शैली से जोड़ा जा रहा है। इस प्रक्रिया से न केवल पर्यावरण की रक्षा होती है, बल्कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अनमोल धरोहर भी स्थापित करती है।

इस प्रकार, वर्तमान समय में जोधपुर का स्थापत्य कला एक विलक्षण और जटिल प्रक्रिया है जिसमें पारंपरिक और आधुनिक तत्वों का अद्‌भुत संगम दिखाई देता है। इससे न केवल शहर का सौंदर्य बढ़ता है, बल्कि यह पर्यटन को भी बढ़ावा देता है। जोधपुर की वास्तुकला की यह धरोहर आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्थायी विरासत बनकर रहेगी। निस्संदेह, जोधपुर अपनी संस्कृति, इतिहास और आधुनिकता के अद्‌भुत संगम के लिए सदैव याद किया जाएगा। जोधपुर न केवल अपनी अद्‌भुत प्राकृतिक सुंदरता के लिए जाना जाता है, बल्कि इसकी स्थापत्य कला के लिए भी इसे विश्व स्तर पर पहचान मिली है। जोधपुर की ईमारतों में भारतीय और विदेशी स्थापत्य कला का अनूठा संगम देखने को मिलता है, जो इसे एक विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। इस शहर की स्थापत्य कला की विशेषताएँ और उनके भारत और विश्व पर प्रभाव की चर्चा करना आवश्यक है।

जोधपुर की स्थापत्य कला का भारत और विश्व पर प्रभाव :-

जोधपुर की स्थापत्य कला में राजपूत शैली की वास्तुकला की उत्कृष्टता देखी जा सकती है। मेहरानगढ़ किला, उम्मेद भवन और जसवंत थड़ा जैसी इमारतें इस शैली की अद्‌भुत उदाहरण हैं। यह किला एक पहाड़ी पर स्थित है और इसे एक दुर्ग के रूप में बनाया गया था, जो विजुअल रूप से आकर्षक और मजबूत सुरक्षा के लिए डिजाइन किया गया था। मेहरानगढ़ किला, जो कि जोधपुर का सबसे बड़ा किला है, अपनी विशाल दीवारों, सुंदर जालियाँ और अद्वितीय वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध है (पांडे, 2021)। जोधपुर की वास्तुकला ने न केवल भारत में बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अन्य देशों के वास्तुकला पर प्रभाव डाला है। उदाहरण के लिए, जोधपुर की स्थापत्य कला ने कई विदेशी वास्तुकारों को प्रेरित किया है। हिंदू और मुस्लिम स्थापत्य संस्कृतियों का मिश्रण, जैसे कि गुंबद और मेहराबों का उपयोग, जैसे वास्तुकला के तत्व कई अन्य देशों की इमारतों में भी देखे जा सकते हैं। इसकी अनूठी शैली ने अंतराष्ट्रीय आर्किटेक्ट्स और डिजाइनरों को भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को समझने में मदद की है (सिंह, 2020)। जोधपुर आज केवल एक खूबसूरत शहर नहीं है, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यहाँ की वास्तुकला, कला, संस्कृति और परंपराएँ भारतीय इतिहास और संस्कृति को जीवंत बनाए रखने का कार्य करती हैं। जोधपुर की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण न केवल स्थानीय लोगों के लिए बल्कि समग्र मानवता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है (शर्मा, 2022)।

इस शहर के द्वारा प्रदर्शित शिल्प कौशल, जैसे कि हाथ से बनाए गए वस्त्र, कढ़ाई, और धातु शिल्प, इसे सांस्कृतिक पर्यटन के लिए एक प्रमुख स्थल बनाते हैं। जोधपुर में आयोजित होने वाले विभिन्न त्योहार जैसे कि मेला, संगीत और नृत्य कार्यक्रम, यहाँ की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं को दर्शाते हैं। इसके अलावा, जोधपुर के

रंग–रेलियों, हस्तशिल्प बाजारों और पारंपरिक व्यंजनों ने इसे सांस्कृतिक गंतव्य के रूप में विश्व स्तर पर प्रस्तुत किया है (कुमार, 2023)। जोधपुर की स्थापत्य कला और इसकी सांस्कृतिक धरोहर न केवल भारतीय लोकजीवन को समृद्ध करती है, बल्कि यह हमारे सामाजिक और ऐतिहासिक पहचान का भी अभिन्न हिस्सा है। यह भारतीय संस्कृति के एकीकृत स्वरूप को दर्शाता है और यह समझाता है कि विभिन्न संस्कृतियों के बीच संतुलन कैसे बनाए रखा जा सकता है। इसके आगे बढ़ते हुए, यह आवश्यक है कि हम जोधपुर की स्थापत्य कला और उसकी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने के लिए प्रयास करें। इसके लिए हमें न केवल आंतरिक स्तर पर जागरूकता बढ़ानी चाहिए, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी इसे प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। यह न केवल मीलों दूर बसे लोगों के लिए अद्वितीय अनुभव प्रदान करेगा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अमूल्य धरोहर भी बनाने में सहायक होगा।

समापन – जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाएँ : अनुसंधान की आवश्यकता और भविष्य दृष्टि :–

जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाओं में मेहरानगढ़ किला सबसे प्रमुख है, जो कि शहर के ऊपर ऊँचाई पर स्थित है। यह किला 68 मीटर ऊँची चट्टान पर स्थित है और इसके दीवारें और किलेदार गेट इसे अद्भुत बनाते हैं। इस किले में स्थित संग्रहालय यह दर्शाने का कार्य करता है कि कैसे यह शहर विभिन्न शासकों के अधीन रहा और किस प्रकार की संस्कृति और परंपरा का विकास हुआ। इस किले की वास्तुकला राजपूत शैली की एक उत्कृष्ट मिसाल है, जो धरोहर संरक्षण के लिए अनुसंधान की आवश्यकता को दर्शाती है राव जोधा द्वारा 1459 में इस अद्भुत नगर की स्थापना की गई थी, यह मेहरानगढ़ किले के आसपास विकसित हुआ। जोधपुर की स्थिति और इसकी ऐतिहासिक स्थापनाएँ, जैसे कि उम्मेद भवन, जसवंत थड़ा, और सिटी पैलेस, न केवल इसके स्थापत्य कौशल का प्रमाण हैं बल्कि इस क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का भी परिचायक हैं। (सिंह, 2020)।

इसके अलावा, उम्मेद भवन एक और महत्वपूर्ण स्थल है, जो कि जोधपुर के महाराज उम्मेद सिंह द्वारा बनवाया गया था। यह महल सिर्फ ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि स्थापत्य की दृष्टि से भी बेहद महत्वपूर्ण है। यहाँ के वास्तुकला में इंडो–कोलोनियल स्टाइल की झलक मिलती है, जो उस समय की शैली और शासकों के जीवन का परिचायक है (कुमार, 2021)। जोधपुर का प्रत्येक स्थापन, न केवल उस समय के इतिहास को दर्शाते हैं, बल्कि संस्कृति, परंपरा और सामाजिक जीवन का भी वर्णन करते हैं। ये स्थान न केवल दर्शकों का आकर्षण अपने ओर खींचते हैं, बल्कि शोधकर्ताओं और इतिहासकारों के लिए भी अनगिनत संभावनाएँ प्रस्तुत करते हैं। हालांकि जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाएँ पहले से ही कई शोधों का विषय रही हैं, लेकिन अभी भी गहराई से अध्ययन की आवश्यकता है। इसके पीछे कई कारण हैं :–

1. **विस्तृत ऐतिहासिक संज्ञान :** जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाएँ केवल वास्तुकला के दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि उनके सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों में भी विश्लेषण की आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि हम समझें कि इन स्थलों का निर्माण किस उद्देश्य से किया गया और किस प्रकार का सामाजिक वातावरण था (Sharma, 2022)।
2. **सांस्कृतिक संरक्षण :** कई ऐतिहासिक स्थलों की स्थिति बिगड़ती हो रही है। उचित संरक्षण और पुर्नस्थापन के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। जोधपुर के विभिन्न स्थलों की अवस्था को समझना और उनकी मरम्मत के लिए सही तकनीकों का चयन करना एक चुनौती है (कोठारी, 2020)।

3. **टूरिज्म प्रबंधन :** जोधपुर, जो कि एक प्रमुख पर्यटन स्थल है, वहाँ पर्यटकों की बढ़ती संख्या के साथ स्थलों के संरक्षण और प्रबंधन की आवश्यकता भी बढ़ गई है। शोध करना आवश्यक है कि किस प्रकार से इन स्थलों को पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जा सकता है, जिससे उनकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक मूल्य में कटौती न हो (पारिख, 2021)।

4. **आधुनिक तकनीकों का उपयोग :** ऐतिहासिक स्टडीज में नई तकनीकों का समावेश भी आवश्यक है। जैसे कि डिजिटल संरक्षण और आर्कियोलॉजिकल टेक्नोलॉजी का उपयोग कर इन स्थलों का अध्ययन किया जा सकता है। ऐसे अनुसंधान से न केवल हम इन स्थलों की सही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं बल्कि इनके संरक्षण में भी मदद मिल सकती है (सिंह, 2020)।

भविष्य के लिए दृष्टि :–

जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाओं का सही संरक्षण और अनुसंधान न केवल शहर की पहचान को सहेजने का कार्य करेगा, बल्कि यह भविष्य की पीढ़ियों को भी इस धरोहर से जोड़ने में सहायक होगा।

1. **शिक्षा के माध्यम से जागरूकता :** जोधपुर के स्थलों के महत्व को समझाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों की आवश्यकता है। विद्यालयों और कॉलेजों में इन स्थलों पर आधारित अध्ययन पाठ्यक्रमों को शामिल कर युवा पीढ़ी को ऐतिहासिक कारणों से जोड़ा जा सकता है (कुमार, 2021)।

2. **स्थानीय समुदाय की भागीदारी :** स्थानीय समुदाय का इन स्थलों के संरक्षण और संरक्षण में भूमिका महत्वपूर्ण है। यदि स्थानीय लोग इस धरोहर का महत्व समझते हैं, तो वे इसे सुरक्षित रखने में मदद करेंगे। इसके लिए उन्हें जागरूक करने की आवश्यकता है (Sharma, 2022)।

3. **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग :** विश्व स्तर पर धरोहर संरक्षण के लिए सहयोग बढ़ाना भी महत्वपूर्ण है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ साझेदारी विकसित करना, जो ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण में रुचि रखते हैं, जोधपुर के स्थलों के लिए भविष्य की दृष्टि को मजबूत कर सकता है (कोठारी, 2020)।

4. **विज्ञान और टेक्नोलॉजी का उपयोग :** ऐतिहासिक अध्ययन के साथ–साथ नए तकनीकी समाधानों का विकास, जैसे कि 3डी मॉडलिंग और वर्चुअल रियलिटी, जोधपुर के ऐतिहासिक स्थलों को व्यापक रूप से प्रदर्शित करने में मदद कर सकता है (पारिख, 2021)।

संक्षेप में, जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाएँ सिर्फ इमारतें नहीं हैं, बल्कि वे समय के साथ बदलती सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहरों का हिस्सा हैं। इनकी सुरक्षा और संरक्षण के लिए अनुसंधान न केवल आवश्यक है, बल्कि भविष्य में इनकी पहचान और महत्व को भी बनाए रखने का मार्ग प्रशस्त करेगा। जोधपुर की ऐतिहासिक स्थापनाएँ न केवल अपनी महत्ता को बरकरार रखने की आवश्यकता रखती हैं, बल्कि हमें यह सिखाती हैं कि कैसे हम इतिहास और संस्कृति के प्रति जागरूक रहकर एक बेहतर भविष्य की दिशा में बढ़ सकते हैं।

संदर्भ :–

1. जैन, श्रीनिवास। (2010). मारवाड़ का ऐतिहासिक विकास : एक दृष्टि। जयपुर : राजस्थान प्रेस।
2. सिंह, राघवेंद्र। (2012). राजस्थान में राठौड़ वंश की भूमिका। जोधपुर : राठौड़ शोध संस्थान।

3. शर्मा, के. 'राजस्थान की स्थापत्य कला', प्रकाशन गृह, 2020.
4. कुमारी, आर. 'भारत के किले और उनका इतिहास', ज्ञान प्रकाशन, 2021.
5. जोधपुर डाक्यूमेंटेशन, जोधपुर नगर निगम, 2022.
6. Garg, A. (2016). Rajasthan : A Historical Perspective. Jaipur : Rajasthan Publishers.
7. Parikh, N. (2018). Architectural Wonders of India. New Delhi : Architectural World.
8. Singh, R. (2020). Heritage Hotels of India: A Cultural Exploration. Mumbai: Heritage Press.
9. सिंह, आर. (2020). जोधपुर की ऐतिहासिक संरचनाएँ. राजस्थान संस्कृति और धरोहर।
10. कुमार, एस. (2021). राजस्थानी स्थापत्य विकास. इंडियन आर्किटेक्चर रिव्यू।
11. सिंह, आर. (2019). राजस्थान की वास्तुकला : एक समुचित अध्ययन. जयपुर : राजस्थानी प्रकाशन।
12. कुमार, पी. (2020). आधुनिक वास्तुकला और उसके पर्यावरणीय प्रभाव. दिल्ली : शहरी विकास मंत्रालय।
13. आर्या, एस. (2021). जोधपुर : संस्कृति और पर्यटन का संगम. जोधपुर : थार एंटरप्राइजेज।
14. पांडे, राजेश. (2021). जोधपुर की स्थापत्य कला : एक समृद्ध विरासत।
15. सिंह, अनामिका. (2020). भारतीय वास्तुकला के विभिन्न स्वरूप।
16. शर्मा, प्रियंका. (2022). जोधपुर : संस्कृति और परंपरा का संगम।
17. कुमार, सृष्टि. (2023). सांस्कृतिक पर्यटन : जोधपुर का अद्वितीय पहलू।
18. सिंह, आर. (2020). राजस्थान का इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर। नई दिल्ली : भास्कर प्रकाशन।
19. कुमार, एस. (2021). जोधपुर का स्थापत्य और इसके महत्व। राजस्थान पत्रिका।
20. शर्मा, पी. (2022). जो जोधपुर की धरोहर : एक अध्ययन। सिटी जर्नल।
21. कोठारी, ए. (2020). धरोहर संरक्षण और स्थानीय समुदाय की भागीदारी। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण।
22. पारिख, एन. (2021). विज्ञान और टेक्नोलॉजी के माध्यम से धरोहर अध्ययन। एच.सी.आर्ट्स।
23. सिंह, आर. (2020). राजस्थान का इतिहास और सांस्कृतिक धरोहर। नई दिल्ली : भास्कर प्रकाशन।
24. कुमार, एस. (2021). जोधपुर का स्थापत्य और इसके महत्व। राजस्थान पत्रिका।
25. शर्मा, पी. (2022). जो जोधपुर की धरोहर : एक अध्ययन। सिटी जर्नल।

Bharatchouhan3534@gmail.com
M. : 9001883534

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 184-192

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास की भूमिका

(The Role of Self - Confidence in Academic Achievement and Research)

Dr. Kamlesh

Assistant Professor in Education.

Abstract :-

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। आत्मविश्वास एक मानसिक अवस्था है, जो व्यक्ति को अपने ज्ञान, क्षमताओं और कौशल पर विश्वास बनाए रखने में सहायता करता है। यह शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले कई कारकों में से एक प्रमुख कारक है। इस शोध का उद्देश्य आत्मविश्वास और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच संबंध को समझना तथा अनुसंधान कार्यों में आत्मविश्वास की भूमिका को विश्लेषित करना है। आत्मविश्वास के उच्च स्तर वाले छात्र एवं शोधकर्ता नई चुनौतियों को स्वीकार करने, समस्याओं के समाधान खोजने और अपने विचारों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने में अधिक सक्षम होते हैं। इसके विपरीत, आत्म–संदेह और आत्मविश्वास की कमी से प्रदर्शन में गिरावट आ सकती है। शोध अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि आत्म–प्रभावकारिता और सकारात्मक मानसिकता आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक होते हैं, जो कि उच्च शैक्षणिक उपलब्धि और प्रभावी अनुसंधान के लिए आवश्यक हैं। शिक्षक, अभिभावक और संस्थान आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए प्रेरक वातावरण, सहयोगी शिक्षण तकनीकों और व्यावहारिक अनुभवों को बढ़ावा देकर विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं को लाभान्वित कर सकते हैं। आत्मविश्वास शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में सफलता की कुंजी है। आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए छात्रों और शोधकर्ताओं को आत्ममूल्यांकन, आत्म–प्रेरणा और सकारात्मक सोच को अपनाने की आवश्यकता है। इसके माध्यम से वे अपनी रचनात्मकता, विश्लेषणात्मक क्षमता और अनुसंधान कौशल को विकसित कर सकते हैं, जिससे अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकें।

Keywords : शैक्षणिक उपलब्धि, आत्मविश्वास, अनुसंधान, आत्म–प्रभावकारिता, सकारात्मक मानसिकता, प्रेरक वातावरण, आत्ममूल्यांकन, आत्म–प्रेरणा, विश्लेषणात्मक क्षमता, रचनात्मकता, शिक्षण तकनीक, समस्या समाधान, मानसिक अवस्था, शैक्षणिक प्रदर्शन, शोध कौशल।

Article :

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान के क्षेत्र में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण कारक है, जो विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं की सफलता को प्रभावित करता है। आत्मविश्वास न केवल व्यक्तिगत विकास में सहायक होता है, बल्कि यह अकादमिक प्रदर्शन को भी प्रभावित करता है। यह लेख आत्मविश्वास और शैक्षणिक प्रदर्शन के बीच संबंध की व्याख्या करेगा और यह बताएगा कि कैसे आत्मविश्वास अनुसंधान कार्य को अधिक प्रभावी बनाता है। आत्मविश्वास और शैक्षणिक प्रदर्शन–आत्मविश्वास का अर्थ है अपनी क्षमताओं और निर्णयों पर भरोसा रखना। जब छात्र अपने कौशल और ज्ञान में आत्मविश्वास महसूस करते हैं, तो वे जटिल विषयों को समझने और नई अवधारणाओं को अपनाने में अधिक सक्षम होते हैं। आत्मविश्वास से भरपूर विद्यार्थी परीक्षा, प्रेजेंटेशन और कक्षा गतिविधियों में अधिक सक्रिय रहते हैं, जिससे उनके शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार होता है। आत्मविश्वास विद्यार्थियों में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करता है, जिससे वे असफलताओं से घबराने की बजाय उनसे सीखने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। आत्मविश्वास से प्रेरित छात्र अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं। आत्मविश्वास छात्रों को चुनौतियों का सामना करने और समस्याओं का समाधान खोजने में सहायक होता है। आत्मविश्वास के साथ, विद्यार्थी विभिन्न विषयों का गहराई से विश्लेषण कर पाते हैं और नए दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं।

अनुसंधान में आत्मविश्वास की भूमिका :–

अनुसंधान एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें नवीन विचारों, प्रयोगों और गहन विश्लेषण की आवश्यकता होती है। आत्मविश्वास अनुसंधानकर्ताओं को अपने कार्य में अधिक रचनात्मक और दृढ़ बना सकता है। आत्मविश्वासी शोधकर्ता नए विचारों को प्रस्तुत करने और नए प्रयोग करने में झिझकते नहीं हैं। आत्मविश्वासपूर्ण शोधकर्ता अपने निष्कर्षों पर दृढ़ रहते हैं और उनकी सटीक व्याख्या कर सकते हैं। आत्मविश्वास शोधकर्ताओं को अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने और शोध पत्रों को प्रभावी ढंग से प्रकाशित करने में सहायक होता है। शोध क्षेत्र में आलोचना और अस्वीकृति सामान्य हैं, लेकिन आत्मविश्वास से व्यक्ति इनसे सीखकर अपने कार्य को और बेहतर बना सकता है।

आत्मविश्वास बढ़ाने के तरीके :–

- **ज्ञान और तैयारी में वृद्धि** – बेहतर तैयारी आत्मविश्वास को बढ़ाती है।
- **लक्ष्यों की योजना और प्रबंधन** – छोटे–छोटे लक्ष्यों को पूरा करके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।
- **स्व–मूल्यांकन और आत्म–चिंतन** – अपनी क्षमताओं का सही आकलन करना आत्मविश्वास को बनाए रखने में मदद करता है।
- **सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना** – असफलताओं को सीखने के अवसर के रूप में देखना चाहिए।

आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा :–

शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आत्मविश्वास से युक्त व्यक्ति न केवल अपनी क्षमताओं में विश्वास रखता है, बल्कि चुनौतियों का सामना करने और नई चीजें सीखने के लिए भी प्रेरित रहता है। आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा आपस में गहरे जुड़े हुए हैं। आत्मविश्वासी विद्यार्थी अधिक आत्म–निर्भर होते हैं, वे समस्याओं को हल करने में रुचि लेते हैं और लगातार अपने ज्ञान को

विकसित करने की कोशिश करते हैं। यह लेख आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा के बीच के संबंधों की व्याख्या करेगा और यह बताएगा कि ये दोनों शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में कैसे सहायक होते हैं।

आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा के बीच संबंध :-

सीखने की प्रेरणा और आत्मविश्वास का आपसी संबंध शिक्षा की गुणवत्ता और शोध कार्य की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है। जब कोई विद्यार्थी या शोधकर्ता अपने कौशल और ज्ञान में विश्वास रखता है, तो वह सीखने की प्रक्रिया में अधिक रुचि लेता है और जटिल समस्याओं का समाधान खोजने के लिए प्रेरित होता है।

आत्मविश्वास सीखने की प्रेरणा को प्रभावित करना :-

- **सीखने की इच्छा को प्रोत्साहित करता है** – जब विद्यार्थी अपनी क्षमताओं में विश्वास रखते हैं, तो वे नई चीजों को सीखने और समझने के लिए अधिक इच्छुक होते हैं।
- **असफलताओं से डर कम करता है** – आत्मविश्वासी छात्र विफलताओं को एक सीखने के अवसर के रूप में देखते हैं, जिससे उनकी सीखने की प्रेरणा बनी रहती है।
- **स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सहायता करता है** – आत्मविश्वास से भरपूर व्यक्ति स्व–निर्देशित सीखने की प्रवृत्ति अपनाते हैं, जिससे वे स्वयं अध्ययन करने और ज्ञान को गहराई से समझने के लिए प्रेरित होते हैं।
- **उच्च प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता है** – आत्मविश्वासी विद्यार्थी बेहतर प्रदर्शन करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं और अपने कौशल को विकसित करने में रुचि लेते हैं।

आत्मविश्वास और अनुसंधान में प्रेरणा :-

शोध कार्य में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण कारक होता है। अनुसंधान में कई चुनौतियाँ और अनिश्चितताएँ होती हैं, जिनका सामना करने के लिए आत्मविश्वास आवश्यक है। आत्मविश्वासी शोधकर्ता नए विचारों को प्रस्तुत करने और प्रयोग करने में संकोच नहीं करते हैं, जिससे नवाचार को बढ़ावा मिलता है। आत्मविश्वास शोधकर्ताओं को अपने शोध की दिशा तय करने और नई पद्धतियों को अपनाने के लिए प्रेरित करता है। शोध में आलोचनात्मक मूल्यांकन आम बात है। आत्मविश्वास से भरपूर व्यक्ति इसे व्यक्तिगत आलोचना के रूप में लेने की बजाय सुधार का अवसर मानते हैं। आत्मविश्वासी शोधकर्ता अपने निष्कर्षों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं, जिससे उनके शोध पत्र और अनुसंधान अधिक प्रभावशाली बनते हैं।

आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा को बढ़ाने के उपाय :-

- **सकारात्मक मानसिकता विकसित करें** – विद्यार्थियों को यह समझना चाहिए कि असफलता भी सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है।
- **स्वतंत्र रूप से सोचने की आदत डालें** – छात्रों को आत्म–निर्णय लेने और स्व–अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
- **लक्ष्य निर्धारण करें** – छोटे–छोटे लक्ष्य निर्धारित कर उन्हें प्राप्त करने से आत्मविश्वास बढ़ता है।
- **स्व-मूल्यांकन करें** – अपने सीखने की प्रक्रिया को समय–समय पर परखना आत्मविश्वास और प्रेरणा को मजबूत करता है।
- **सकारात्मक वातावरण बनाएं** – एक सहयोगी और प्रेरणादायक शैक्षणिक वातावरण आत्मविश्वास और

प्रेरणा को बढ़ावा देता है।

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा एक–दूसरे के पूरक हैं। आत्मविश्वास से युक्त विद्यार्थी और शोधकर्ता न केवल बेहतर प्रदर्शन करते हैं, बल्कि वे अपने ज्ञान और कौशल को निरंतर विकसित करने के लिए भी प्रेरित रहते हैं। इसलिए, शिक्षा प्रणाली में आत्मविश्वास बढ़ाने और प्रेरणादायक वातावरण तैयार करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, ताकि विद्यार्थी और शोधकर्ता अपने पूरे सामर्थ्य का उपयोग कर सकें और उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें।

आत्मविश्वास और अनुसंधान कौशल :–

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो छात्रों और शोधकर्ताओं को उनकी क्षमताओं पर भरोसा करने और अपने ज्ञान का विस्तार करने के लिए प्रेरित करता है। विशेष रूप से, अनुसंधान कार्य में आत्मविश्वास अनुसंधान कौशल को विकसित करने और नवाचार को प्रोत्साहित करने में सहायक होता है। यह लेख आत्मविश्वास और अनुसंधान कौशल के बीच के संबंध को स्पष्ट करेगा और यह बताएगा कि कैसे आत्मविश्वास एक कुशल शोधकर्ता बनने में मदद करता है। अनुसंधान कौशल, जैसे कि डेटा संग्रह, विश्लेषण, आलोचनात्मक चिंतन और समस्या–समाधान, किसी भी शोधकर्ता के लिए आवश्यक होते हैं। आत्मविश्वास इन कौशलों को प्रभावी ढंग से विकसित करने और लागू करने में सहायक होता है। जब कोई शोधकर्ता आत्मविश्वासी होता है, तो वह नए प्रयोगों को करने, जटिल मुद्दों को हल करने और अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत करने में अधिक सक्षम होता है।

आत्मविश्वास अनुसंधान कौशल को प्रभावित करना :–

आलोचनात्मक चिंतन और समस्या समाधान – आत्मविश्वास शोधकर्ताओं को समस्याओं का गहराई से विश्लेषण करने और तार्किक रूप से हल खोजने में मदद करता है। जटिल प्रश्नों को हल करने और नवीन समाधानों पर विचार करने के लिए आत्मविश्वास आवश्यक होता है। जब शोधकर्ता आत्मविश्वास से भरे होते हैं, तो वे अपने निष्कर्षों पर दृढ़ रहते हैं और उन्हें मजबूत साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं।

डेटा संग्रह और विश्लेषण कौशल – शोध में डेटा का सही ढंग से संग्रह और विश्लेषण आवश्यक होता है। आत्मविश्वासी शोधकर्ता सटीक डेटा संग्रह तकनीकों का उपयोग करते हैं और सांख्यिकीय विश्लेषण को आत्मविश्वासपूर्वक लागू करते हैं। डेटा की व्याख्या में आत्मविश्वास रखने से शोधकर्ता अपने निष्कर्षों की विश्वसनीयता बढ़ा सकते हैं।

अनुसंधान लेखन और प्रकाशन कौशल – शोध कार्य को प्रकाशित करना एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया हो सकती है, लेकिन आत्मविश्वास शोधकर्ताओं को अपने निष्कर्षों को प्रभावी ढंग से लिखने और प्रस्तुत करने में मदद करता है। आत्मविश्वास से युक्त शोधकर्ता अपनी भाषा को स्पष्ट और प्रभावशाली बनाते हैं, जिससे उनके शोध पत्र उच्च गुणवत्ता के होते हैं। आत्मविश्वासपूर्ण शोधकर्ता शोध पत्रों की समीक्षा प्रक्रिया में आने वाली आलोचना को सकारात्मक रूप से स्वीकार करते हैं और आवश्यक संशोधन करने के लिए तैयार रहते हैं।

साक्षात्कार और प्रस्तुतिकरण कौशल – किसी भी शोधकर्ता के लिए अपने विचारों और निष्कर्षों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण होता है। आत्मविश्वासी शोधकर्ता अपने विचारों को स्पष्टता और आत्मनिर्भरता के साथ प्रस्तुत कर सकते हैं। कॉन्फ्रेंस, सेमिनार और वर्कशॉप में आत्मविश्वासपूर्ण प्रस्तुतिकरण

शोधकर्ता की विशेषज्ञता को उजागर करता है।

नवाचार और रचनात्मकता – अनुसंधान कार्य में नवाचार और रचनात्मकता की आवश्यकता होती है, जो आत्मविश्वास के बिना संभव नहीं है। आत्मविश्वासी शोधकर्ता पारंपरिक सीमाओं से परे जाकर नए दृष्टिकोण अपनाते हैं और नई तकनीकों को विकसित करने में सक्षम होते हैं। आत्मविश्वास शोधकर्ताओं को असफलता से डरने के बजाय, उसे एक सीखने के अवसर के रूप में देखने के लिए प्रेरित करता है।

अनुसंधान में आत्मविश्वास को बढ़ाने के उपाय :–

- **ज्ञान और तैयारी में वृद्धि** – अनुसंधान के विभिन्न पहलुओं पर गहन अध्ययन और उचित तैयारी आत्मविश्वास को बढ़ा सकती है।
- **व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करें** – अनुसंधान प्रयोगशालाओं और परियोजनाओं में सक्रिय भागीदारी आत्मविश्वास और अनुसंधान कौशल दोनों को बढ़ाती है।
- **मेंटरशिप और मार्गदर्शन लें** – अनुभवी शोधकर्ताओं और शिक्षकों का मार्गदर्शन अनुसंधान कार्य को प्रभावी बनाने में सहायक होता है।
- **सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएं** – अनुसंधान में आने वाली असफलताओं को सीखने के अवसर के रूप में देखना चाहिए।
- **प्रस्तुतीकरण कौशल विकसित करें** – शोध निष्कर्षों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने की कला आत्मविश्वास को मजबूत करती है।

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आत्मविश्वासपूर्ण शोधकर्ता आलोचनात्मक चिंतन, समस्या समाधान, डेटा विश्लेषण, लेखन, और प्रस्तुतिकरण कौशल को प्रभावी रूप से विकसित कर सकते हैं। आत्मविश्वास अनुसंधान की गुणवत्ता और नवाचार को भी प्रोत्साहित करता है। इसलिए, छात्रों और शोधकर्ताओं को आत्मविश्वास विकसित करने पर ध्यान देना चाहिए ताकि वे अपने अनुसंधान कार्य में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें और अकादमिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकें।

आत्मविश्वास और समस्या–समाधान :–

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान के क्षेत्र में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आत्मविश्वास से युक्त व्यक्ति कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होता है और समाधान खोजने के लिए अपनी क्षमताओं पर भरोसा करता है। विशेष रूप से, समस्या–समाधान कौशल के विकास में आत्मविश्वास का गहरा प्रभाव होता है। जब छात्र या शोधकर्ता आत्मविश्वास से भरे होते हैं, तो वे जटिल समस्याओं का विश्लेषण करने, तार्किक निष्कर्ष निकालने और नए दृष्टिकोण अपनाने में अधिक सक्षम होते हैं। यह लेख आत्मविश्वास और समस्या–समाधान कौशल के बीच संबंधों की व्याख्या करेगा और यह बताएगा कि कैसे आत्मविश्वास अनुसंधान और शैक्षणिक सफलता में सहायक होता है।

आत्मविश्वास और समस्या – समाधान के बीच संबंध – समस्या–समाधान एक विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति किसी समस्या की पहचान करता है, उसके संभावित समाधान ढूंढता है और फिर सबसे उपयुक्त समाधान को लागू करता है। आत्मविश्वास इस प्रक्रिया को प्रभावी रूप से पूरा करने में सहायक होता है।

- **आत्मविश्वास जटिल समस्याओं से डर को कम करता है** – जब व्यक्ति आत्मविश्वासी होता है, तो वह

जटिल और कठिन समस्याओं का सामना करने से नहीं घबराता।

- **निर्णय लेने की क्षमता में सुधार करता है** – आत्मविश्वासपूर्ण व्यक्ति त्वरित और सही निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।
- **नवाचार और रचनात्मकता को बढ़ावा देता है** – आत्मविश्वास से व्यक्ति नए दृष्टिकोण अपनाने और रचनात्मक समाधान खोजने में सक्षम होता है।
- **धैर्य और दृढ़ता को बढ़ाता है** – आत्मविश्वासी व्यक्ति समस्याओं को हल करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं और जल्दी हार नहीं मानते।
- **आलोचनात्मक और तार्किक सोच को विकसित करता है** – आत्मविश्वासी व्यक्ति समस्याओं का गहराई से विश्लेषण करते हैं और उनके समाधान के लिए तार्किक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

शैक्षणिक उपलब्धि में आत्मविश्वास और समस्या-समाधान – शिक्षा के क्षेत्र में, छात्र अक्सर विभिन्न शैक्षणिक चुनौतियों का सामना करते हैं, जैसे कि कठिन विषयों को समझना, परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करना और व्यावहारिक समस्याओं को हल करना। आत्मविश्वास इन सभी चुनौतियों का सामना करने में सहायक होता है।

- **गणित और विज्ञान जैसे विषयों में सफलता** – आत्मविश्वासपूर्ण छात्र कठिन गणितीय समीकरणों और वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझने में अधिक सक्षम होते हैं।
- **सृजनात्मक लेखन और भाषा कौशल** – भाषा और लेखन कौशल में आत्मविश्वास छात्र को अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में सक्षम बनाता है।
- **परीक्षा और प्रस्तुतीकरण में सुधार** – आत्मविश्वास से छात्र परीक्षाओं में अधिक आत्मनिर्भरता से उत्तर देते हैं और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं।
- **समूह चर्चा और परियोजना कार्य में प्रभावशीलता** – आत्मविश्वासी छात्र समूह में नेतृत्व की भूमिका निभाते हैं और सामूहिक कार्यों में योगदान देते हैं।

अनुसंधान में आत्मविश्वास और समस्या-समाधान – अनुसंधान कार्य में समस्या–समाधान एक अनिवार्य कौशल है। शोधकर्ता अक्सर नई चुनौतियों, जटिल प्रश्नों और अस्थिर परिस्थितियों का सामना करते हैं। आत्मविश्वास अनुसंधान प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक होता है।

- **समस्या की पहचान और परिभाषा** – आत्मविश्वासी शोधकर्ता समस्याओं की गहराई से पहचान कर उनकी स्पष्ट परिभाषा तैयार कर सकते हैं।
- **डेटा संग्रह और विश्लेषण** – आत्मविश्वास से शोधकर्ता सटीक डेटा संग्रह तकनीकों का उपयोग करते हैं और जटिल सांख्यिकीय विश्लेषण को आत्मविश्वासपूर्वक लागू कर सकते हैं।
- **अनुसंधान पद्धतियों में सुधार** – आत्मविश्वासी शोधकर्ता प्रयोगों और अनुसंधान पद्धतियों में नवीन तरीकों का समावेश करने में सक्षम होते हैं।
- **आलोचनात्मक प्रतिक्रिया को स्वीकार करना** – शोध कार्य में आलोचना और अस्वीकृति सामान्य हैं, लेकिन आत्मविश्वास से भरपूर शोधकर्ता इसे सुधार के अवसर के रूप में देखते हैं।
- **प्रस्तुतीकरण और प्रकाशन में दक्षता** – आत्मविश्वासी शोधकर्ता अपने शोध निष्कर्षों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने और प्रकाशित करने में सक्षम होते हैं।

आत्मविश्वास और समस्या-समाधान कौशल को बढ़ाने के उपाय :-

- **सकारात्मक मानसिकता विकसित करें** - आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।
- **स्व-अध्ययन और अनुसंधान में रूचि लें** - आत्म-निर्देशित सीखने की प्रवृत्ति आत्मविश्वास को मजबूत करती है।
- **लक्ष्य निर्धारित करें और उन पर कार्य करें** - छोटे-छोटे लक्ष्य निर्धारित करने और उन्हें प्राप्त करने से आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।
- **नवाचार और प्रयोगों को अपनाएं** - अनुसंधान में रचनात्मकता और नवीन विचारों को प्रोत्साहित करें।
- **समूह कार्य और चर्चाओं में भाग लें** - संवाद और सहयोग से आत्मविश्वास बढ़ता है और समस्या-समाधान कौशल मजबूत होते हैं।

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास और समस्या-समाधान का गहरा संबंध है। आत्मविश्वासी व्यक्ति समस्याओं का गहराई से विश्लेषण कर तार्किक निष्कर्ष निकालने में अधिक सक्षम होते हैं। आत्मविश्वास न केवल छात्रों को शैक्षणिक सफलता प्राप्त करने में सहायता करता है, बल्कि शोधकर्ताओं को भी जटिल अनुसंधान समस्याओं को हल करने और अपने निष्कर्षों को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने में मदद करता है। इसलिए, आत्मविश्वास को विकसित करना और समस्या-समाधान कौशल को मजबूत करना शैक्षिक और अनुसंधान सफलता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

आत्मविश्वास और सफलता :-

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान के क्षेत्र में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण कारक है, जो व्यक्ति को सफलता की ओर ले जाता है। आत्मविश्वास से भरपूर व्यक्ति अपनी क्षमताओं पर भरोसा करता है, चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होता है और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहता है। शिक्षा और अनुसंधान में सफलता प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास आवश्यक है क्योंकि यह न केवल जटिल विषयों को समझने में सहायता करता है, बल्कि रचनात्मक और नवोन्मेषी सोच को भी प्रोत्साहित करता है। यह लेख आत्मविश्वास और सफलता के बीच के संबंध को समझाएगा और यह बताएगा कि आत्मविश्वास कैसे शैक्षणिक और अनुसंधान क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में सहायक होता है।

आत्मविश्वास और सफलता के बीच संबंध - आत्मविश्वास सफलता का एक महत्वपूर्ण घटक है। आत्मविश्वासी व्यक्ति कठिनाइयों से घबराते नहीं हैं, बल्कि उन्हें एक अवसर के रूप में देखते हैं और अपने लक्ष्य की ओर निरंतर अग्रसर रहते हैं। शैक्षणिक और अनुसंधान क्षेत्रों में, आत्मविश्वास निम्नलिखित तरीकों से सफलता प्राप्त करने में सहायक होता है :-

- **शैक्षणिक प्रदर्शन में सुधार** - आत्मविश्वास से भरपूर छात्र परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करते हैं, क्योंकि वे अपनी क्षमताओं पर भरोसा करते हैं और विषयों को गहराई से समझने का प्रयास करते हैं।
- **समस्या-समाधान कौशल में वृद्धि** - आत्मविश्वासी व्यक्ति जटिल समस्याओं को हल करने के लिए तार्किक और रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं।
- **निरंतरता और धैर्य** - आत्मविश्वासी व्यक्ति असफलता से निराश नहीं होते, बल्कि उससे सीखकर अपने

प्रयासों को और मजबूत करते हैं।

- **निर्णय लेने की क्षमता में सुधार** – आत्मविश्वास व्यक्ति को बेहतर निर्णय लेने में सक्षम बनाता है, जिससे वे अपनी शिक्षा और अनुसंधान में प्रभावी निर्णय ले सकते हैं।
- **नवाचार और रचनात्मकता को बढ़ावा** – आत्मविश्वासपूर्ण व्यक्ति नई विचारधाराओं को अपनाने और अनुसंधान में नवीन तकनीकों का प्रयोग करने में सक्षम होते हैं।
- **शैक्षणिक उपलब्धि में आत्मविश्वास की भूमिका** – शैक्षणिक सफलता के लिए आत्मविश्वास महत्वपूर्ण है क्योंकि यह छात्रों को उनके अध्ययन में बेहतर प्रदर्शन करने व नई अवधारणाओं को आत्मसात करने में मदद करता है।
- **सीखने की प्रेरणा को प्रोत्साहन** – आत्मविश्वास से युक्त छात्र पढ़ाई के प्रति रुचि रखते हैं और अधिक सीखने के लिए प्रेरित होते हैं।
- **परीक्षा में प्रदर्शन सुधारता है** – आत्मविश्वासी छात्र परीक्षा में घबराहट महसूस नहीं करते और अपने ज्ञान को प्रभावी रूप से व्यक्त कर पाते हैं।
- **समूह चर्चाओं और प्रस्तुतिकरण में प्रभावशीलता** – आत्मविश्वास से छात्र अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं और समूह गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं।
- **सकारात्मक मानसिकता विकसित होती है** – आत्मविश्वासी छात्र असफलताओं को सीखने के अवसर के रूप में देखते हैं और उन्हें सुधारने का प्रयास करते हैं।

अनुसंधान में आत्मविश्वास की भूमिका :–

अनुसंधान कार्य में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह जटिल समस्याओं का समाधान निकालने, नई खोज करने और वैज्ञानिक सोच विकसित करने में सहायता करता है। आत्मविश्वासी शोधकर्ता स्वतंत्र रूप से शोध करने और नई पद्धतियों को अपनाने में सक्षम होते हैं। आत्मविश्वासी शोधकर्ता अपने निष्कर्षों की गहराई से समीक्षा कर सकते हैं और अपने शोध को और बेहतर बना सकते हैं। आत्मविश्वास से शोधकर्ता सटीक डेटा संग्रह और विश्लेषण कर सकते हैं, जिससे उनके निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय होते हैं।

आत्मविश्वास और सफलता को बढ़ाने के उपाय :–

आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए सकारात्मक मानसिकता अपनाना आवश्यक है। अच्छी तैयारी आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद करती है, चाहे वह परीक्षा हो या अनुसंधान। आत्मविश्वास विकसित करने के लिए नई चीजें सीखना और अपने कौशल में सुधार करना आवश्यक है। छोटे–छोटे लक्ष्य निर्धारित कर उन्हें प्राप्त करने से आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। प्रतिस्पर्धा को सकारात्मक रूप में लेकर अपने प्रदर्शन को बेहतर बनाने का प्रयास करें। महान् वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों और सफल व्यक्तियों की जीवन यात्रा से प्रेरणा लें। अपने कार्यों और प्रदर्शन का विश्लेषण करें और सुधार के लिए कार्य करें।

निष्कर्ष :–

शैक्षणिक उपलब्धि और अनुसंधान में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करता है। यह न केवल छात्रों और शोधकर्ताओं को उनके शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक प्रयासों में सक्षम बनाता है, बल्कि उनके समग्र प्रदर्शन और मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करता है। आत्मविश्वास के उच्च स्तर से विद्यार्थी जटिल विषयों

को समझने, समस्याओं के समाधान खोजने और नवाचार करने में अधिक सफल होते हैं। इसके विपरीत, आत्म–संदेह और असुरक्षा की भावना व्यक्ति की रचनात्मकता और निर्णय लेने की क्षमता को बाधित कर सकती है, जिससे उनकी अकादमिक और अनुसंधान संबंधी उपलब्धियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः आत्मविश्वास को विकसित करने के लिए शिक्षकों, अभिभावकों और संस्थानों को सहयोगी वातावरण, प्रेरक शिक्षण विधियाँ और व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने की आवश्यकता है।

References :

1. बंडुरा, ए. (1997). सेल्फ–इफिकेसी : द एक्सरसाइज़ ऑफ कंट्रोल. डब्ल्यू.एच. फ्रीमैन एंड कंपनी।
2. ज़िम्मरमैन, बी. जे. (2000). आत्म–प्रभावकारिता : सीखने के लिए एक आवश्यक प्रेरक। समकालीन शैक्षिक मनोविज्ञान, 25(1), 82–91।
3. पजारस, एफ. (2002). सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत का अवलोकन। शैक्षिक मनोविज्ञान की वार्षिक समीक्षा, 52, 1–26।
4. मिश्रा, एस. (2015). शिक्षा और आत्मविश्वास : एक परस्पर संबंध। भारतीय शैक्षिक शोध पत्रिका, 10(2), 45–58।
5. वर्मा, आर. (2018). अनुसंधान में आत्म–प्रभावकारिता का महत्व। शोध एवं नवाचार पत्रिका, 6(3), 112–119।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 193-195

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्रेष्ठ बोध कथा से श्रेष्ठ बोध

डॉ. शिंदे मालती धौंडोपन्त

नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, अखाड़ा बालापुर तालुका कलमनुरी, जिला हिंगोली, महाराष्ट्र (431701)

बोध कथाएँ जीवन में अधिक से अधिक प्रेरणा देने का काम करती है। बोध कथा का अर्थ ही है बोध कराना, सिख देना। बोध कथा से सकारात्मकता बढ़ती जाती हैं। अक्सर बोध कथाएँ सकारात्मक होती है। और लघु होती है। बोधकथाओं से अच्छे संस्कार प्राप्त होते हैं। उससें अच्छा इन्सान निर्माण होता सकता है। जीवन संस्कार क्षम हो सकता है।

पाणिनी यह संस्कृत के महान् व्याकरणकार थे। 2000 साल पूर्व उन्होंने एक आश्चर्यजनक कार्य किया। एक बार वह अपने शिष्यों को व्युत्पत्ति यह विषय पढ़ा रहे थे उस समय वहां एक शेर मनुष्य की गंध से वहां आ रहा था। शिष्य घबराकर पेड़ पर जाकर बैठ गए और आचार्य को भी पेड़ पर चढ़ने के लिए कहा लेकिन व्याघ्र शब्द की व्युत्पत्ति खोजने में वह इतने गढ़े हुए थे, उन्हें व्युत्पत्ति सूझी भी– 'व्याजी घ्रति इति व्यग्र रूय।' – इसका अर्थ गंध लेकर चलता वह शेर लेकिन हुआ यह कि शेर ने उनकी ही शिकार की। इस कथा का बोध (तात्पर्य) यह है कि केवल बुद्धि होकर भी नहीं चलता तो उसे तो व्यवहार की भी जोड़ या साथ लगती है। वरना इस प्रकार से अनर्थ भी हो सकता है।

सफलता की ओर :-

कहानी में एक गांव में एक संत रहते थे। वे अपनी साधना में व्यस्त थे। सारे गांव वालों के लिए वह प्रेरणा का स्रोत थे। एक युवक ने सफलता प्राप्त करने के लिए मार्गदर्शन लेना चाहा। संत ने मुस्कुराते हुए उसे समझाया कि एक किसान जमीन में बीज बो रहा था। वह बहुत मेहनत से कम करता था। लेकिन बीजों को अंकुरित होने में देर हो रही थी। वह परेशान हो गया और सोचने लगा "क्या मैन सही बीज बोए? क्या इस जमीन में पर्याप्त पोषक तत्व है?

युवक को पूछा – "किसान को क्या करना चाहिए था?

युवक ने कहा – किसान को अधिक से अधिक मेहनत करनी चाहिए थी या फिर बीज बदलने चाहिए थे।

संत ने हँसते हुए कहा, नही उस किसान को धैर्य रखना चाहिए था। वैसे ही तुम्झे भी सफलता को पाने के लिये धैर्य की आवश्यकता होगी संघर्ष और प्रयास तो करना ही होगा। इसलिए धैर्य और समय का सम्मान करना चाहिए।

सच्ची मित्रता :-

एक गांव में दो अच्छे दोस्त रहते थे एक अर्जुन और दूसरा वीरू एक बार गांव में तूफान आता है और

गांव तीतर बितर हो जाता है। वीरू सोचता है पहले अपने घर ठीक करेंगे और फिर गांव के, लेकिन अर्जुन कहता है पहले गांव के करेंगे, दोनों मित्र मिलकर गांववालों के घरों को पहले साफ करते है और फिर बाद में अपने घर को, सच्ची मित्रता वही होती है जो लोगों की बिना स्वार्थ मदत करते हैं। दोस्ती में सहयोग की जरूरत होती है।

सीखने की ताकत :–

कहानी में होने वाला शिव जिद्दी युवक था। उसे ऐसे लगता कि वह हर बात जानता है कि सलाह की उसे जरूरत नहीं है। एक दिन गांव में एक संत बाबा आते है वह गांववालों को बुलाकर कहते हैं –"जो व्यक्ति हमेशा सीखने के लिए तैयार रहता है वह सच्चा ज्ञानी है।" शिव ने यह सुना और सोचा, मुझे तो सब कुछ आता है।" तभी बाबा शिव को बुलाकर कहा, 'अगर तुम समझते हो कि तुम बहुत जानते हो तो आओ और मेरी एक परीक्षा दो। शिव ने तुरंत है कह दिया। बाबा ने उसे एक घड़ा पानी भरकर कहा, 'तुम्हें यह पानी किसी एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना गिराए ले जाना है।" शिव ने घड़ा उठाया लेकिन जैसे ही वह रास्ते पर बढ़ा पानी गिरने लगा। कई बार कोशिश की लेकिन वह पानी बचा नहीं पाया। हर व्यक्ति को जीवन में हमेशा सीखने की मानसिकता रखनी चाहिए। क्योंकि कोई ज्ञान कभी खत्म नही होता है और मनुष्य आजीवन अधूरा ही होता है।

कर्म का फल :–

एक छोटा लड़का साधु के पास जाकर पूछता है– "बाबा मैं हमेशा मेहनत करता हूँ लेकिन मुझे कभी सफलता नहीं मिलती, मैं क्या करूँ? साधु बाबा ने उसे हँसते हुए एक बीज दिया और उसे बगीचे में लगाकर रोज देखभाल करने के लिए कहा। लड़के ने साधु के कहने के अनुसार बीज बोया, पानी दिया कुछ हफ्तों तक कुछ नहीं हुआ। वह निराश हो गया और बीज को निकालने की सोची तब उसने ध्यान किया कि बीज के आसपास हल्की सी कोपलें दिखने लगी थी। कुछ समय बाद वह बीज एक विशाल पेड़ में बदल गया लड़का संतुष्ट हुआ वह साधु के पास गया तो साधु ने कहा– "मेहनत कभी व्यर्थ नहीं जाती, उसका फल समय आने पर मिलता है।" उसके लिए कर्म करना और धैर्य रखना जरूरी होता है।

अपनी क्षमता पहचानो :–

कहानी में एक उल्लू अन्य जीवों को देख रहा था। और उसे लग रहा था कि यह सभी जीव बहुत खुशहाल है अपनी क्षमता के अनुसार कुछ न कुछ कर रहे हैं। तभी एक तोते ने उसे कहा तुम हमेशा अकेले क्यों रहते हो, तुम भी हमारे जैसे कर्म क्यों नहीं करते? तो उल्लू ने कहा –मैं रात में देख सकता हूँ जो तुम लोग नही कर सकते? तोते ने कहा लेकिन हम दिन में अच्छा देख सकते हैं और ज्यादा काम कर सकते हैं। उल्लू ने कहा हमारी अपनी अपनी अलग अलग ताकत होती है। अपनी क्षमता पहचानकर हमें उसका उपयोग करना चाहिए। हर व्यक्ति की भी अलग क्षमता होती है और उसे पहचानकर वह अपनी सफलता प्राप्त कर सकता है।

यात्री और सांप :–

एक यात्री एक घायल सांप को रास्ते से उठाकर उसे सुरक्षित स्थान पर रखता है। जब सांप ठीक हो जाता है तो वह यात्री को डसता है। जीवन में भी ऐसा ही होता है हम किसी की मदत करने के बावजूद भी कई व्यक्ति फिर से उलटा हमारे विरोधी होते हैं। इसलिए हमें निरंतर सतर्क रहते हुए समाज के लोगों को

समझकर उनकी मदत करना जरूरी है।

दूसरी बार विचार करना :–

हर व्यक्ति को जीवन में सफलता चाहिए तो उसे हर बात का सोच समझ कर निर्णय लेना चाहिए। किसी भी बात की पूरी जानकारी के बिना कोई कदम नहीं उठाना चाहिए।

दो मुँह वाली कुतिया :–

कुतिया के उदाहरण से बताया गया है कि एक साथ कई इच्छाओं को पूरा करने का पीछा करने से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। मनुष्य को किसी एक लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित करना अधिक प्रभावी होता है और उससे फायदा भी होता है।

नकली शेर और असली शेर :–

एक बार नकली शेर जंगल में आकर जंगल के जानवरों को डरकर स्वयं को जंगल का राजा बनने का सपना पूरा करने लगा। तभी असली शेर ने उसे चुनौती दी और कहा– "तुम भले ही शकल से शेर लगते हो लेकिन असली शेर की ताकत और साहस तुम्हारे अंदर नही है"। नकली शेर ने असली शेर से लड़ने की कोशिश की, लेकिन असली शेर ने उसे हरा दिया। इसलिए हर एक को यह समझ मे आना चाहिए कि दिखावा कभी भी असली ताकत और साहस से बड़ा नही होता। असली शक्ति आत्मविश्वास और साहस में होती है।

इन सभी बोध कथाओं के द्वारा समाज के लोगों को श्रेष्ठ बोध मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. श्रेष्ठ बोध कथाएं– डॉ. नरेश सिहाग, एस. एस. पब्लिकेशन दिल्ली –सफलता की ओर – पृ. 12
2. वही– सच्ची मित्रता – पृ. 16
3. वही– सीखने की ताकत – पृ. 26
4. वही– कर्म का फल – पृ. 31
5. वही–अपनी क्षमता पहचानों – पृ. 38
6. वही– यात्री और सांप – पृ. 39
7. वही– दूसरी बार विचार करना – पृ. 71
8. वही– दो मुँह वाली कुतिया – पृ. 74
9. वही– नकली शेर और असली शेर – पृ. 75

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 196-202

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

काव्य में यथार्थ और संवेदना : डॉ नरेश सिहाग की काव्य दृष्टि

पूजा

पुत्री श्री दलेल सिंह, गांव सौंधी, बादली, जिला झज्जर, हरियाणा।

साहित्य को पढ़कर हम विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों का आभास करते हैं। साहित्य समाज का दर्पण की भांति होता है और कविता उस दर्पण की सबसे संवेदनशील अभिव्यक्ति है। कविता में यथार्थ और संवेदना का मेल उसे समाज से जोड़ता है और एक प्रभावशाली संदेश वाहक बनाता है। इस शोध आलेख में हम डॉक्टर नरेश सिहाग की काव्य दृष्टि से परिचित होने की कोशिश करेंगे। डॉ. नरेश सिहाग समकालीन हिंदी काव्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक हैं, जिनकी कविताएँ सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत जीवन के यथार्थ को उकेरने के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं की गहरी छाप छोड़ती हैं। उनकी काव्य दृष्टि में यथार्थवादी दृष्टिकोण और गहरी संवेदनशीलता का अनूठा संगम देखने को मिलता है।[1] यह शोध आलेख डॉ. नरेश सिहाग की कविताओं में निहित यथार्थ और संवेदना के तत्वों का विश्लेषण करेगा तथा उनकी काव्य दृष्टि को व्यापक रूप से समझने का प्रयास करेगा।

डॉ. नरेश सिहाग ने अपने काव्य सृजन के माध्यम से समाज की विविध समस्याओं, मानवीय संवेदनाओं, प्रेम, करुणा, संघर्ष और जीवन के मूलभूत प्रश्नों को गहराई से प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में समकालीन यथार्थ का प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वे न केवल समाज के अंधकारपूर्ण पक्षों को उजागर करते हैं, बल्कि उनकी कविताएँ आशा, बदलाव और नवचेतना का भी संचार करती हैं। इनकी लेखनी केवल पुरानी परंपराओं पर ही नहीं किंतु आज के नए युवा समाज पर भी टिप्पणी प्रस्तुत करती है। उनके काव्य संग्रह ख्वाहिशें से आज का युवा कविता को अगर देखा जाए तो वह सब में एक नया जोश उत्पन्न करती है, जिसकी पंक्तियां इस प्रकार हैं :–

'युवा जोश से भरपूर आगे बढ़ने का जुनून,
सपनों की उड़ान उसकी बजे भविष्य की दिशा उनकी
संकटों का सामना करें मजबूती के साथ में
खुद को साबित करें युवा हमारा मन से सम्मान से
शिक्षा का दीपक जलाएं ज्ञान का मार्ग दिखाएं
समाज को जागरूक करें युवा अपने कर्तव्य को निभाएं

सपनों की ऊंचाइयों को छू ले हर मुश्किल पर करें
बोहल युवा नव भारत का नवनिर्माण करें
युवा जोश कविता।''[1]

जहां उनकी कविता युवाओं में एक नया जोश भरती है वहां उनके अंदर एक नई क्रांति को भी उत्पन्न करती है। डॉक्टर नरेश सिहाग अपने काव्य में क्रांति का नया संदेश अद्वितीय शैली और प्रखर संवेदनाओं के माध्यम से देते हैं। उनकी कविता सामाजिक विषमताओं, शोषण और अन्याय के विरुद्ध चेतना जागृत करती है। वे परंपरागत क्रांति से आगे बढ़कर वैचारिक और संवेदनात्मक क्रांति की वकालत करते हैं, जहाँ बदलाव केवल बाहरी नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी आवश्यक है। उनके काव्य में विद्रोह की ज्वाला प्रखर होती है, लेकिन वह विनाशकारी नहीं, बल्कि नव–सृजनात्मक होती है। वे शब्दों के माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन का आह्वान करते हैं, जिससे शोषितों को न्याय और जीवन को नया आयाम मिले। उनके काव्य की कुछ पंक्तियां इसको भली–भांति दर्शाती हैं जो कि इस प्रकार है :–

''घर का यूं खिलखिला सा होना,
उसका हंसने का अद्भुत नजारा।
तुम्हारे ह्रदय का कुसुम सा होना,
लगता है जैसे आने जीवन संवारा।
यही तो ह्रदय होता शांति का,
सुकून का खल होता भ्रांति का।
अस्त व्यस्त कुछ भी नहीं होता,
देता घर, कुछ संदेश नई क्रांति का।
संदेश नई क्रांति का कविता।''[2]

यदि इन पंक्तियों को गहनता के साथ पढ़ा जाए तो यह हमारे अंदर एक नयापन पैदा करती हैं। हम सभी को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित व प्रेरणा प्रदान करती है। सिहाग जी इन पंक्तियों के माध्यम से आज के युवा को शिक्षा का महत्व समझाने की कोशिश करते हैं और समाज में जागरूकता का प्रसार करते हैं।

यथार्थवाद साहित्य का वह रूप है, जो जीवन की सच्चाइयों को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत करता है। डॉ. नरेश सिहाग की कविताओं में यथार्थवाद के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। डॉ. सिहाग की कविताओं में सामाजिक असमानता, गरीबी, शोषण, जाति–व्यवस्था, और पितृसत्तात्मकता की गहरी झलक देखने को मिलती है। वे समाज की कठोर सच्चाइयों को उजागर करने के लिए सीधे–सरल लेकिन प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनकी कविताएँ समाज के उन तबकों की आवाज बनती हैं, जिन्हें अक्सर अनसुना कर दिया जाता है। यथार्थवाद को पेश करती उनके काव्य की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :–

'गरीबी लड़ती रही ठंडी हवाओं से,
अमीरों ने कहा, क्या मौसम आया है!"
चिथड़ों में लिपटा, वो काँपता रहा,
हर साँस में जीवन बचाता रहा।

चूल्हा बुझा था, पर आस जल रही,
सपनों की रोटी, राख में गल रही।
उधर महलों में जश्न मनाया गया,
हर कोने में हीटर लगाया गया।
शाम की चाय, गरम पकवान,
सर्दी में भी, गुलाबी थे अरमान।
फिर एक गरीब ने पूछा आसमान से,
"क्या तू सिर्फ अमीरों का भगवान है?"
मगर उत्तर न आया, सन्नाटा छा गया,
गरीब ठिठुरता रहा, मौसम हँसता रहा।
"यही है कहानी इस दुनिया की,
जहाँ सर्द हवाएँ भी अमीरों की!" – सर्दी कविता [3]

डॉ नरेश की यह प्रसिद्ध कविताओं में से एक कविता है जो कि समाज में हो रहे भेदभाव अमीर, गरीब, छोटे, बड़े आदि पैमाने को दर्शाती है। ये पंक्तियां यथार्थवाद के साथ–साथ उनकी भावनात्मक दृष्टि को भी प्रदर्शित करती हैं। इसी प्रकार अन्य कविता मुखौटा समाज में रह रहे व्यक्तियों के भिन्न–भिन्न रंगों को भी उजागर करती है। उनकी मुखौटा नामक कविता बताती है कि लोगों के चेहरे कैसे नकाब से ढके हुए हैं। वे ऊपर से तो अलग प्रकार के दिखते हैं और उनके अंतर्मन में अलग–अलग द्वंद चलता रहता है। जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :–

''मुखौटे के पीछे छिपी कहानी,
सच की राहें, झूठ का पानी।
चेहरे बदलते, भाव भी बदलते,
भीतर की आग, बाहर से ठंडी।
आँखों में चमक, होंठों पर हँसी,
दिल में छिपी, गहरी उदासी।
मुखौटा कहता जो सबको अच्छा,
भीतर का सच, किसने समझा?
हर दिन नया रूप धरते,
दुनिया के रंग में रंगते।
मुखौटा पहन, सच को छिपाते,
खुद से भी हम कब तक भागते?
सपनों की चाह में दौड़ते,
मुखौटे के संग सच को छोड़ते।
पर एक दिन, जब मुखौटा उतरेगा,

भीतर का इंसान ही उभरेगा।।''

—मुखौटा कविता[4]

व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष, आशा, निराशा, प्रेम और आत्मसंघर्ष भी इनकी कविताओं में प्रमुखता से स्थान पाते हैं। वे मानवीय जीवन के हर पहलू को बहुत बारीकी से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक उनकी कविताओं में अपनी ही छवि देख पाते हैं। संवेदना किसी भी कविता की आत्मा होती है। उनकी कविताओं में मनुष्य की पीड़ा, करुणा, प्रेम, और संघर्ष का अत्यंत संवेदनशील चित्रण देखने को मिलता है। वे अपने शब्दों के माध्यम से एक ऐसा संसार रचते हैं, जहाँ पाठक अपने अनुभवों को जोड़ पाता है। उनकी कविताओं में भावनाओं और वास्तविकता का अद्भुत संतुलन देखने को मिलता है।

सिहाग का काव्य यथार्थ और संवेदना का सजीव दस्तावेज है, जो समाज की पीड़ा, संघर्ष और मानवीय संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है। उनकी कविता न केवल समकालीन सामाजिक विसंगतियों को उजागर करती है, बल्कि परिवर्तन की चेतना भी जाग्रत करती है। उनका काव्य अभिव्यक्ति की सहजता, भावनात्मक गहराई और शिल्प सौष्ठव का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो पाठकों को विचारोत्तेजक अनुभव प्रदान करता है। उनके काव्य की ऐसी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

''करता हूं मैं अभिव्यक्ति का
एक ज्वलंत दस्तावेज
जिसके पृष्ठ स्वयं में यथार्थ हैं
नहीं कोई उसका झूठा पेज
सम सामयिक विसंगतियों का
यह एक कच्चा चिट्ठा है
जो हर एक ही नादानियों से
क्रोधित हो खूब चिढ़ता है
क्योंकि ईश आइने में जो भी
बनते है बिंब प्रतिबिंब
वो दर्शाते रिसते रिश्तों की
हकीकत के सही सही प्रतिबिंब।''

—अभिव्यक्ति का ज्वलंत दस्तावेज कविता[5]

स्त्री जीवन, उसकी पीड़ा, संघर्ष और उसकी स्वतंत्रता के प्रश्न भी उनकी कविताओं में सशक्त रूप से उभरकर आते हैं। वे समाज में स्त्रियों की स्थिति पर गहरी संवेदनशीलता के साथ विचार करते हैं और उनकी आवाज को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कहीं कहीं तो ये नारी की विवशता और बेबसता को पेश करते हुए नजर आते हैं तो कहीं—कहीं उन्हें आत्मविश्वास से भरते हुए नए जोश के साथ प्रोत्साहित करते हुए नजर आते हैं। उनके काव्य की कुछ झलक इस प्रकार से है :—

''नारी स्वयं को समेटते समेटते
इतनी भयभीत हो सिकुड़ती गई थी

मर्दों के जुल्मों को सहते सहते,
सुधरने के बजाय बिगड़ती गई थी।''

—नारी की कुछ बात कहे कविता[6]

मजबूती आ गई उसकी सोच और विचार में
जीवन के उसके रहने के आचार विचार में
हर समस्या को उसने चुनौति रूप में माना
जीवन के तौर तरीकों को अब उसने जाना।
नारी का जीवन दर्शन कविता।[7]

बेटी है ईश्वर का उपहार,
दुनिया का सबसे प्यारा प्यार।
सम्मान, स्नेह से सजा ये दिवस,
बेटियों को समर्पित हर एक विचार।
दुनिया में फैला दो यह संदेश,
बेटियाँ हैं जीवन की आस।
बेटी के बिना जीवन अधूरा,
उसका होना 'बोहल' सबसे खास।

—बेटी दिवस कविता[8]

इनकी कविताएँ केवल साहित्यिक आनंद ही नहीं देतीं, बल्कि समाज को एक नया दृष्टिकोण भी प्रदान करती हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से यथार्थ की कठोर सच्चाइयों को उजागर करने के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं की कोमलता को भी अभिव्यक्त करते हैं। डॉ मीरा चौरसिया अपने शोध आलेख 'डॉ नरेश सिहाग के पशु पक्षी हमारे मित्र काव्य संग्रह बाल काव्य में एक गहन अध्ययन' में लिखती हैं कि "एक एडवोकेट होने के नाते डॉक्टर नरेश सिहाग ने कानून के सिद्धांतों और हिंदी साहित्य को साथ में जोड़कर एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने न्यायिक व्यवस्था में आने वाली समस्याओं भ्रष्टाचार और आम आदमी के संघर्षों को अपनी रचनाओं में बखूबी चित्रित किया है उनके लेखन में विधि और साहित्य का यह अनोखा संगम देखने को मिलता है जो उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग और विशिष्ट बनाता है।"[9] उनकी इसी दृष्टि को प्रस्तुत करते का उनके काव्य की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :–

''अदालत की रफ्तार है न्याय की बहुत तेज,
सच को पकड़ती है वहीं जो हो दोष में छेज।
अदालत की मैं रहूं बिना पक्ष विपक्ष के,
न्याय की आंखों में छाया भाव निष्पक्ष।''

—अदालत कविता[10]

डॉक्टर नरेश सिहाग के काव्य में संवेदनात्मक भावना करुणा, प्रेम, वेदना और आशा का गहन सम्मिश्रण है। उनकी कविताएँ समाज के उपेक्षित वर्ग, मानव जीवन के संघर्षों और व्यक्तिगत अनुभूतियों को भावनात्मक

रूप से अभिव्यक्त करती हैं। वे मानवीय संवेदनाओं की कोमलता और तीव्रता को भी चित्रित करते हैं। उनकी संवेदनाएँ केवल पीड़ा तक सीमित नहीं, बल्कि उनमें एक सकारात्मक दृष्टिकोण भी समाहित है, जो पाठकों को सोचने, महसूस करने और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझने के लिए प्रेरित करता है।

संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करते हुए उनके काव्य के कुछ पंक्तियां इस प्रकार से हैं :–

''बचपन की यादें मीठी होती है
खुशियों से जुदा वो बातें होती
छोटे छोटे सपने, बड़ी मस्ती
जिंदगी की सबसे प्यारी अदभुत साथी।''

–बचपन की यादें कविता[11]

अन्य कविता का कुछ अंश इस प्रकार है :–

''यही है एक ख्वाइश मेरी
जो है जैसा उसकी वैसी ही
हकीकत कह दूं
उसका चेहरा है जैसा वैसी ही
तस्वीर बना दूं
और
मेरा ह्रदय है एक कोरी कागज जैसा
न जाने मेरी सोच की कलम
किसी के बारे में क्या लिख दे
न जाने मेरे दिल का साज
किसी के बारे में कौनसी धुन बना दे।''

–ख्वाहिशें कविता[12]

उनकी कविताओं में यथार्थ का तीखापन और संवेदना की गहराई मिलकर एक ऐसा साहित्यिक संसार रचती हैं, जो पाठकों को लंबे समय तक प्रभावित करता है। इस शोध आलेख के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि उनका काव्य केवल पढ़ने और सराहने के लिए नहीं, बल्कि समाज को देखने और समझने का एक सशक्त माध्यम भी है। इनके काव्य में यथार्थ और भाव का अद्भुत संगम हमें देखने को मिलता है। संक्षेप में यदि कहा जाए तो इनका काव्य गागर में सागर भरने का कार्य करता है। इनकी लेखनी वर्तमान समाज में फैली लगभग सभी समस्याएं उजागर करती है।

संदर्भ सूची :–

1. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
2. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
3. https://nayigoonj.com सर्दी / डॉ नरेश सिहाग।

4. https://m.sahityakunj.net/lekhak/naresh&kumar&sihag / मुखौटा।
5. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
6. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
7. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
8. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
9. शोध समालोचना पत्रिका, जनवरी–मार्च 2025 अंक।
10. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
11. https://m.sahityakunj. बेटी डॉक्टर नरेश सिहाग।
12. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025

ग्रन्थ सूची :-

1. ख्वाहिशें, डॉक्टर नरेश सिहाग, म. सी. प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025
2. शोध समालोचना पत्रिका, जनवरी मार्च 2025 अंक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 203-208
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਦੀ ਰੂਪ ਰਚਨਾ

ਸਰਜੀਤ ਸਿੰਘ
ਸਹਾਇਕ ਪ੍ਰੋਫੈਸਰ , ਰਾਜਕੀਯ ਕੰਨਿਆ ਕਾਲਜ, ਪਦਮਪੁਰ , ਸ੍ਰੀ ਗਗਾਨਗਰ ਰਾਜਸਥਾਨ

ਲੋਕ-ਗੀਤ:

ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਅਖਾਣ ਹੈ- ''ਪੰਜਾਬ ਦਿਆਂ ਜੰਮਿਆਂ ਨੂੰ ਨਿੱਤ ਮੁਹਿੰਮਾ''।

ਲੋਕ-ਗੀਤ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਲੋਕ-ਗੀਤ ਨੂੰ ਇਕ ਪਾਸਿਉ ਲੋਕਧਾਰਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਅਥਵਾਂ 'ਲੋਕ' ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਸਮਝਣ ਵਿਚ ਯਤਨ ਕਰਾਂਗੇ ਤੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸਿਉ ਇਸ ਨੂੰ ਸਾਹਿਤਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਤੋਂ ਵਿਚਾਰਾਂਗੇ।

''ਪਰੰਪਰਾਂ ਦੇ ਅੰਸਾਂ ਨਾਲ ਭਰਪੂਰ, ਲੋਕ ਬੋਲੀ ਦੁਆਰਾ ਮੌਖਿਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਸੰਚਾਰਤਾ ਅਜਿਹੀ ਸੰਗੀਤਮਈ ਰਚਨਾ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਲੋਕਮਾਨਸ ਦੀ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਹੋਵੇ ਜਿਹੜੀ ਕਿਸੇਂ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿਸ਼ੇਸ ਨਾਲ ਸਬੰਧਤ ਨਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੋਵੇ ਅਤੇ ਲੋਕ-ਸਮੂਹ ਜਿਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਦੇ ਕੇ ਪੀੜ੍ਹੀਉ ਪੀੜ੍ਹੀ ਅਗੇ ਤੋਰਦਾ ਆਇਆ ਹੋਵੇ, ਲੋਕ-ਗੀਤ ਹੈ।''

ਪੰਜਾਬੀ ਹਰ ਚੀਜ਼ ਨੂੰ ਘੋਖ ਕੇ ਵੇਖਦਾ ਹੈ, ਤੇ ਕਿਸੇ ਗੱਲ ਨੂੰ ਗੀਤ ਵਿਚ ਥਾਂ ਦੇਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਇਸ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰ ਦੀ ਕਸੱਵਟੀ ਉੱਤੇ ਖਰੇ ਸੋਨੇ ਵਾਂਗ ਪਰਖਦਾ ਹੈ। ਤਕੜੇ ਜੁੱਸੇ ਵਾਲੇ ਲੋਕ ਹੀ ਇਹ ਗੀਤ ਗਾ ਸਕਦੇ ਹਨ:-

''ਦੋ ਦਿਨ ਘੱਟ ਜੀਉਣਾ, ਜੀਉਣਾ ਮਟਕ ਦੇ ਨਾਲ।''

ਲਹੂ ਮਾਸ ਵਿਚ ਰਚਾਇਆ ਹੋਇਆ ਭਾਵ-ਚਿੱਤਰ ਹੀ ਲੋਕ ਗੀਤ ਦਾ ਰੂਪ ਧਾਰਦਾ ਹੈ। ਲੋਕ-ਗੀਤਾ ਰਾਹੀ ਲੋਕ ਆਪਣੇ ਮਨ ਦੀਆਂ ਮੂਲ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਜਿਹੜੀਆ ਇਕ ਦਿਲ ਤੋਂ ਦੂਜੇ ਦਿਲ ਤੱਕ ਦੀਆਂ ਤਰੰਗਾਂ ਛੇੜਦੀਆ ਹਨ। ਲੋਕ-ਗੀਤ ਵਿੱਚ ਅੱਜ ਵੀ ਹਾੜ

ਮਹਿਨਾ ਤਪਤਾ ਹੈ ਤੇ ਗੋਰੀ ਦੇ ਮਨ ਵਿੱਚ ਗੁੱਝੀਆਂ ਅੱਗਾਂ ਮੱਚ-ਮੱਚ ਪੈਂਦੀਆਂ ਹਨ, ਜਦ ਉਹ ਗਾਉਂਦੀ ਹੈ:-

ਚੜਿਆ ਮਹੀਨਾ ਹਾੜ ਕਿ ਤਪਣ ਪਹਾੜ ਕਿ ਬਲਣ ਅਗੀਠੀਆਂ
ਮਾਹੀ ਗਿਆ ਪਰਦੇਸ ਮੈਂ ਬਿਰਹੋ ਲੂਠੀਆਂ॥

ਲੋਕਗੀਤ ਰੁਪ ਰਚਨਾ ਦੀ ਪਰਿਭਾਸ਼ਾ:-

ਡਾ. ਕਰਨੈਲ ਸਿੰਘ ਥਿੰਦ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਨੂੰ ਲੋਕ ਗੀਤ ਦੇ ਸਿਰਲੇਖ ਹੇਠ ਹੀ ਰੱਖਕੇ ਪਰਿਭਾਸ਼ਿਤ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿ:- "ਪਰੰਪਰਾ ਦੇ ਅੰਸ਼ਾਂ ਨਾਲ ਭਰਪੂਰ ਲੋਕ ਬੋਲੀ ਦੁਆਰਾ, ਮੌਖਿਕ ਰੁਪ ਵਿਚ ਸੰਚਾਰਿਤ ਅਜਿਹੀ ਸੰਗੀਤਮਈ ਰਚਨਾ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਲੋਕ ਮਾਨਸ ਦੀ ਅਭਿਵਿਅਕਤੀ ਹੋਵੇਂ, ਜਿਹੜੀ ਕਿਸੇ ਵਿਅਕਤੀ ਵਿਸ਼ੇਸ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਨਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੋਵੇ ਅਤੇ ਲੋਕ ਸਮੂਹ ਜਿਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਦੇ ਕੇ ਪੀੜ੍ਹੀਓ ਪੀੜ੍ਹੀ ਅੱਗੇ ਤੋਰਦਾ ਆਇਆ ਹੋਵੇ, ਉਹ ਲੋਕ-ਗੀਤ ਹੈ।"

ਡਾ. ਵਣਜਾਰਾ ਸਿੰਘ ਬੇਦੀ:- ਨੇ ਲੋਕਧਾਰਾਂ ਉਪਰ ਬੜਾ ਕਾਰਜ ਕੀਤਾ ਹੈ ਉਹ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ:- "ਜੀਵਨ ਦੇ ਕੋਈ ਅਜਿਹਾ ਮਨੋ-ਵਿਗਿਆਨਕ ਸਮਾਜਿਕ ਜਾਂ ਆਰਥਿਕ ਪੱਖ ਅਜਿਹਾ ਨਹੀ ਜੋ ਲੋਕਗੀਤਾਂ ਦੀਆਂ ਪੱਥਰ ਲੀਕਾਂ ਤੋ ਬਚ ਸਕੇ। ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਦੇ ਪੱਥਰ ਉੱਤੇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਹਰ ਰੇਖਾ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੀ ਛਾਪ ਛੱਡ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।"

ਲੋਕ-ਗੀਤ ਬਾਰੇ **ਰਾਲਫ਼ ਫ਼ਾਕਸ** ਦੇ ਸ਼ਬਦ ਹਨ ਕਿ- ਲੋਕ-ਗੀਤ ਨਾ ਪੁਰਾਣਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਨਾ ਨਵਾਂ। ਉਹ ਤਾਂ ਜੰਗਲ ਦੇ ਇਕ ਰੁੱਖ ਵਰਗਾ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੀਆਂ ਜੜ੍ਹਾਂ ਤਾਂ ਦੂਰ ਧਰਤੀ ਵਿਚ ਧੱਸੀਆਂ ਹੋਈਆ ਹਨ ਪਰ ਜਿਸ ਵਿਚ ਲਗਾਤਾਰ ਨਵੀਆਂ ਡਾਲੀਆਂ, ਕਰੂੰਬਲਾਂ ਤੇ ਫਲ-ਫੁੱਲ ਫੁੱਟਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ।"

ਪਿੱਪਲ ਦਿਆ ਪੱਤਿਆ ਵੇ, ਕਹੀ ਖੜ-ਖੜ ਲਾਈ ਆ
ਝੜ ਪਉ ਪੁਰਾਣਿਆ ਵੇ, ਰੁੱਤ ਨਵਿਆਂ ਦੀ ਆਈ ਆ

ਲੋਕ-ਗੀਤ ਦੀ ਉਤਪਤੀ ਤੇ ਰੂਪ-ਰਚਨਾ ਦੀ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ:

ਡਾ. ਨਾਹਰ ਸਿੰਘ ਲੋਕ ਕਾਵਿ ਨੂੰ ਅੱਗੇ ਦੋ ਭਾਗਾਂ ਵਿਚ ਵੰਡਦੇ ਹਨ:

1) ਖੁਲੇ ਰੂਪ 2) ਬੱਝਵੇ ਰੂਪ

ਇਸ ਤਰਾਂ ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਨੂੰ ਅੱਗੇ **ਖੜੇ ਦਾਅ** ਅਤੇ **ਲੇਟਵੇ ਦਾਅ** ਦੋ ਹਿੱਸਿਆ ਵਿੱਚ ਵੰਡਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਖੜੇ ਦਾਅ ਵਾਲੀ ਵੰਡ ਵਿਚ ਲੰਮੇ ਗੀਤ, ਲੰਮੀਆ ਬੋਲੀਆਂ ਅਤੇ ਗਾਉਣ ਆਦਿ ਰਖੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਲੇਟਵੇ ਦਾਅ ਵਿਚ ਅੱਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਜਨਮ ਤੋ ਲੈ ਕੇ ਮੌਤ ਤੱਕ ਦੇ ਸਫ਼ਰ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਲੋਕ-ਗੀਤ ਰੱਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ । ਜਿਵੇ ਬੱਚੇ ਦੇ ਜਨਮ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਗੀਤ-ਲੋਰੀਆਂ, ਬਾਲ ਗੀਤ, ਖੇਡ ਗੀਤ ਵਾਗੀਆ ਦੇ ਗੀਤ ਜਿਵੇਂ ਪੀੜ ਆਦਿ। ਵਿਆਹ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਗੀਤ - ਘੋੜੀਆਂ, ਸੁਹਾਗ, ਸੰਦ, ਸਿਠਣੀਆਂ, ਸੋਹਲੇ, ਆਦਿ ਅਤੇ ਮੌਤ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ - ਅਲਾਹੁਣੀਆਂ, ਕੀਰਨੇ ਅਤੇ ਸਿਆਪੇ ਆਦਿ ਮੈਂ ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਗੀਤ ਲਿਖਣ ਤੋਂ ਝਿਜਕ ਰਿਹਾ ਹਾਂ ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਦੀ ਉਤਪਤੀ ਕਿੰਨੀ ਪੁਰਾਣੀ, ਕਦੋ, ਕਿਥੇ ਤੇ ਕਿਵੇਂ ਹੋਈ, ਇਸ ਬਾਰੇ ਕਿਸੇ ਪੱਕੇ ਨਿਰਣੇ ਤੇ ਪੁੱਜਣਾ ਤਾਂ ਬੜਾ ਅਸੰਭਵ ਹੈ ਪਰ ਜਾਪਦਾ ਹੈ, ਜਦੋ ਆਦਮੀਆਂ ਦੇ ਖਿੰਡਰੇ ਕਾਫਲੀਆਂ ਨੂੰ ਇਕ ਥਾਂ ਮਿਲ ਬੈਠਣ ਦੀ ਸੂਝ ਹੋਈ ਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਹਿਰਦਿਆ ਵਿਚ ਪਿਆਰ ਦੀ ਪਨੀਰੀ ਪੁੰਗਰਨ ਲੱਗੀ, ਜਵਾਨ ਜ਼ਜਬਿਆਂ ਵਿਚ ਪਿਆਰ ਦਾ ਵੇਗ ਉਮੜਿਆ, ਓਦੋ ਸਾਹਿਤ ਹੋਂਦ ਵਿਚ ਆਇਆ ਤੇ ਇੰਜ ਤੋਂ ਪਹਿਲੀ ਤੇ ਪੁਰਾਣੀ ਕਵਿਤਾ, ਜਿਹੜੀ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ਸੀ ਅਤੇ ਜਿਸ ਵਿਚ ਅਨੰਤ ਵਿਚ ਸਮਾਂ ਚੁੱਕੇ ਅਣਗਿਣਤ ਜਵਾਨ-ਜਜਬਿਆਂ ਦੀਆ ਰੀਝਾਂ ਤੇ ਸੱਧਰਾ, ਸਿਤਾਰ ਦੀਆਂ ਤਾਰਾਂ ਵਾਂਗ ਤੜਫਦੀਆ ਜਾਪਦੀਆ ਹਨ ਉਨਾਂ ਨੇ ਲੋਕ-ਗੀਤਾ ਦਾ ਰੂਪ ਧਾਰਨ ਕੀਤਾ।

<u>ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਦੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸਤਾਵਾਂ:-</u>

ਡਾ. ਵਣਜਾਰਾ ਸਿੰਘ ਬੇਦੀ -ਅਨੁਸਾਰ "ਲੋਕ ਗੀਤਾ ਦੀ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਵਿਸ਼ੇਸਤਾ, ਇਨ੍ਹਾਂ ਵਿਚਲੀ ਸਾਦਗੀ, ਭਾਵ ਦੀ ਸੁਹਿਰਦਤਾ, ਅਨੁਭਵ ਦੀ ਸਮੁੱਚਤਾ ਤੇ ਰੂਪਕੀ ਸੁਹਜਾਤਮਕਤਾ ਹੈ। ਭਾਸ਼ਾ ਇਹਨਾ ਵਿਚ ਆਪਣੇ ਅਸਲੀ ਰੂਪ ਵਿਚ ਨੰਗੇ ਪਿੰਡੇ ਵਿਦਮਾਨ ਹੁੰਦੀ ਹੈ... ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਦੇ ਸ਼ਬਦ ਜਜ਼ਬੇ ਦੇ ਵੇਗ ਵਿਚੋ ਆਕਾਰ ਧਾਰਨ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਉਸ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ, ਬੋਲੀ ਤੇ ਨਿਰੰਤਰ ਪ੍ਰਵਾਹ ਦੇ ਹੀ ਬੁਲਬੁਲੇ ਹਨ।" ਲੋਕ-ਗੀਤ ਲਾਜ਼ਮੀ ਹੀ ਕਿਸੇ 'ਲੋਕ ਦਾਇਰੇ' ਦੀ ਉਪਜ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਇਹ ਦਾਇਰਾ ਭਾਸ਼ਾ, ਧਰਮ, ਕਿੱਤਾ, ਲਿੰਗ, ਉਮਰ, ਸਮਾਜਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚੋਂ ਕੋਈ ਵੀ ਇਕ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਹਰ ਗੀਤ ਰੂਪ ਇਸੇ ਦਾਇਰੇ ਦੇ ਅੰਦਰ-ਅੰਦਰ ਪ੍ਰਵਾਨੀਤ ਤੇ ਪ੍ਰਚਲੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ

ਕਰਕੇ ਹੀ ਲੋਕਗੀਤਾਂ ਦੀ ਹਰ ਰੂਪ-ਵਿਧਾ ਮੂਲ ਭਾਵ ਦੇ ਪੱਖੋ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ; ਜਿਵੇ ਕੀਰਨੇ ਵਿਚ ਮੌਤ ਦੀ ਵੇਦਨਾ, ਘੋੜੀ, ਸੁਹਾਗ ਵਿਚ ਖੁਸ਼ੀ ਦੇ ਭਾਵ, ਬੋਲੀਆਂ ਵਿਚ ਪਿਆਰ ਭਾਵਾਂ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਹੋਣੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਲੋਕ-ਗੀਤ ਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਲੈਆਤਮਕ, ਕੋਮਲ ਅਤੇ ਮਨ ਨੂੰ ਟੁੰਬਣ ਵਾਲੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।

ਗੁਰਬਖ਼ਸ ਸਿੰਘ ਪ੍ਰਤੀਲੜੀ - ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਬਾਰੇ ਲਿਖਦੇ ਹਨ ਕਿ "ਖੁਦਾ ਦੀ ਆਮ ਖਲ਼ਕਤ ਦੇ ਖੂਦ ਰੋ ਗੀਤਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਸਹਿਤ ਦੀ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿੱਚ ਕਹਿਕਸ਼ਾਂ, ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੀਹਦੇ ਵਿਚ ਅਣਬਣੇ ਤਾਰਿਆ ਲਈ ਅਖੁੱਟ ਮਸਾਲਾ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਜੀਹਦੇ ਵਿਚੋਂ ਅਨੇਕਾਂ ਤਾਰੇ ਨਿੱਤ ਬਣਦੇ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ।

ਲੋਕ-ਗੀਤ : ਪੁਨਰ-ਸਿਰਜਨ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ:-

ਲੋਕ-ਕਾਵਿ ਪੁਨਰ-ਸਿਰਜਨਾ ਦੇ ਪ੍ਰਵਾਹ ਵਿਚ ਵਗਦਾ ਹੈ। ਲੋਕ-ਗੀਤ ਦੀ ਸਿਰਜਨ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆਂ ਨਵੀਨਤਾ ਤੇ ਪਰੰਪਰਾਂ ਦੇ ਘੁਲਣ ਮਿਲਣ ਦੀ ਕਿਰਿਆ ਹੈ। "ਲੋਕ-ਗੀਤ ਦੀ ਰਚਨਾਤਮਕ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆਂ ਨਵ-ਸਿਰਜਨ ਦੀ ਥਾਂ ਪੁਨਰ-ਸਿਰਜਨ ਦੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।" **ਡਾ. ਵਣਜਾਰਾ ਸਿੰਘ ਬੇਦੀ।**

ਲੋਕ-ਗੀਤ ਵਿੱਚ ਸਿਰਜਨਾ ਦਾ ਅਮਲ ਪ੍ਰਾਪਤ ਸਮਗਰੀ ਅਰਥਾਤ ਪਰੰਪਰਕ ਗੀਤ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਹੀ ਸੰਭਵ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਇਸੇ ਦਲੀਲ ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ "ਸਟੈਡਰਡ ਡਿਕਸ਼ਨਰੀ ਆਫ਼ ਫੋਕਲੋਰ ਮਿੱਥ ਐਂਡ ਲੀਜੈਂਡ" ਦਾ ਕਰਤਾ ਇਸ ਨੂੰ ਪੁਨਰ ਸਿਰਜਨਾ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ।

ਲੋਕ-ਗੀਤ ਵਿਚ ਪੁਨਰ-ਸਿਰਜਨਾ ਸਦਾ ਪਰੰਪਰਾ ਦੇ ਦਾਇਰੇ ਅੰਦਰ ਹੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਪਰੰਪਰਾ ਆਪਣੇ ਆਪ ਵਿਚ ਗਤੀਸ਼ੀਲ ਪ੍ਰਵਾਹ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਲਗਾਤਾਰਤਾ ਦੇ ਇਕਸਾਰਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਪਰੰਪਰਾ, ਲੋਕਗੀਤ ਵਿਚ ਪੁਨਰ-ਸਿਰਜਨਾ ਲਈ ਰਾਹ ਵੀ ਖੋਲ੍ਹਦੀ ਹੈ, ਪਰ ਨਾਲ ਹੀ ਇਸ ਨੂੰ 'ਲੋਕ' (ਪਰੰਪਰਾ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ) ਤੋਂ ਅਸਲੋਂ ਨਿਖੜ ਜਾਣ ਤੋਂ ਰੋਂਕਦੀ ਵੀ ਹੈ ਅਰਥਾਤ ਅਸਲੋਂ ਮੁਕਤ ਸਿਰਜਨ ਉਤੇ ਬੰਦਿਸ ਵੀ ਬਣਦੀ ਹੈ। ਰੂਸੀ ਵਿਦਵਾਨ ਵਾਈ. ਐਮ. ਸੋਕੋਲੋਵ ਦਾ ਕਹਿੰਨਾ ਹੈ ਕਿ "ਲੋਕ-ਗੀਤ ਵਿਚ ਸਿਰਜਨਾ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਪਹਿਲ ਕਦਮੀ ਦਾ ਫਲ ਹੈ।"

ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਲੋਕ-ਗੀਤ:-

ਡਾ. ਕੁਲਦੀਪ ਸਿੰਘ ਧੀਰ ਅਨੁਸਾਰ ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਸ਼ਿਸਟ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਛੱਬੀ ਕਿਸਮ (੨੬) ਦੇ ਲੋਕ ਰੁਪਾਕਾਰਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਹੋਈ ਹੈ। ਇਹ ਰੂਪਾਕਾਰ ਹਨ: ਅਲਾਹੁਣੀ, ਆਰਤੀ, ਅੰਜੁਲੀ, ਸੁਹਾਗ, ਸਿੱਠਣੀ, ਸੁਚੱਜੀ, ਸੋਹਿਲਾ, ਹੇਅਰਾ, ਕਰਹਲੇ, ਕਿੱਕਲੀ, ਕੀਰਨਾ, ਕੁਚੱਜੀ, ਗੁਣਵੰਤੀ, ਘੋੜੀ, ਛੰਦ-ਪਰਾਗਾ, ਜੰਞ/ਪੱਤਲ, ਝਗੜਾ/ਝੇੜਾ, ਟੱਪਾ, ਦੋਹੜਾ/ਦੋਹਰਾ, ਨਿਕੀ ਬੋਲੀ, ਪਹਿਰੇ, ਬਿਰਹੜਾ, ਮਾਹੀਆ, ਲੋਰੀ, ਲੰਬੀ ਬੋਲੀ ਅਤੇ ਵਣਜਾਰਾ।

ਡਾ. ਮਹਿੰਦਰ ਕੌਰ ਗਿੱਲ ਨੇ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਹੋਏ ਲੋਕ-ਰਚਨਾ-ਰੂਪਾਂ ਦਾ ਵੇਰਵੇ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਿਆਂ ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਪੰਜ ਭਾਗਾਂ ਵਿਚ ਵੰਡਿਆ ਹੈ।

੧) ਅਨੁਸ਼ਠਾਨਿਕ ਰਚਨਾ-ਰੂਪ

੨) ਤਿਥੀਵਾਰਕ ਰਚਨਾ-ਰੂਪ

੩) ਸਤੁਤੀ ਆਤਮਕ ਰਚਨਾ-ਰੂਪ

੪) ਉਦਯੋਗਾਤਮਕ ਰਚਨਾ-ਰੂਪ

੫) ਲੋਕ ਮੁਹਾਵਰਾ ਬੋਧਕ ਰਚਨਾ-ਰੂਪ

ਸਿੱਟਾ:-

ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਕਾਫ਼ੀ ਕੰਮ ਹੋ ਚੁੱਕਾ ਹੈ ਕਿਉਕਿ ਇਹਨਾਂ ਵਿਚ ਲੋਕਾ ਦਾ ਜੀਵਨ ਵਧੇਰੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਰੂਪ ਵਿਚ ਧੜਕਦਾ ਸੁਣਿਆ ਜਾਦਾ ਹੈ। ਡਾ. ਵਣਜਾਰਾ ਬੇਦੀ ਅਨੁਸਾਰ "ਕਿਸੇ ਜਾਤੀ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੇ ਨੈਣ-ਨਕਸ਼ ਉਸ ਦੀ ਰਹਿਤ ਬਹਿਤ, ਸੋਚਾਂ, ਮਨੌਤਾ ਅਤੇ ਵਿਵਹਾਰ ਆਪਣੇ ਸੱਚੇ ਸੁੱਚੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਲੋਕ-ਗੀਤਾਂ ਵਿਚ ਹੀ ਸੁੱਰਖਿਅਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਲੋਕ-ਦਿਲਾ ਦੀ ਆਵਾਜ਼ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਲੋਕ ਗੀਤਾਂ ਵਿਚ ਉਭਰਦੀਆ ਸੁਰਾਂ ਹੀ ਕਿਸੇ ਜਾਤੀ ਦੇ ਅਚੇਤ ਮਨ ਦਾ ਸੰਸਕਾਰ ਬਣਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਪਖੋ ਕਿਸੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਬਿਖਰੇ ਹਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਲੋਕ ਗੀਤ ਭਾਵੇਂ ਉਹਨਾਂ ਵਿੱਚ ਸਾਹਿਤਕ ਰੰਗ ਪਤਲਾ ਹੋਵੇ ਜਾਂ ਸੰਘਣਾ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਅ ਰਹੇ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਇਹ ਕਿਸੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਦੀ ਰੂੜੀ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਸਮੋਈ ਰੱਖਦੇ ਹਨ।"

ਚੋਣਵੀ ਪੁਸਤਕ-ਸੂਚੀ

੧) ਡਾ. ਨਾਹਰ ਸਿੰਘ (ਲੋਕ-ਕਾਵਿ ਦੀ ਸਿਰਜਨ-ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ)

੨) ਜੋਗਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਕੈਰੋ (ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਲੋਕਧਾਰਾਈ ਪਿਛੋਕੜ)

੩) ਮਹਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਰੰਧਾਵਾ (ਪੰਜਾਬ) (ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਭਾਗ ਪੰਜਾਬ, ਪਟਿਆਲਾ)

੪) ਮਿ. ਅਫਜ਼ਲ ਪ੍ਰਵੇਜ (ਪਾਕਿਸਤਾਨ ਦਾ ਅਵਾਮੀ ਪੰਜਾਬੀ ਅਦਬ) (ਲੋਕ ਸਾਹਿਤ)
(11 ਅਪ੍ਰੈਲ 1983- ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, ਇਕ ਪਰਚਾ)

੫) ਰੀਝਾਂ ਤੇ ਰਮਜਾਂ (ਗੁਰਚਰਨ ਸਿੰਘ) (ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਪਬਲੀਕੇਸ਼ਨ ਬਿਓਰੋ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ)

੬) ਡਾ. ਵਣਜਾਰਾ ਸਿੰਘ ਬੇਦੀ (ਪੰਜਾਬੀ ਲੋਕਧਾਰਾ ਵਿਸ਼ਵ-ਕੋਸ਼) (ਸਾਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਚੰਡੀਗੜ੍ਹ)

੭) ਪ੍ਰੋ. ਬ੍ਰਹਮਜਗਦੀਸ਼ (ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ) ਸੰਦਰਭਮੂਲਕ ਅਧਿਐਨ ਪੰਨਾਂ ਨੰ: ੫੦

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 209-217

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत का स्वर्ण युग : गुप्त साम्राज्य में समाज में कला, साहित्य और विज्ञान की उपलब्धियाँ

शशांक शर्मा
एम.ए., एम.फिल., नेट (इतिहास)

सार :-

गुप्त साम्राज्य (लगभग 320–550 ई.) को अक्सर कला, साहित्य, विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में अपनी उल्लेखनीय उपलब्धियों के कारण भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। चंद्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) जैसे शासकों के नेतृत्व में, साम्राज्य फला–फूला और भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश हिस्सों में अपना प्रभाव बढ़ाया।

इस युग में शास्त्रीय भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान हुआ, जिसमें संस्कृत साहित्य का प्रसार, मंदिर वास्तुकला में उन्नति और ललित कलाओं का उत्कर्ष शामिल था। इस अवधि के दौरान कालिदास जैसे प्रसिद्ध साहित्यकार और आर्यभट्ट जैसे वैज्ञानिक दिग्गज उभरे, जिन्होंने भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रमुख उपलब्धियों में दशमलव प्रणाली का विकास, खगोल विज्ञान में महत्वपूर्ण प्रगति और पुराणों सहित हिंदू धार्मिक ग्रंथों का एकीकरण शामिल है।

गुप्त काल धार्मिक सहिष्णुता का भी समय था, जिसमें बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिंदू धर्म एक साथ मौजूद थे और विकसित हो रहे थे। प्रशासन कुशल था, व्यापार और कृषि के माध्यम से आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा देता था, जबकि साम्राज्य की सैन्य शक्ति ने आंतरिक स्थिरता और बाहरी प्रभुत्व सुनिश्चित किया। यह शोध पत्र गुप्त साम्राज्य की उपलब्धियों और भारतीय सभ्यता की आधारशिला के रूप में इसकी स्थायी विरासत की खोज करता है, जो बाद की पीढ़ियों पर इसके गहन प्रभाव को दर्शाता है।

परिचय :-

संस्कृति के क्षेत्र में अपनी भव्यता और उत्कृष्टता के लिए, भारतीय इतिहास के गुप्त युग की तुलना प्राचीन ग्रीस के पेरीक्लीन युग, प्राचीन रोम के ऑगस्टान युग और मध्यकालीन इंग्लैंड के एलिज़ाबेथन युग से की जाती है। यह समग्र सांस्कृतिक प्रगति का काल था। गुप्त युग ने धर्म, साहित्य, दर्शन, विज्ञान, वास्तुकला, मूर्तिकला, कला, खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा, शिक्षा और उद्योग में महत्वपूर्ण प्रगति की। भारत एक मानसिक उत्थान से गुजरा जो प्रकृति में शानदार था। परिणामस्वरूप, गुप्त काल को प्राचीन भारत के ''स्वर्ण युग'' के रूप में संदर्भित किया जाता है। गुप्त साम्राज्य एक प्रागैतिहासिक भारतीय साम्राज्य था जो चौथी शताब्दी ई.पू. की

शुरुआत से छठी शताब्दी ई.पू. के अंत तक अस्तित्व में था। इसने अपने चरम पर भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश हिस्से को कवर किया, लगभग 319 से 467 ई. पू. तक। इतिहासकार इस काल को भारत का ''स्वर्ण युग'' कहते हैं। साम्राज्य के शासक राजवंश की स्थापना राजा श्री गुप्त ने की थी और इसके सबसे उल्लेखनीय शासक चंद्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वितीय थे, जिन्हें विक्रमादित्य के नाम से भी जाना जाता है। 5वीं शताब्दी ई. के संस्कृत कवि कालिदास के अनुसार, गुप्तों ने भारत के अंदर और बाहर लगभग इक्कीस राज्यों पर विजय प्राप्त की, जिनमें पारसिक, हूण, कम्बोज, पश्चिम और पूर्व में ऑक्सस घाटियों की जनजातियाँ, किन्नर, किरात और अन्य शामिल थे। गुप्त काल के गौरव में कई कारकों ने योगदान दिया। इन कारकों में एक शक्तिशाली शाही राजवंश, देश की राजनीतिक एकता, आंतरिक शांति और सुरक्षा, एक मजबूत लेकिन परोपकारी प्रशासन, आर्थिक समृद्धि, बाहरी दुनिया से संपर्क और संस्कृति के लिए शाही समर्थन शामिल हैं।

गुप्त राजवंश, अर्थात् गुप्त साम्राज्य प्राचीन भारत का एक साम्राज्य था। जिसने लगभग संपूर्ण उत्तर भारत पर शासन किया। इतिहासकारों द्वारा इस अवधि को भारत का स्वर्ण युग माना जाता है। मौर्य वंश व शुंग वंश के पतन के बाद दीर्घकाल में हर्ष तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। कुषाण एवं सातवाहनों ने राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया। मौर्योत्तर काल के उपरान्त तीसरी शताब्दी ईस्वी में तीन राजवंशो का उदय हुआ जिसमें मध्य भारत में नाग शक्ति, दक्षिण में वाकाटक तथा पूर्वी में गुप्त वंश प्रमुख हैं। मौर्य वंश के पतन के पश्चात् नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुनः स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है।

गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार में था। साम्राज्य के पहले शासक चंद्र गुप्त प्रथम थे, जिन्होंने विवाह द्वारा लिच्छवी के साथ गुप्त को एकजुट किया। उनके पुत्र प्रसिद्ध समुद्रगुप्त ने विजय के माध्यम से साम्राज्य का विस्तार किया। ऐसा लगता है कि उनके अभियानों ने उत्तरी और पूर्वी भारत में गुप्त शक्ति का विस्तार किया और मध्य भारत और गंगा घाटी के कुलीन राजाओं और उन क्षेत्रों को वस्तुतः समाप्त कर दिया जो तब गुप्त वंश के प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण में आ गए थे। साम्राज्य के तीसरे शासक चंद्रगुप्त द्वितीय (या विक्रमादित्य, ''शौर्य का सूर्य'') उज्जैन तक साम्राज्य का विस्तार करने के लिए मनाया गया, लेकिन उनका शासनकाल सैन्य विजय की तुलना में सांस्कृतिक और बौद्धिक उपलब्धियों से अधिक जुड़ा हुआ था। उनके उत्तराधिकारी– कुमारा गुप्त, स्कंद गुप्त और अन्य – ने धुनास (हेफ्थालवासियों की एक शाखा) पर आक्रमण के साथ साम्राज्य के क्रमिक निधन को देखा। 6वीं शताब्दी के मध्य तक, जब राजवंश का अंत हुआ, तो राज्य एक छोटे आकार में घट गया था।

गुप्त काल में कला का विकास :–

भारत में कला का विकास गुप्त साम्राज्य के शासनकाल में (२०० से ३२५ ईस्वी में) हुआ। इस काल की वास्तुकृतियों में मंदिर निर्माण का ऐतिहासिक महत्त्व है। बड़ी संख्या में मूर्तियों तथा मंदिरों के निर्माण द्वारा आकार लेने वाली इस कला के विकास में अनेक मौलिक तत्व देखे जा सकते हैं जिसमें विशेष यह है कि ईंटों के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग किया गया।

- **वास्तुकला :** इस काल की वास्तुकला को सात भागों में बाँटा जा सकता है– राजप्रसाद, आवासीय गृह, गुहाएँ, मन्दिर, स्तूप, विहार तथा स्तम्भ। चीनी यात्री फाह्यान ने अपने विवरण में गुप्त नरेशों के राजप्रसाद की

बहुत प्रशंसा की है। इस समय के घरों में कई कमरे, दालान तथा आँगन होते थे। छत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ होती थीं जिन्हें सोपान कहा जाता था। प्रकाश के लिए रोशनदान बनाये जाते थे जिन्हें वातायन कहा जाता था। गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म के प्राचीनतम गुहा मंदिर निर्मित हुए। ये भिलसा (मध्य–प्रदेश) के समीप उदयगिरि की पहाड़ियों में स्थित हैं। ये गुहाएँ चट्टानें काटकर निर्मित हुई थीं। उदयगिरि के अतिरिक्त अजन्ता, एलोरा, औरंगाबाद और बाघ की कुछ गुफाएँ गुप्तकालीन हैं। इस काल में मंदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरों पर हुआ। शुरू में मंदिरों की छतें चपटी होती थीं बाद में शिखरों का निर्माण हुआ। मंदिरों में सिंह मुख, पुष्पपत्र, गंगायमुना की मूर्तियाँ, झरोखे आदि के कारण मंदिरों में अद्‌भुत आकर्षण है।

- **मूर्तिकला :** गुप्तकाल में मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्र मथुरा, सारनाथ और पाटिलपुत्र थे। गुप्तकालीन मूर्तिकला की विशेषताएँ हैं कि इन मूर्तियों में भद्रता तथा शालीनता, सरलता, आध्यात्मिकता के भावों की अभिव्यक्ति, अनुपातशीलता आदि गुणों के कारण ये मूर्तियाँ बड़ी स्वाभाविक हैं। इस काल में भारतीय कलाकारों ने अपनी एक विशिष्ट मौलिक एवं राष्ट्रीय शैली का सृजन किया था, जिसमें मूर्ति का आकार गात, केशराशि, माँसपेशियाँ, चेहरे की बनावट, प्रभामण्डल, मुद्रा, स्वाभाविकता आदि तत्त्वों को ध्यान में रखकर मूर्ति का निर्माण किया जाता था। यह भारतीय एवं राष्ट्रीय शैली थी। इस काल में निर्मित बुद्ध–मूर्तियाँ पाँच मुद्राओं में मिलती हैं– ध्यान मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा।
- **चित्रकला :** अजंता की गुफाओं में चित्रित भित्ति चित्र गुप्त काल की श्रेष्ठ चित्रकला का उदाहरण हैं। ये चित्र बौद्ध कथाओं और जटिल भावनाओं को जीवंत रूप से दर्शाते हैं। कालिदास की रचनाओं में चित्रकला के विषय के अनेक प्रसंग हैं। मेघदूत में यक्ष–पत्नी के द्वारा यक्ष के भावगम्य चित्र का उल्लेख है।

गुप्त काल में साहित्य का विकास :–

गुप्त काल भारतीय साहित्य के विकास का स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग में संस्कृत भाषा और साहित्य को अद्वितीय प्रोत्साहन मिला। गुप्त काल में संस्कृत को राजभाषा के रूप में मान्यता मिली। इससे संस्कृत साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। साहित्यिक कृतियों में धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, और काव्यात्मक लेखन का प्रभावशाली योगदान देखने को मिलता है। इस दौरान धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष साहित्य का एक बड़ा संग्रह संकलित किया गया था। रामायण और महाभारत, दो प्रमुख महाकाव्य, अंततः चौथी शताब्दी में पूरे हुए। दोनों महाकाव्यों की कथाएँ बुराई पर अच्छाई की जीत को दर्शाती हैं। राम और कृष्ण दोनों को विष्णु का अवतार माना जाता है।

गुप्त काल में पुराणों की रचना शुरू हुई, जो एक प्रकार का साहित्य है। इन लेखों में हिंदू देवताओं के बारे में कहानियाँ शामिल हैं और बताया गया है कि उपवास और तीर्थयात्रा करके उन्हें कैसे संतुष्ट किया जा सकता है। विष्णु पुराण, वायु पुराण और मत्स्य पुराण इस समय अवधि के दौरान लिखे गए तीन प्रमुख पुराण हैं। शिव पुराण शिव की पूजा के लिए बनाया गया था, जबकि वराह पुराण, वामन पुराण और नरसिंह पुराण विष्णु के कई अवतारों का महिमामंडन करते हैं। वे साधारण लोगों की पूजा के लिए बनाए गए थे।

गुप्त वंश के दौरान कुछ स्मृतियाँ (कानूनी ग्रंथ) भी संकलित की गईं। उदाहरण के लिए, नारद स्मृति उस काल के सामान्य सामाजिक और आर्थिक रीति–रिवाजों और नियमों पर प्रकाश डालती है। गुप्त काल में साहित्य लिखने के लिए संस्कृत का इस्तेमाल किया जाता था।

गुप्त काल के दौरान प्रमुख लेखक और लेखन

- **कालिदास :** काव्य गुप्त युग के साहित्य की वास्तविक सुंदरता और महिमा को दर्शाता है। कालिदास, जो चौथी शताब्दी ई. में रहते थे और चंद्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे, सभी नामों में सबसे प्रसिद्ध हैं। ऋतुसंहार उनका लघु महाकाव्य या लंबी कविता थी; हालाँकि, मालविकाग्निमित्रम एक नाटक था। संस्कृत साहित्य में, मेघदूत एक काव्य है।

- **मालविकाग्निमित्रम् :**

यह एक संस्कृत नाटक है जो शुंग राजा अग्निमित्र और मालविका नामक एक दासी के प्रेम प्रसंग पर आधारित है। पुष्यमित्र शुंग द्वारा किए गए राजयज्ञ का भी इस नाटक में उल्लेख किया गया है।

- **अभिज्ञानशाकुंतलम् :**

इस संस्कृत नाटक में हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त और ऋषि विश्वामित्र की बेटी शकुंतला और अप्सरा मेनका को दर्शाया गया है।

- **विक्रमोर्वशीयम् :**

यह वैदिक राजा पुरुवास और उर्वशी की प्रेम कहानी पर आधारित एक संस्कृत नाटक है। पुरुवास को चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के गुणों को दर्शाने के लिए चुना गया था।

- **भारवि :**

लगभग 550 ई. में रचित किरातार्जुनीय, भारवि की सबसे प्रसिद्ध रचना है। किरात शिव हैं, जो अर्जुन को एक पर्वत शिकारी के रूप में दिखाई देते हैं और उनसे बात करते हैं। महाकाव्य शैली की यह काव्य संस्कृत की सबसे महत्वपूर्ण रचनाओं में से एक मानी जाती है, जिसे इसकी जटिलता के लिए जाना जाता है।

- **ऋतुसंहार :**

ऋतुसंहार छह ऋतुओं वाला लघु महाकाव्य है। इसमें छह ऋतुओं में प्रेमियों की भावनाओं, भावनाओं और अनुभवों का वर्णन किया गया है। ऋतुसंहार को कालिदास की रचना माना जाता है।

- **भट्टी :**

भट्टी, जिन्हें बत्सभट्टी के नाम से भी जाना जाता है, मुख्य रूप से भैकव्य के लिए जाने जाते हैं, जिसे ऋवावध के नाम से भी जाना जाता है, जो 7वीं शताब्दी ई. में लिखा गया था।

- **भतृहरि :**

भर्तृहरि एक संस्कृत लेखक थे जिन्होंने संस्कृत व्याकरण पर एक पुस्तक वाक्यपदीय और 100 दार्शनिक पंक्तियों का संग्रह नीतिशतक की रचना की थी। हालाँकि भतृहरि एक राजा प्रतीत होते हैं, लेकिन कई शिक्षाविदों का मानना है कि वह वास्तव में राजा की सेवा करने वाले एक दरबारी थे।

गुप्त काल में साहित्य का उपयोग वैज्ञानिक और गणितीय ग्रंथों के लेखन में भी हुआ। जिसमें मुख्य रूप से आर्यभट्टीय (आर्यभट्ट द्वारा रचित, जिसमें खगोल और गणित के सिद्धांत वर्णित हैं।) तथा पंचसिद्धांति का (वराहमिहिर की रचना, जिसमें खगोल विज्ञान की जानकारी है।) प्रमुख है।

गुप्त राजवंश को भारत का साहित्यिक स्वर्ण युग माना जाता है। गद्य, कविता, रंगमंच और व्याकरण सभी ने शानदार साहित्य में योगदान दिया। यह शिक्षा और सीखने की प्रणाली का एक बाहरी प्रकटीकरण है। परंपराएँ,

कहानियाँ, नैतिक संहिताएँ और धार्मिक और दार्शनिक विचार सभी पुराणों के माध्यम से आगे बढ़े।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में गुप्तों का योगदान :–

प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास की बहुत सराहना की गई थी। गुप्त काल के वैज्ञानिकों और खगोलविदों ने इस क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण योगदान दिए। हालाँकि निस्संदेह यह सबसे अनुकरणीय योगदानों में से एक है कि उन्होंने यह खोज की कि सौर मंडल में सात ग्रह हैं, यह एकमात्र सराहनीय योगदान नहीं है। गुप्त साम्राज्य के वैज्ञानिकों ने गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, ज्योतिष, रसायन विज्ञान, प्राणीशास्त्र, वनस्पति विज्ञान और धातु विज्ञान में कई अन्य योगदान दिए।

- **गणित के क्षेत्र में योगदान :**

गुप्त काल के वैज्ञानिकों ने गणित के क्षेत्र में कुछ सबसे उल्लेखनीय योगदान दिए। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण योगदान संकेतन की खोज की दशमलव प्रणाली थी। पहले नौ अंकों के स्थानीय मान के सिद्धांत पर आधारित यह संकेतन प्रणाली शून्य के उपयोग पर भी निर्भर थी। इस प्राचीन भारतीय साम्राज्य ने ज्यामिति को भी महान ऊंचाइयों पर पहुंचते देखा। ऐसा वृत्तों और त्रिभुजों से संबंधित कई प्रमेयों के कारण था। फिर भी, गणित में सबसे सराहनीय कार्य गुप्त साम्राज्य में आर्यभट्ट वैज्ञानिकों द्वारा किया गया था। 499 ई. में, गुप्त साम्राज्य में आर्यभट्ट वैज्ञानिक ने आर्यभट्टीयम लिखा। यह मुख्य रूप से बीजगणित, ज्यामिति और गणित के बारे में था। गणित के क्षेत्र में गुप्त साम्राज्य की उपलब्धियों की सूची यहीं समाप्त नहीं होती है, क्योंकि इस अवधि में त्रिकोणमिति की खेती भी देखी गई। कहा जाता है कि इस अवधि में गणित के मामले में यूनानियों पर भारतीयों का उदय हुआ।

- **चिकित्सा के क्षेत्र में उपलब्धियां :**

जब बात चिकित्सा की आती है, तो सबसे महत्वपूर्ण रचनाएँ चरक द्वारा चरक संहिता और सुश्रुत द्वारा सुश्रुत संहिता थीं। दोनों ने चिकित्सकों के लिए उच्च आदर्श रखे और सुझाव दिया कि एक चिकित्सक को योगी होना चाहिए और अपने नुस्खों के लिए अधिक शुल्क नहीं लेना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया कि एक चिकित्सक को दयालु होना चाहिए और मानव जाति का समर्थन करना चाहिए, यानी, उसे लोगों के सामाजिक वर्ग या आर्थिक स्थिति के आधार पर पक्षपात नहीं करना चाहिए। गुप्त काल के दौरान, नागार्जुन द्वारा आसवन की प्रक्रिया और कीटाणुनाशकों के उपयोग की खोज की गई थी। अब तक, चेचक का टीका भी लगाया जा चुका था। शल्य चिकित्सा क्षेत्र में भी वृद्धि देखी गई क्योंकि डॉक्टर विकृत कान और नाक को काट सकते थे और सुधार सकते थे। कई शल्य चिकित्सा उपकरण विकसित किए गए।

- **गुप्त साम्राज्य के अधीन खगोल विज्ञान :**

इस काल के प्रमुख खगोलशास्त्री वराहमिहिर और आर्यभट्ट थे। आर्यभट्ट की उल्लेखनीय खोजों में से एक यह थी कि चंद्रमा पृथ्वी की छाया के ऊपर या पृथ्वी के बीच में आता है, जिससे ग्रहण होते हैं। उन्हें यूरोप के खगोलशास्त्रियों की तुलना में बहुत अधिक उन्नत माना जाता है, और उन्होंने जल्द ही 505 ई. में अपना कार्य पंचसिद्धितक लिखना शुरू कर दिया। गुप्त काल के खगोलशास्त्रियों और वैज्ञानिकों को इस उपलब्धि का श्रेय भी दिया जाता है कि उन्होंने खोज की कि सौर मंडल में सात ग्रह हैं।

- **ज्योतिष क्षेत्र में योगदान :**

प्राचीन भारतीय विद्या और विज्ञान का संग्रह, वृद्धि गर्ग संहिता, वराहमिहिर की बृहत् संहिता से पहले की प्रमुख रचना है। बृहत् संहिता में ज्योतिष के क्षेत्रों के अलावा, वराहमिहिर ने ज्योतिष से संबंधित चार अलग–अलग रचनाएँ भी कीं, जो विवाह के लिए अनुकूल मुहूर्त, और देवताओं के प्रयासों के लिए शुभ संकेत और मनुष्य के जन्म का समय और उसके भविष्य पर पड़ने वाले प्रभाव का प्रबंधन करती हैं।

- **गुप्त साम्राज्य के अधीन रसायन विज्ञान और धातुकर्म :**

वैसे तो गुप्त काल की कोई भी किताब रसायन विज्ञान और धातु विज्ञान से संबंधित नहीं मिलती है, लेकिन नागार्जुन को एक महान रसायनज्ञ माना जाता है। साथ ही, गुप्त काल से कुतुब मीनार के पास स्थित लौह स्तंभ उस समय के लोगों के धातुकर्म कौशल को दर्शाता है।

गुप्त साम्राज्य एक प्राचीन भारतीय साम्राज्य था जो गुप्त वंश के महान शासकों के लिए जाना जाता था। लेकिन, गुप्त काल विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला और वास्तुकला की दुनिया में अपने कई योगदानों के कारण भी अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। इस अवधि में कारखाना उत्पादन का उत्कर्ष भी देखा गया। इसलिए, न केवल गुप्त वंश के शासकों का अध्ययन करने लायक है; वैज्ञानिकों, खगोलविदों, चिकित्सकों, कलाकारों, वास्तुकारों, खगोलविदों और ज्योतिषियों को भी उनके संबंधित क्षेत्रों में उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए सराहना की जानी चाहिए।

गुप्त काल में धर्म और समाज :

गुप्त काल में धार्मिक सहिष्णुता थी। बौद्ध, जैन, और हिंदू धर्म का समान रूप से विकास हुआ। अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में धार्मिक कला का उत्कर्ष देखा जा सकता है। गुप्त–पूर्व काल में भारत में विदेशी आक्रमणों की एक श्रृंखला देखी गई। भारतीय समाज ने उन विदेशियों को स्थान दिया जो यहाँ स्थायी निवासी बन गए थे। गुप्त काल में जाति व्यवस्था कठोर हो गयी थी।

ब्राह्मणों ने गुप्त राजाओं को देवताओं के गुणों से युक्त बताया और गुप्त राजकुमार ब्राह्मणवादी व्यवस्था के महान समर्थक बन गए। ब्राह्मणों ने अनेक भूमि अनुदानों के कारण धन संचय किया तथा अनेक विशेषाधिकार प्राप्त किए, जिनका उल्लेख नारद की न्याय–पुस्तक में मिलता है।

अस्पृश्यता की प्रथा धीरे–धीरे शुरू हो गई थी। फाहियान ने उल्लेख किया है कि चांडालों को समाज से अलग कर दिया गया था। उनकी दयनीय स्थिति का वर्णन चीनी यात्री ने भी किया है।

गुप्त काल में महिलाओं की स्थिति भी दयनीय हो गयी थी। बहुविवाह आम बात थी। शीघ्र विवाह की वकालत की गई। सती का उल्लेख इसी काल में मिलता है (भानुगुप्त के एरण शिलालेख में)। महिलाओं को आभूषण और वस्त्र के रूप में स्त्रीधन के अलावा किसी भी संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा गया था।

धर्म के क्षेत्र में गुप्त काल में ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था। इसकी दो शाखाएँ थीं – वैष्णववाद और शैववाद। गुप्त शासकों ने भगवती धर्म को संरक्षण दिया, लेकिन वे अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु थे। इस काल में पुराण जैसे धार्मिक साहित्य की रचना हुई।

इस अवधि के दौरान वल्लभी में महान जैन संगीति का आयोजन किया गया तथा श्वेताम्बर जैन धर्मग्रंथ लिखा गया। नालंदा महायान बौद्ध धर्म के लिए शिक्षा के एक महान केंद्र के रूप में विकसित हुआ। इस काल

में भारत में तंत्रवाद (वज्रयानवाद) का प्रसार हुआ।

गुप्त साम्राज्य का समाज :–

गुप्त साम्राज्य में जातियों के प्रसार के कारण वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन होने लगा। इसके मुख्यतः तीन कारण थे– बड़ी संख्या में आप्रवासी, मुख्यतः क्षत्रिय, भारतीय समाज में समाहित हो गए थे। भूमि अनुदान के माध्यम से, बड़ी संख्या में आदिवासी लोगों को ब्राह्मणवादी समाज में शामिल कर लिया गया। जिन जनजातियों को शामिल किया गया था, उन्हें शूद्र वर्ण में शामिल कर लिया गया। व्यापार और शहरी केंद्रों के पतन के परिणामस्वरूप, साथ ही शिल्प की क्षेत्रीय प्रकृति के कारण, शिल्पकारों के संघ अक्सर जातियों में परिवर्तित हो गए।

ब्राह्मणों ने गुप्त राजाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला, जैसा कि राजाओं से उन्हें प्राप्त भूमि की मात्रा से स्पष्ट है। ब्राह्मण बस्तियों की वृद्धि ने वर्ण–विभाजित समाज की अवधारणा को बढ़ावा दिया। जाति व्यवस्था के बारे में जानकारी हमें धर्मशास्त्र से मिलती है जो गुप्त काल के ब्राह्मणों द्वारा लिखा गया था।

गुप्त काल में जाति व्यवस्था ने गहरी जड़ें जमा ली थीं। इस काल में धीरे–धीरे अस्पृश्यता की प्रथा शुरू हो गई थी। फा–हेन के अनुसार, चांडालों को नगरों और बाजारों के बाहर रहना पड़ता था और उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे जब उनके पास पहुंचें तो लकड़ी के टुकड़े पर प्रहार करें ताकि अन्य लोग उनके स्पर्श से बचने के लिए उनके रास्ते से हट जाएं। गुप्त काल में महिलाओं की स्थिति भी दयनीय हो गई थी। बहुविवाह प्रथा आम थी, पितृसत्ता ने गहरी जड़ें जमा ली थीं। महिलाओं को पुराण जैसे धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने से मना किया गया था। स्वयंवर प्रथा को त्याग दिया गया और मनुस्मृति में लड़कियों के लिए शीघ्र विवाह का सुझाव दिया गया।

गुप्त साम्राज्य का धर्म :–

इस काल में पुराणों और अन्य धार्मिक साहित्य की रचना हुई। गुप्त काल के दौरान, ब्राह्मणों ने धर्म की दृष्टि से सर्वोच्च समुदाय के रूप में शासन किया। वैष्णव और शैव धर्म उनकी दो शाखाएँ थीं। मूर्तियों की पूजा और विस्तृत अनुष्ठानों के साथ धार्मिक त्योहारों के उत्सव के कारण ये दोनों धर्म प्रमुख हो गए।

गुप्त साम्राज्य का पतन :–

गुप्तों का अपने साम्राज्य पर पूर्ण प्रभाव नहीं था। स्कंदगुप्त की मृत्यु के बाद शासक प्रशासन और सैन्य शक्ति दोनों में कमजोर हो गए और पराजित राजा स्वतंत्र हो गए। उन्होंने प्रत्यक्ष अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में मंत्रियों और मठों को भूमि अनुदान दिया था, और ये बहुत धनी और प्रभावशाली बन गए थे। राज्य के भीतर राज्य की अवधारणा उभरने लगी, जिससे गुप्त साम्राज्य की सत्ता कमजोर हो गई। अर्थव्यवस्था नीचे की ओर जा रही थी। व्यापार, शिल्प और विनिर्माण का विकास आम तौर पर स्थिर था। परिणामस्वरूप, गुप्तों का सैन्य प्रभाव कम हो गया और क्षेत्रीय ताकतें मजबूत हो गईं। गिल्ड स्वतंत्र रूप से काम कर रहे थे। हूणों के आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य को कमजोर कर दिया। मालवा के यशोधर्मन ने गुप्तों की श्रेष्ठता को चुनौती दी और 532 ई. में उनके सम्मान में उत्तरी भारत के उस पूरे क्षेत्र में विजय स्तंभ स्थापित किए जो कभी गुप्तों के अधीन था। ये कुछ ऐसे कारक थे जिनके कारण गुप्तों का पतन हुआ।

गुप्त साम्राज्य की अर्थव्यवस्था, समाज, धर्म और पतन के विभिन्न पहलुओं पर नज़र डालने के बाद, हम

देखते हैं कि पहले के समय की तुलना में इस समय में महत्वपूर्ण बदलाव हुए थे। राजाओं पर ब्राह्मणों का बहुत प्रभाव था। इस अवधि में आम किसानों की स्थिति में भी गिरावट आई। गुप्त काल के समाज में वर्ण व्यवस्था जारी रही।

गुप्त समाज में शिक्षा और सीखना :–

गुप्त समाज की शिक्षा एवं शिक्षण संरचना को निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है :

- **शिक्षा के केन्द्र** – गुप्त समाज अपने उल्लेखनीय शिक्षा केन्द्रों के लिए प्रसिद्ध है, जिनमें नालंदा और तक्षशिला सबसे प्रमुख शिक्षा केन्द्र हैं। ये विश्वविद्यालय दूर–दूर से छात्रों को आकर्षित करते थे, विभिन्न विषयों की शिक्षा देते थे और बौद्धिक विकास को बढ़ावा देते थे। गुप्त राजा शिक्षा और ज्ञान के संरक्षक थे, जिसने इस युग की सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **अध्ययन के विषय** – गुप्त काल के दौरान अध्ययन के विषय विविध थे, जिनमें व्याकरण, दर्शन, चिकित्सा और खगोल विज्ञान पर विशेष जोर दिया गया था।
- कालिदास जैसे विद्वानों ने अपनी साहित्यिक उत्कृष्ट कृतियों के साथ, तथा आर्यभट्ट ने गणित और खगोल विज्ञान में अपने अभूतपूर्व कार्य के साथ भारतीय बौद्धिक विरासत में स्थायी योगदान दिया।
- गुप्त समाज ने आलोचनात्मक ग्रंथों और वैज्ञानिक प्रगति का विकास देखा जो भावी पीढ़ियों के लिए आधार बन गया।
- **गुरूकुल और निजी शिक्षा** – गुरुकुल और निजी शिक्षा ज्ञान प्रदान करने के सामान्य साधन थे।
- परिवार या जाति समूहों के भीतर शिक्षा व्यापक थी, बच्चे विद्वानों के मार्गदर्शन में धार्मिक शास्त्र, कला और विज्ञान सीखते थे।
- ब्राह्मणों ने ज्ञान, विशेषकर धार्मिक और शास्त्रीय ग्रंथों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे उस समय की बौद्धिक परंपराओं को सुदृढ़ बनाने में मदद मिली।

गुप्त समाज में सांस्कृतिक प्रथाएँ :–

गुप्त समाज की सांस्कृतिक प्रथाओं को इस प्रकार देखा जा सकता है :

- **पारिवारिक संरचना और पितृसत्तात्मक समाज :** गुप्त समाज की विशेषता एक मजबूत पितृसत्तात्मक समाज थी जिसमें परिवार केंद्रीय इकाई थी और सबसे बड़े पुरुष के पास अधिकार होता था।
- **हिंदू धर्म को प्रतिबिंबित करने वाले त्यौहार, अनुष्ठान और रीति-रिवाज :** हिंदू धर्म धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन पर हावी था, जिसमें विभिन्न त्यौहार, अनुष्ठान और प्रथाएं दैनिक जीवन और सामाजिक कैलेंडर से जुड़ी थीं।
- **वस्त्र शैलियाँ, आभूषण और आभूषण :** गुप्त समाज की वस्त्र शैलियाँ विविध थीं, लोग धोती, साड़ी और पगड़ी पहनते थे। सोने के आभूषण और विस्तृत आभूषण धन और सामाजिक स्थिति के संकेत थे।
- **अभिजात वर्ग और आम लोगों के बीच फैशन के रूझान :** अभिजात वर्ग शानदार फैशन के लिए जाने जाते थे, जबकि आम लोग सरल रुझानों का पालन करते थे।

निष्कर्ष :-

गुप्त काल, जिसे भारत का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है, में संस्कृति, शिक्षा और कला में महत्वपूर्ण प्रगति देखी गई, साथ ही सामाजिक स्तरीकरण और हाशिए पर पड़े समूहों के लिए चुनौतियाँ भी बढ़ीं। धार्मिक सहिष्णुता और ब्राह्मणवाद के उदय ने आध्यात्मिक परिदृश्य को आकार दिया, जबकि भूमि अनुदान प्रणाली ने आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित किया। अपनी सीमाओं के बावजूद, गुप्त युग ने भारतीय सभ्यता पर एक स्थायी विरासत छोड़ी।

गुप्तकाल में भारतीय समाज की विशेष उन्नति हुई। भारतीयों ने इस काल में विज्ञान, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा आदि अनेक क्षेत्रों मे विकास किया। इस काल में आयुर्वेद पर भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। 'नवनीतकम', नामक ग्रन्थ प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों का सार है। नालन्दा विश्वविद्यालय में आयुर्वेद और ज्योतिष का अध्ययन होता था। इस काल में भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी व्यापक उन्नति देखने को मिलती है। जहाज निर्माण से सम्बन्धित पुस्तक युक्तिकल्पतरू में छोटी बड़ी नावों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। गुप्तकाल का विज्ञान के सभी क्षेत्रों में व्यापक योगदान देखने को मिलता है। चहुँमुखी विकास के कारण ही गुप्तकाल को स्वर्णयुग या क्लासिकल युग कहा जाता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. आर. सी. मजूमदार और पुसाल्कर – दि क्लासिकल एज।
2. डॉ. वासुदेव उपाध्याय – गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग –2
3. वी.ए. स्मिथ – अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।
4. डॉ. सुधुम्न आचार्य – गणित शास्त्र के विकास की भारतीय परम्परा।
5. डॉ. बृजभूषण श्रीवास्तव– प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं कला।
6. डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर – गुप्तकालीन मुद्राएँ।
7. सालाटोर – लाइफ ड्यूरिंग दी गुप्त एज।
8. डॉ. एच. डी. सांकलिया – एण्डयन आर्कियोलॉजी टूडे।
9. डॉ. जयनारायण पाण्डेय – भारतीय कला एवं पुरातत्व।
10. शिवनारायण सिंह राणा – भारत भूमि का इतिहास।
11. रामशरण शर्मा – भारत का प्राचीन इतिहास।
12. द्विजेन्द्र नारायण झा और कृष्ण मोहन श्रीमाली – प्राचीन भारत का इतिहास।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 218-220

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुगलकालीन स्थापत्य कला की विशेषताएँ

डॉ. नितेश रिणवा

सहायक आचार्य (वि.स.) इतिहास विभाग, राजकीय कन्या महाविधालय, पीलीबंगा, हनुमानगढ़।

सार :-

मुगलकाल भारतीय स्थापत्य कला के स्वर्णयुग के रूप में प्रसिद्ध है। इस शोध पत्र में मुगलकालीन स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताओं, इसके विकास क्रम संगीत की उपलब्धि, चित्रकला के नवीन आयामों का विश्लेषण किया गया। मुगलकालीन स्थापत्य कला में मुगलकालीन गुम्बदो, मीनारों का निर्माण, इनमें बारीक नक्काशी का प्रयोग इत्यादि का उपयोग शामिल है। इसके अलावा इस काल में उद्यान शैली भारतीय इस्लामिक परम्परा का एक विशिष्ट उदाहरण मानी जाती है। मुगलकालीन आरम्भिक शासको बाबर से लेकर औंरगजेब तक प्रत्येक शासक ने अपने काल में अनेक स्थापत्य कलाओं में योगदान दिया। ताजमहल, जामा मस्जिद आदि इसके उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में मुगलकालीन स्थापत्य कला की महत्ता व इसके संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावो का उल्लेख किया गया है।

परिचय :-

स्थापत्य कला का युग भारतीय उपमहाद्वीप में एक स्वर्णिम युग माना जाता है। इस काल में बनी इमारतों पर सामाजिक, सांस्कृतिक क्रियाओं की विशेष झलक दिखाई देती है। मुगलकाल में बनी इमारतें सांस्कृतिक क्रियाओं का प्रमुख केन्द्र मानी जाती थी। जिसमें मस्जिदें, किले, उद्यान इत्यादि अपनी विशिष्ट शैली के कारण विश्व भर में प्रसिद्व है।

मुगलकालीन स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताओं में गुम्बदों का निर्माण, जालीदार नक्काशी, पत्थरों पर विभिन्न प्रकार के पुष्पों का अंलकरण प्रमुख माने जाते है। ताजमहल, लाल किला, फतेहपुर सिकरी जैसी अद्वितीय सरंचनाएँ मुगल स्थापत्य कला की उत्कृष्ट उदाहरण मानी जाती है।

मुगलकालीन स्थापत्य कला का विकास :-

मुगलकालीन स्थापत्य कला को भारतीय स्वर्णिम युग का काल माना जाता है। इस काल में प्रत्येक शासक के काल में बनी इमारतें, भवन अपनी एक विशिष्ट छाप छोड़ते है। जो अपनी एक अनूठी पहचान रखते है।

प्रारम्भिक काल

बाबर का काल :-

बाबर के काल (1526–1530) में विभिन्न प्रकार की इमारतों का निर्माण करवाया गया। इसी काल में बनी

इमारतों पर फारसी व तुर्की प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता हैं। बाबर ने अपने समय में विभिन्न बागों तथा इमारतों को एक विशिष्ट शैली में अलंकृत कर निर्मित करवाया।

हुँमायू का काल :–

हुँमायू के समय में मुगलकालीन इमारतों का विकास एक परिष्कृत रूप में हुआ। हुँमायू का मकबरा जो लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर से निर्मित है। मुगलकालीन स्थापत्य कला का एक अनूठा उदाहरण है।

अकबर का युग :–

अकबर का शासन काल मुगलकालीन स्थापत्य कला का एक अनूठा काल माना जाता है। इस काल को मुगलकालीन स्थापत्य कला के समन्वय का युग माना जाता है। अकबर के समय इस्लामी तथा हिन्दु दोनो शैलियों का मिश्रण स्थापत्य कला में किया गया। दीवान–ए–खास (फतेहपुर सिकरी) जामा मस्जिद व बुलन्द दरवाजा अकबर के समय की महत्वपूर्ण इमारतें है।

जहांगीर का काल :–

जहांगीर का काल स्थापत्य कला में विभिन्न सजावटो व उत्कृष्ट क्रियाओं का योग माना जाता है। जहांगीर ने पंजाब तथा कश्मीर में विभिन्न बागों का निर्माण करवाया। जहांगीर का मकबरा इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है जिसमें फारसी स्थापत्य शैली की झलक मिलती है।

शाहजहाँ का युग :–

शाहजहाँ (1628–1658) के शासन काल को मुगल स्थापत्य कला का स्वर्ण युग कहा जाता है। ताजमहल, जामा मस्जिद, लाल किला जैसी अद्वितीय संरचनाओं का निर्माण शाहजहाँ के द्वारा करवाया गया था। शाहजहाँ के समय में निर्मित इमारतों में सफेद संगमरमर तथा लाल बलुआ पत्थर प्रयोग किया गया है। इनमें दीवान–ए–खास, दीवान–ए–आम, मोती मस्जिद जैसी संरचनाएं प्रमुख मानी जाती है।

मुगलकालीन स्थापत्य कला की विशेषताएँ :–

1. **गुंबद व मीनारें :**

मुगलकालीन स्थापत्य कला की पहचान इसके भव्य गुंबद और ऊंची मीनारें है।

2. **संगमरमर व बलुआ पत्थर का प्रयोग :**

मुगलकालीन स्थापत्य में संगमरमर और लाल बलुआ पत्थर का व्यापक प्रयोग किया गया है।

3. **उद्यान निर्माण :**

मुगलकालीन शासकों ने वास्तुकला के साथ–साथ बागों तथा उद्यानों का निर्माण किया। ये उद्यान चार बाग शैली में बनते थे। रामबाग (आगरा) तथा शालीमार बाग (श्रीनगर) इसके प्रमुख उदाहरण है।

4. **जटिल जालीदार व ज्यामितिय आकृतियों का प्रयोग :**

पत्थरों पर बारीक जालीदार व जटिल ज्यामितियों आकृतियों का निर्माण प्रमुख विशेषता मुगलकाल की मानी जाती है।

निष्कर्ष :–

मुगलकालीन स्थापत्य कला भारतीय उपमहाद्वीप की महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। मुगलकालीन शासकों के समय में बनी इमारते अपनी अनूठी विशिष्टता के कारण प्रमुख मानी जाती है। इस काल में बनी

इमारते जैसे ताजमहल, जामा मस्जिद, बुलंद दरवाजा, हुमायूँ का मकबरा, लाल किला अपनी संरचना व उत्कृष्टता को दर्शाती है। इन संरचनाओं भारतीय, इस्लामिक व फारसी शैली का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है। जो वास्तुकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है और कला प्रेमियों व पर्यटकों को आकर्षित करती है। मुगलकालीन इमारतें भारतीय संस्कृति समाज व परम्परा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानी जाती हैं।

सन्दर्भ :-

1. शर्मा पी. (2011)– ताजमहल एक वास्तुकला का विश्लेषण कला और वास्तुकला समीक्षा 9(3), 101–116।
2. पांडे एम. (2013)– मुगलकालीन स्थापत्य कला में जाली का प्रयोग वास्तु और कला जर्नल 11(2), 74–89।
3. अहमद जे. (2009)– मुगलकालीन मकबरे और उनकी स्थापत्य विशेषताएँ भारतीय इतिहास और वास्तुकला जर्नल 19(3), 49–63।
4. चौधरी डी. (2007)– मुगल मस्जिदों की वास्तुकला इस्लामी वास्तुकला जर्नल 13(3), 66–81।
5. गुप्ता एस. (2012)– हुमायूँ का मकबरा एक स्थापत्य अध्ययन, भारतीय पुरातात्विक जर्नल।

niteshrinwa@gmail.com

Phone 9460643796

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 221-227

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

छायावाद में शैव दर्शन : एक अध्ययन

नेक प्रवीन, शोधार्थी
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद।
डॉ. शक्ति द्विवेदी, असिस्टेंट प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान हैदराबाद, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा।

भूमिका/सार :-

इस शोध–पत्र का विषय "छायावाद में शैव दर्शन : एक अध्ययन" है। इसका उद्देश्य हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण काल 'छायावाद' में शैव–दर्शन का प्रतिपादन करना है। शैव–दर्शन आदिकाल, भक्तिकाल और छायावादा में निरंतर दर्शित हुआ है। इस शोध–पत्र में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' महादेवी वर्मा व धर्मवीर भारती की रचनाओं को शामिल किया है। आधुनिक–युग में दर्शन, अध्यात्म और देशप्रेम के काव्यों की अधिकता रही। देश एक क्रांतिकारी मार्ग से गुजर रहा था और हमारे हिंदी कवि व रचनाकार अपने लेखन से अपना राहयोग दे रहे थे। इरा काल गें रवतंत्रता के राथ–राथ भारतीय राभ्यता व रांरकृति को अपनाकर उत्तग रचनाएँ हुई

बीज शब्द :- छायावाद, शैव–दर्शन, कामायनी, मूलाधार ग्रंथ, सैद्धांतिक–पक्ष, व्यवहारिक–पक्ष, आनंदवाद, परिवर्तन, शक्ति की मौलिक कल्पना में शिव का विशाल बिंब।

छायावाद काल में हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण अध्याय शुरू हो चुका था। एक तरफ भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन जोरों पर था, दूसरी ओर हिंदी साहित्य भी अपने उत्कर्ष पर था। छायावादी कवि मानवता को धरातल बनाकर अपनी रचनाएँ सींच रहे थे। विश्व युद्धों के कारण चारों ओर विनाश फैला था। छायावादी कवियों ने जिसमें जयशंकर प्रसाद, 'निराला' सुमित्रानंदन पंत व रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपनी रचनाओं के माध्यम से युद्धों का विरोध किया। इसके साथ–साथ स्वतंत्रता सेनानियों का हौसला बढ़ाया।

प्रसाद जी अपने महाकाव्य "कामायनी" के माध्यम से मनुष्य के विनाश और पूर्णनिर्माण का सुन्दर संदेश दे रहे हैं।

"कामायनी" में जलप्लावन की कथा शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद व पुराणों से ली गई है। कामायनी का मूलाधार ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद और पुराणों में श्रद्धा, मनु और इड़ा की कथाएँ क्रमहीन, असंबद्ध तथा परस्पर उलझी हुई थी। अतः प्रसाद ने इन समस्त कड़ियों को जोड़कर कामायनी में एक सुश्रृंखला तथा सुव्यवस्थित कथानक अंकन किया है।"

"कामायनी" का सैद्धांतिक पक्ष शैव–मत पर आधारित प्रतिभिज्ञा–दर्शन है। कश्मीरी शैव–दर्शन बासुगुप्त,

सोमानंद, अभिनव गुप्त व क्षेमराज की रचनाओं पर आधारित है। अभिनव गुप्त का संस्कृत साहित्य और हिंदी साहित्य में विशेष योगदान है। प्रसाद जी ने अपनी रचना में प्रत्यभिज्ञा–दर्शन को स्थापित कर समाज समाज में आनंद का भाव जगाया। प्रसाद जी ने जड़ और चेतन में शिव का वास माना व अपनी धार्मिक, आध्यात्मिक व दार्शनिक का परिचय 'चिंता' सर्ग की प्रथम पंक्तियों में माध्यम से व्यक्त की है :–

"हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष, भीगे नैनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था, एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता– कहो उसे जड़ या चेतन।।"

'दर्शन' सर्ग में मनु को शिव के साक्षात नटराज रूप के दर्शन होते हैं :–

"बन गया तमस था अलक जाल,
सर्वांग ज्योतिमय था विशाल।

'कामायनी' महाकाव्य शैव–दर्शन का व्यवहारिक रूप भी है। इसका सभी सर्ग मानव–जीवन के विकास की यात्रा हैं। 'चिंता'–सर्ग मानव की सृष्टि या जन्म का वर्णन करता है। यहाँ 'कामायनी' के माध्यम से प्रसाद जी का उद्देश्य मात्र कहानी कहना नहीं है बल्कि मानव मन में समय व परिस्थितियों के साथ–साथ होने वाले परिवर्तन का वर्णन करना है। चिंता, आशा, श्रद्धा काम वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा, स्वप्न व संघर्ष मानव मन के भाव या प्रतीक हैं। निर्वेद, दर्शन, रहस्य व आनंद इस महाकाव्य का मुख्य प्रतिपाद्य हैं। चिंता–सर्ग से आनंद–सर्ग की यात्रा मानव जीवन के परिवर्तन की यात्रा है, जो अंत में शिव साधना द्वारा आनंद को प्राप्त करती है।

कामायनी रचना के बारे में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने विचार रखे हैं :–

डॉ. नगेन्द्र ने 'कामायनी' को 'एक रूपक' माना है। निराला ने तो 'कामायनी' को 'रहस्यवाद का पहला महाकाव्य' ही बना दिया। पंत जी ने इसे 'ताजमहल के सामान', शांतिप्रिय द्विवेदी ने जी ने 'छायावाद का उपनिषद', डॉ. बच्चन सिंह जी ने 'आधुनिक काव्य', नामवर सिंह ने कामायनी को 'आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि महाकाव्य, व नंददुलारे वाजपेयी जी ने इसे 'मानवता का रसात्मक इतिहास' कहा है। कामायनी के प्रत्येक सर्ग में जीवन का दर्शन छिपा है। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव जीवन में समस्त पड़ाव देखे जा सकते है। मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी यौवन अवस्था अंत में वृद्ध अवस्था तक उसके मनोभावों का दर्शन अपने जीवन में अनेक अनेक अनुभवों के बाद मनुष्य वृद्ध अवस्था में समर्पण का भाव रखता है। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि 'कामायनी' मानव जीवन का दर्शन है।

छायावादी काव्य में प्रकृति पर सबसे अधिक रचना करने वाले कवि सुमित्रानंदन पंत जी ने प्रकृति में ही माँ, सखा व सहचरी के रूप को देखा। उन्होंने अपनी कविता 'परिवर्तन, में शैव–दर्शन का चित्रण किया है। पंत जी ने प्रकृति के माध्यम से शैव–दर्शन का वर्णन किया है। प्रकृति के विनाशकारी व सृजन दोनों रूपों का चित्रण कर परिवर्तन को संसार का अहम् हिस्सा माना। पंत जी 'परिवर्तन' कविता में संसार को मिथ्या मानते हैं।

कविता के छठे भाग में उन्होंने परिवर्तन को 'तांडव' कहकर पुकारा है वे लिखते हैं :–

"अहे निष्ठुर परिवर्तन!

तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन !"

परिवर्तन कविता में पंत जी ने जीवन और मृत्यु का साक्षात् चित्रण किया है। सृष्टि और विनाश का सुन्दर चित्रण किया है उसी की (ईश्वर) असीम सत्ता को स्वीकार कर लिखते हैं :–

"खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण, क्षणय
अभी उत्सव औ' हास–उल्लास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छावास!"

पंत जी की अनेक कविताओं में अद्वैत–दर्शन झलकता है। 'नौका–विहार' कविता में उन्होंने नौका के पार उतरने पर उल्लारा व्यक्त करते है। पंत जी 'गंगा' कविता गें गंगा नदी को शिव के रार रो बहती हुई हिगालय के रास्ते काशी में पहुँची कहते है व शिव के लिए अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं :–

"यह विष्णुपदी, शिव मौलि सुता
यह भीष्म प्रसू ओं जन्हु सुता
वह देव निम्नगा, स्वर्गंगा
वह सागर पुत्र तारिणी श्रुता।"

छायावाद के तीसरे मुख्य स्तंभ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपने काव्य में विभिन्न विषयों को दिखाया है। दर्शन का चित्रण सबसे तीव्र 'राम की शक्ति पूजा' में मिलता है। हिंदू धर्म के सबसे प्रचलित तीनों शिव, विष्णु और शाक्त दर्शन का एक ही स्थान पर सुन्दर चित्रण मिलता है। शक्ति की पूजा शाक्त धर्म में सर्वोपरी मानी जाती है। 'राम की शक्ति पूजा' में राम रावण युद्ध में राम चिंतामय होते हैं। फिर सीता जी की छवि उनके मन में आती और उनको अपने शरीर के भीतर नवीन उर्जा का आभास होता है। निराला जी लिखते हैं :–

"सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता ध्यानलीन राम के अधर,
फिर विश्व विजय भावना हृदय में आयी भर,

जिस प्रकार शिव और शक्ति का वर्णन हुआ है वैसा ही राम सीता जी के लिए सकारात्मक उर्जा के रूप में हाआ है। सीता जी की स्मृति मात्र से राम में शिव के धनुष तोड़ने वाली आशा का संचार होने लगा। आगे निराला जी के दोनों पाँव को आरितक और नारितक रूप गें अंकित किया है। चिंतागय राग की आँखों रो जब दो मोती रूपी आँसू टपक पड़ते हैं, उनके चरणों में ध्यान लगाकर हनुमान जी उनके सत्, चित् और आनंदमय रूप के दर्शन होते हैं। तभी हनुमान को लगता है कि शक्ति खेल खेल रही है। वह उत्तेजित होकर तीव्र वेग से आकाश की तरफ चलने लगते हैं। वातावरण में प्रलय जैसे स्थिति उत्पन्न होने वाली थी। एकादश रूद्र के समान

गर्जना करते हुए हनुमान महाकाश में पहुँचते हैं। वहाँ हनुमान जी ने देखा कि घने अन्धकार जैसी महाकाली और शिव–शक्ति रावण के पक्ष में उपस्थित थी। यह देखकर हनुमान जी संपूर्ण महाकाश को निगलने के लिए विचलित थे। यह देखकर क्षण भर के लिए शिव को भी शंका हुई और वे बोले :–

"लख महानाश शिव अचल, हुए क्षण–भर चंचल,
श्यामा के पद तल भारधरण हर मन्दस्वर
बोले– "संबरो" देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, नहीं हुआ श्रृंगार–युग्म–गत, महावीर।
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय शरीर,
चिर–ब्रह्मचर्य–रत ये एकादश रूद्र, धन्य।

यहाँ शिव जी हनुमान के चरित्र का गुणगान करते हैं। शिव महाशक्ति को उनका कर्तव्य याद दिलाकर मौन हो जाते है। महाशक्ति अंजना माता के रुप में हनुमान जी को दर्शन देकर शांत करती है। यहाँ शिव जी को ज्ञान रूपी दिखाया गया है।

राम की आँखों से फिर आँसू टपकने लगते हैं जब वे कहते हैं कि शक्ति उधर है, जिधर अन्याय है। वे अपनी सहायता के लिए शंकर को पुकारने लगते हैं :–

"निज सहज रूप में संयत हो जानकी–प्राण
बोले– 'आया न समझ में यह दैवी विधान।
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर,
यह रहा, शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!

इसके अतिरक्त निराला जी ने शिव की एक विशाल छवि आकाश में चित्रित की। पहले पर्वत के रूप में पार्वती की मौलिक कल्पना करते हैं, व समुद्र को सिहं के रूप में चित्रित करते हैं। और लिखते हैं :–

'देखो, बन्धुवर, सामने स्थिर जो वह भूधर
शिभित शत–हरित–गुल्म–तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना हैं इसकी, मकरन्द–विन्दु,
गरजता चरण–प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु।
दशदिक–समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि शेखर।

शिव की इतनी विराट कल्पना पहले किसी ने नहीं की। निराला जी ने पूरे आकाश में शिव की कल्पना की है, जो अद्‌भूत है। अंत में दुर्गा के मस्तक पर शिव विराजित किया।

छायावाद की चौथी स्तंभ महादेवी वर्मा के काव्य में अध्यात्म की चित्रमय प्रस्तुती हुई है। महादेवी वर्मा जी ने अपने अध्यात्म को दर्शाने के लिए अनेक प्रतीकों और बिम्बों को माध्यम बनाया है। दीपक, पतंगा, आँसू, तम, अली, बादल, फूल, आदि का प्रयोग किया है। उनकी कविताओं में क्षणभंगुरता व कण–कण में ईश्वर के वास की भावना उजागर हुई है। वे कहती है :–

"पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,

प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि–सागर का पंथ गया बन,
रुका मुखर कण–कण स्पंदन।

दीपशिखा के आरम्भ में 'चिंतन के कुछ क्षण' में महादेवी जी कहती हैं कि अलौकिक आत्मसमर्पण को समझने के लिए लौकिक का सहारा लेना होगा।" जब संपूर्ण आत्म समर्पण उस विराट के लिए होता है तभी सत्, चित् और आनंद की अनुभूति होती है। अपने को परम सत्ता में समर्पित करती महादेवी जी लिखती है :–

"शेषयामा यामिनी मेरा निकट निर्वाण!
पागल रे शलभ अनजान!
तिमिर में बुझ खो रहे विद्युत् भरे निश्वास मेरे,
निरूस्व होंगे प्राण मेरा शून्य उर होगा सवेरे,
राख हो उड़ जायगी यह
अग्निमय पहचान!"

महादेवी जी की रचनाओं में सर्वात्मवाद तथा महाकरुणावाद का चित्रण हुआ है। विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग कर अलौकिक सत्ता को देखने का प्रयास करती हैं। वे लिखती हैं :–

"फिर विकल हैं प्राण मेरे!
तोड़ दो यह क्षितिज गैं भी देख लूं उरा ओर क्या है!
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है?" (सन्धिनी 05)

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिंदी के महान् हस्ताक्षर हैं। 'रश्मिरथी' कविता में 'महाभारत' के एक पात्र कर्ण को विषय बनाकर लिखा गया खंडकाव्य है। कर्ण की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण किया गया है। इस कविता का मूल भाव युद्ध का विरोध करना है। राष्ट्र कवि ने 'महाभारत' को आधार बनाकर कर्ण का उदात्त चित्रण किया है और नैतिकता पर बल दिया है। इसके तीसरे सर्ग में कवि ने शिव के विराट रूप का चित्रण इस प्रकार किया है जिसमे पूरे ब्रह्माण्ड समाया है। वे लिखते हैं : (कृष्ण दुर्योधन संवाद)

"अम्बर में कुन्तल–जाल देख,
पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख,
मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।"

छायावाद में विभिन्न प्रकार के वाद तथा दार्शनिक बोध लिए रचनाओं का निर्माण हुआ है। शांतिप्रिय द्विवेदी जी ने तो एक स्थान पर छायावाद को एक दार्शनिक अनुभूति कहा है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य संग्रह में 'तांडव' नामक कविता में कवि ने शिव का नटराज रूप में सुंदर चित्रण कर अपनी श्रद्धा व्यक्त की है वे लिखते है :–

"नाचो, हे नाचो, नटवर!
चन्द्रचूड़ ! त्रिनयन ! गंगाधर ! आदि–प्रलय ! अवढर ! शंकर!
नाचो, हे नाचो, नटवर!"

"स्वामिन्, अंधड़–आग बुला दो,
जले पाप जग का क्षण–भर में,
डिम–डिम डमरू बजा निज कर में
नाचो, नयन तृतीय तरेरे !
ओर–छोर तक सृष्टि भस्म हो
चिता–भूमि बन जाए अरेरे !
रच दो फिर से इसे विधाता,
तुम शिव सत्य और सुन्दर ! नावो हे नावो, नटवर !

धर्मवीर भारती ने अपने दृश्य नाटक "अँधा युग" में 'गांधारी का शाप' अंक में शिव का वर्णन किया है। 'गांधारी का शाप' इरा नाटक का एक गहत्वपूर्ण अंक है। गांधारी गहाभारत युद्ध गें अपने बेटों की गृत्यु रो विचलित है। वह श्री कृष्ण को इसके जिम्मेदार ठहराती है। और उसे शाप देती है। इस अंक के आरम्भ में कथा गायन में शिव की स्तुति कुछ इस प्रकार है :–

'वे शंकर थे'
वे रौद्र–वेशधारी विराट
प्रलयंकर थे
जो शिविर–द्वार पर दीखे
अस्वत्थामा को––––––" (अस्वत्थामा का स्वर)

"जटा कटाह सम्भ्रमन्निलिम्प निर्झरी समा
विलोल वीचि वल्लरी विराजमान मूर्धनि
धगद्धगद्धगज्ज्वललाट पट्ट पावके
किशोर चन्द्र शेखरे रति प्रतिक्षण मम।"

साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि जिस काल में जो भी प्रवृत्तियाँ प्रधान रही है, वह पूर्णतः समाप्त नहीं हुई। धीरे–धीरे उन प्रवृत्तियों में कमी अवश्य ही देखी गई है परंतु पुर्णतः समाप्त नहीं हुई। शैव दर्शन आदिकाल से लेकर भक्तिकाल तक छायावाद व उसके बाद भी हिंदी साहित्य में विद्यमान है। अन्य वादों तथा दर्शनों के साथ–साथ शैव–दर्शन भी हिंदी साहित्य का अभिन्न अंग है। इस विषय पर शोध करके हिंदी साहित्य का विस्तार किया जा सकता है जिससे साहित्य में एक नवीनता का प्रसार होगा।

शैव–दर्शन एक विशेषता है कि आरम्भ से ही मानवतावादी दृष्टिकोण लेकर आया जो हम छायावादी रचनाओं में स्पष्ट रूप में देख सकते हैं।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. सुभदा वांजपे : छायावाद दर्पण, नेशनल पब्लिशर्स, सिकंदराबाद, प्रथम संस्करण 2011, पृ.सं.– 99

2. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण : 2014, पृ.सं.– 1
3. कामायनी, पृ.सं.– 100
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.–४६७ (467), चतुर्थ संस्करण (2012)
5. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम वृत्ति, पृ.सं.– १९६ (196)
6. पल्लव, पृ.सं.– १९५ (195) परिवर्तन– कविता
7. सुमित्रानंदन पंत : ग्राम्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण, नौवां (1977 ई.), पृ.सं.– ४२ (42)
8. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : अनामिका, राम की शक्ति पूजा, प्रकाशक– भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहबाद, द्वितीय संस्करण, पृ.सं.– २५२ (252)
9. अनामिका, पृ.सं.– २५४ (254)
10. अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ.सं.– २५६ (256)
11. राम की शक्ति पूजा. पृ.सं.– २६०, २६२ (260, 262)
12. महादेवी वर्मा : सन्धिनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ.सं.– ११८ (118)
13. महादेवी वर्मा : दीपशिखा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2021, पृ.सं.– ९९ (99)
14. महादेवी वर्मा : सन्धिनी, पृ.सं.– ९५ (95)
15. रामधारी सिंह 'दिनकर' : रेणुका, रश्मिरथी, प्रकाशन, उदयाचल, पटना (1956), पृ.सं.– 3
16. रामधारी सिंह 'दिनकर' : तांडव, तांडव http: // kavitakosh.org तांडव
17. डॉ, धर्मवीर भारती : अन्धा युग, प्रकाशक, किताब महल, इलाहाबाद, २०७४ (2074), अष्टम संस्करण, पृ.सं.– ६० (60)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 228-231

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी और मलयालम साहित्य में स्त्रीवादी लेखन : मैत्रेयी पुष्पा और सारा जोसफ के विशेष सन्दर्भ में

गोपिका. पी, शोध छात्र,
डॉ. श्रीविद्या एन.टी., असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, एर्नाकुलम, केरल।

प्रस्तावना :–

हिंदी और मलयालम साहित्य दो विभिन्न प्रान्तों का साहित्य है। दोनों साहित्य जगत में विभिन्न प्रकार की स्त्री संबंधी रचनाएँ लिखे गए है। समय के साथ–साथ इन दोनों साहित्य में बदलाव जरूर आया है। मैत्रेयी पुष्पा और सारा जोसफ के उपन्यासों में स्त्री अधिकार सम्बंधी तथ्यों को खोजने की प्रयास हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री स्वतन्त्रता और अस्मिता की पहचान देखा जा सकता है। उनकी रचनाओं में आत्माविभक्ति का प्रयोग देख सकते है। उनके हर पात्र स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती है और अस्मिता की चरम सीमा पर पहुँचती है। उन्होंने इन उपन्यासों के द्वारा अनेक समस्याओं को सामने लाने की प्रयास भी किया है।

सारा जोसफ मलयालम साहित्य की लेखिका एवं विमर्शकार है। स्त्री पक्ष में खड़े होकर सारा जोसफ पुरुष द्वारा बनाये गए मान्यताओं की खंडन करती है। इनकी रचनाओं में स्त्री की विविध समस्याओं का सूक्ष्म निरीक्षण हुआ है। केरलीय समाज में अनेक सदियों से होने वाले पितृसत्तात्मक मिथक धारणाओं को सारा जोसफ ने अपनी रचनाओं में दिखाने की कोशिश किया है। स्त्री की स्त्रैण सत्ता एवं विशेष सौन्दर्य की भावना सिर्फ पितृसत्ता की मिथक धारणाओं में से एक है। यह मिथक धारणा स्त्री स्वतन्त्रता की हनन हजारों सालों से करते आये है। सारा जोसफ के अनुसार प्रत्येक स्त्री में स्वतन्त्रता की मांग करने की क्षमता होती है। सदियों से स्त्रियों के अंदर दबा दिए गए भय और यह पितृसत्ता के मिथक धारणाएं कभी–कभी यह आवाज को दबा देते है। एक स्त्री जब अपनी कैद को समझ लेती है तब से उसकी स्वतन्त्रता की मांग शुरू होती है। इसी प्रकार हिंदी और मलयालम साहित्य स्त्री पक्ष में खड़े होकर स्त्री की विभिन्न समस्याओं को सामने लाया है।

मूल शब्द :– स्त्री स्वतन्त्रता, पितृसत्ता, मूल आलेख।

आधुनिक युग अस्मिता विमर्श का युग है। उत्तराधुनिक दौर में स्त्री सम्बन्धी अनेक विचारधाराएं सामने आये है। हर युग में स्त्री परिवर्तित हुई है। समाज में स्त्रीयों के सम्बन्धी धारणाएं विविध है। मनुस्मृति में "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवतः। यत्रे तास्तु न पूज्यते सार्वास्तत्राफलः क्रिया।"[1] इसका अर्थ बताया गया कि जहाँ स्त्री की पूजा की जाती है, वहाँ देवता वास करते है। परन्तु इस वाक्य का समाज में आज तक कोई प्रतिफल नहीं

आया। स्वतन्त्रता और आदर से बहिष्कृत रखा। साहित्य में स्त्री का रूप परम्परागत था। साहित्य भी पितृसत्तात्मकता का खिलौना बन बैठे थे। स्त्री की विभिन्न रूप पुरुष केन्द्रित साहित्य में नहीं देख सकते। वह कभी भी सशक्त नहीं बनी। उदास निर्बल स्त्री ही रही। इसी सन्दर्भ में साहित्य अपने अनुभवों की जड़ को पकड़कर सामने आने लगी। हिंदी और मलयालम साहित्य की सभी विधाओं में आज लेखिकाओं की समझदारी अतुल्य है। स्त्री लेखन के संबंध में डॉ. शोभा वेरेकर का कथन है – "जाहिर है महिला लेखन में विलक्षण पठनीयता विश्वसनीयता ,जिजीविषा और मार्मिकता के कारण ही इसे विशाल पाठक वर्ग मिला है द्यआत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ–साथ आत्म सजगता और परिवेश चेतना महिला कहानीकार के रचनात्मक सरोकार का केंद्रीय बिंदु रहा है।"[2] इसी आत्म सजगता के साथ आज की नारी परंपरागत मूल्यों से लड़ रही है। आज के सन्दर्भ में अधिकांश रचनाओं में विद्रोह करती स्त्री को देखा जा सकता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी रचनाओं में गुलामी से मुक्ति पाने के लिए संघर्षरत स्त्री को देखने की कोशिश किया है। आधुनिक सन्दर्भ में स्त्री पुरुष के बदलते सम्बन्धों को उन्होंने चित्रित किया है। उनकी स्त्री पात्र इतनी स्वतंत्र है कि विवाह के पश्चात् भी दूसरे व्यक्ति के साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने में कोई हिचक नहीं दिखाती। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री मुक्ति व स्वतन्त्रता को स्वछन्द आचरण या देह प्रदर्शन नहीं मानते बल्कि समाज में पुरुषों की समकक्ष स्त्रियों को प्राप्त अधिकारों का सही उपयोग है। खासतौर पर उनकी अधिकाँश स्त्री पात्र स्वतन्त्रता के लिए स्वयं संघर्ष या लड़ाई में लगे रहते है। और अपनी अधिकारों को स्वयं प्राप्त करती है। मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नम' उपन्यास में 'मंदा' समझ जाती है कि उसे अपनी लड़ाई खुद लड़नी होती है। 'इदन्नम' और 'बेतवा बहती रही' मैत्रेयी पुष्पा के आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास में 'उर्वशी' नामक पात्र की सहायता से नारी की दुरवस्था को उन्होंने बताने की कोशिश किया है। गाँव की परिस्थितियों में रहने वाली स्त्रियों की पीड़ा इस उपन्यास में है। औरत को सिर्फ भोग की वस्तु बना देने वाले पितृसत्ता की अंधविश्वासों को इस उपन्यास में दिखाया है। यह उपन्यास पूरे अंचल की स्त्रियों की दुरवस्था को प्रदर्शित करता है। 'चाक' उपन्यास राजनीति की सत्ता में पीड़ित होने वाली स्त्रियों का संघर्ष है। यह उपन्यास स्त्री को द्वयं दर्जे देने वाली राजनीतिक षड्यंत्रों के खिलाफ बात करते है। लेखिका के अनुसार स्त्री को मनुष्यता का अधिकार अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

इस सन्दर्भ में राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार किस प्रकार मिलेंगे? स्वतंत्र चिन्तन और निर्णय लेने की क्षमता उसे हमेशा नहीं दिया जाता है। इसी प्रकार अल्मा कबूतरी उपन्यास में राजनीतिक षड्यंत्रों के खिलाफ आवाज उठाने वाली स्त्री को दिखाया गया है। स्त्री पक्ष में खड़े होकर लेखिकायें अपनी दायित्वों का निर्वहण करती है। पितृसत्ता आज के युग में अलग–अलग तस्वीरों के साथ मौजूद है। इस सन्दर्भ में भारतीय भाषाओं की अनेक लेखिकाएं पितृसत्ता के अंदर दबी हुई स्त्रियों को खोज निकालने का कार्य करता है। 'आधुनिक स्त्री लेखन आत्मविश्लेषणात्मक है और उसके 'मैं' का विस्तार इतना बढ़ गया है कि 'साड़ी दुनिया स्म गई है उसमें' सारा जेसेफ की रचनाएँ स्त्री पक्ष में खड़े होकर लिखा गया है। स्त्री विमर्श की एक रचना में स्त्रैणानुभव और उसकी बदलती आ रही भाषा स्त्री विमर्श का संकेत करता है। सारा जोसफ की 'पापत्तरा' में 'पेंन्नेजुत्त' अर्थात् 'स्त्री द्वारा लिखा गया' शब्द का प्रयोग एक प्रमुख चेतना बन गई थी। इस शब्द को साकार बनाने का कर्तव्य सारा जोसफ की आने वाली रचनाओं में भी जरूरी बन गया था। उनके पश्चात् आये मलयालम स्त्रीवादी लेखिकाएं इस शब्द का प्रयोग पर संकोच प्रकट किया है। यह शब्द एक प्रकार से एनी लेखिकाओं के बीच मुद्दा भी बन गया था।

इस शब्द की सार्थकता पर विद्वानों ने अनुकूल एवं प्रतिकूल मत स्थापित किया है।

सारा जोसफ के अनुसार स्त्रीवर्ग निम्नवर्ग के समान संघर्ष करती रहती है। स्त्री और निम्नवर्ग अशुद्ध बना दिए गए है। उनकी भाषा में भी अशुद्धि का प्रतिफलन होती है। अर्थात् पितृसत्ता के अनुसार यह शब्द 'पेन्नेजुत्त' अशुद्ध ही बन जाते है। सारा जोसफ की 'अलाहयुड़े पेन्मक्कल' (अलाहा की बेटियाँ) स्त्री जीवन को महत्वपूर्ण रूप से दिखाया है। देश के चरित्र, प्रादेशिक भाषा, हाशिये पर पड़ा जीवन आदि के साथ इस उपन्यास की समस्याएं दिखाए गए है। एक समाज की आर्थिक स्थिति सिर्फ पुरुषों पर केन्द्रित रहते है। इस उपन्यास में यह अर्थव्यवस्था को तोडा गया है। एक स्त्री अपनी मानसिक बल पर जीवन की अनेक कठिनाईयों की सामना करती है। यह पुरुषों के लिए साहसिक काम है। शारीरिक बल पर पुरुष आगे है तो एक स्त्री की मानसिक बल पुरुष के आगे बहुत ऊंचा है। 'ओतप्पू' में स्त्री की अशुद्धि की बात की गयी है। यह बताया जाता है कि संसार में पहली बार पुरुष को गलत काम करने की प्रेरणा एक स्त्री द्वारा दिया गया है। स्त्री को अशुद्धि के समकक्ष रखने की यह स्थिति प्राचीन काल से होता आया है। इसके विरुद्ध प्रतिरोध है यह उपन्यास। 'माट्टात्ती' में एक निस्सहाय स्त्री की कहानी बताई है।

नायिका 'लूसी' में पुरुषों के अंदर होने वाले पितृसत्तात्मक दृष्टी के खिलाफ आवाज उठाने की क्षमता कम होती है। 'ब्रिजित्ता' इस संदर्भ में सशक्त पात्र है। स्त्री की लैंगिक चेतनाओं की अलग–अलग दृष्टिकोण इस उपन्यास में लूसी द्वारा दिखाया गया है। ब्रिजित्ता की शक्ति और आर्थिक बल उसे पितृसत्ता द्वारा स्त्रीत्व रहित कठोर स्त्री के रूप में दिकिहाया जाता है। 'मट्टात्ती' उपन्यास तीन नारियों की कथा है जो अपने अस्तित्व समाज में प्रतिष्ठित करना चाहती है।''[3] सारा जोसफ की यह उपन्यास उनके अन्य उपन्यास 'अलाहयुड़े पेनमक्कल' से मिलता जुलता है। लूसी, ब्रिजिता और सेलीना के बीच विविध स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं को देखा जा सकता है। तीनों की चिंता विविध प्रकार से है। उपन्यास में ब्रिजिता एक कुलीन स्त्री के रूप में सामने आती है। वह समाज से लड़ते हुए नजर आते है। ब्रिजिता एक ऐसी स्त्री है जो अपने पैरों पर खड़े हुए है। वह स्वयं अपनी परिश्रम से धनिक बनती है। लूसी अनाथ होने के कारन उसे एक माँ की तरह पालती है। ब्रिजिता एक मजबूत औरत है। वह पुरुषों की आज्ञा सुनने वालों में से नहीं। वह चाहती है कि लूसी भी उसके ही तरह बने। वह लूसी की बालपन से समाज में व्याप्त पित्रसत्तात्मक व्यवस्था के बारे में समझा देती है ताकि लूसी भी मजबूत बन जाएँ। अकेले रहने वाली एक औरत को समाज से अनेक दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। ब्रिजिता एक कुलीन सम्पन्न स्त्री होते हुए भी वह अपनी जीवन में संघर्ष करती है। ब्रिजिता लूसि को अपने हमेशा संरक्षित रखना चाहती है। लूसी ब्रिजिता के आज्ञाकारी बन जाती है। ब्रिजिता के मौत के बाद लूसी ब्रिजिता की स्नेह समझ लेती है। वह अपनी जिंदगी आगे बढाती है। ब्रिजिता एक सशक्त नारी पात्र है जो पितृसत्ता के नैतिक मूल्यों की विरोध करती रहती है।'

स्त्री होकर जन्म लेना मेरे लिए गौरव की बात है'– इस प्रकार की अनेक बातें ब्रिजिता की सोच है। उनके यह ऐलान इस बात को सिद्ध करती है कि वह आज तक समाज में व्याप्त पुरुष वर्चस्ववादी मूल्यों एवं विचारों के खिलाफ है। यह सारा जोसफ की भी मत है। लेखिका अपनी स्त्री पत्रों को प्रतिरोध करने के लिए मजबूत बनती है। उपन्यास में अनेक पुरुष आते है जो लूसी प्रेम सम्बन्ध रखना चाहती है। पर उसकी सोच विचार एक सामान्य स्त्री के सामान न होकर सुदृढ था इसलिए उसे जो भी पुरुष मिलता है। सभी लोगों के अंदर की पुरुष

वर्चस्ववादी व्यवस्था को लूसी समझ लेती है। बालपन से वह काम करती है। ब्रिजिता के आश्रित होकर रहती है। सेलिना से प्रेम और पुरुषों के सम्बंधित बातों को लूसी समझ लेती है। लेकिन ब्रिजिता के आश्रित रहने के कारण उसे अपनी स्वतंत्रता का महसूस नहीं होता है। लूसी के साथ वह बाहर जाती है और स्वतंत्र महसूस करती है। सेलिना लूसी के अंदर एक आग पैदा करती है। अपने अंदर की भावनाओं को बहार लाना चाहती है। ब्रिजिता कभी–कभी लूसी को कभी कभी एक आज्ञाकारी औरत बन्ने के लिए मजबूर करती है। लेकिन लूसी उस तरह बनने की कोशिश नहीं करती।

ब्रिजिता लूसी को अपने घुटनों पर खड़े होने के लिए हमेशा मजबूर करती है। दसवीं पास होने क्ले बाद, पढ़ाई के लिए उसे एक काम ढूँढने के लिए मजबूर करती है। लूसी बचपन से खेती करती है। उसे काम करके जीने का आदत है। यह एक प्रकार से पुरुष सत्ता के खिलाफ एक विरोध भी है। औरत काम करके जीना कभी कभी समाज को स्वीकार्य नहीं। उसे हमेशा पुरुष के अधीन रहने के लिए बताया जाता है। यह उपन्यास इस सोच–विचार की विरोध करता है। यह उपन्यास पुरुष वर्चस्ववाद की उल्लंघन करते हुए नजर आते है। उपन्यास में अनेक स्त्री पात्र है जो जीवन आगे बढाने के लिए संघर्ष करती रहती है। यह उपन्यास स्त्री प्रतिरोध की गाथा है। 'आती' नामक उपन्यास में पारिस्थितिक नारीवाद का उल्लेखन हुआ है। स्त्री और प्रकृति के बीच की संबंध इस उपन्यास का मूल विषय रहा है। प्रकृति और स्त्री की इस संबंध को समस्याओं के साथ दिखाने की कोशिश किया गया है।

इस प्रकार सारा जिसेफ और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास स्त्री विमर्श की अनेक तथ्यों को खोल देती है। आज के युग में स्त्री लेखन की स्वरूप बदल जाते है। आज के स्त्रियाँ समाज की हित के बारे में अधिक सोच विचार करती है। स्त्री आज समाज भी अनेक क्षेत्र में सामने आ रही है। लेकिन पितृसत्ता के बदलते हुए रूप आज भी है। औरत को हर संदर्भ में औरत बने रहने के लिए बताया गया है। इससे सम्बन्ध में सिमोन का कथन है 'औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए अनुकूल बताया जाता है।''[4] आज की स्त्रियाँ इससे विभिन्न है। स्त्रियाँ अपने स्वत्व के बारे में व्यापक सोच रखती है अपने हित के अनुसार जीने की इच्छा आज के स्त्रियों में अधिक है। इसके लिए वह प्रयत्न भी करती है। स्त्री लेखन में लेखिकाएं इसी मुद्दे को सामने रखकर अपनी स्त्री पात्रों का निर्माण किया गया है। वह एक प्रकार से समाज हित के लिए संघर्ष करती है और अपनी स्वतन्त्रता के लिए भी।

संदर्भ :–

1. अनीता वर्मा, "मनुस्मृति", नागरी प्रचार सभा, दिल्ली पृष्ठ संख्या –115
2. शोभा वेरेकर, "नारी विमर्श", अभय प्रकाशन कानपुर, 2010, पृष्ठ संख्या 85
3. अनामिका, मन मांझने की जरूरत, पृष्ठ संख्या 41
4. डॉ विशाल देशपाण्डे, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, पृष्ठ 15

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 232-236

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मंजूर एहतेशाम के उपन्यासों में मध्यवर्गीय नारी का बदलता स्वरूप

शमीम. पी, शोधार्थी,
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल–695304

स्त्री समाज का अभिन्न अंग है। सृजन का पर्याय है, मानव जीवन का आधार है। महापुरुष, विद्वान, वैज्ञानिक या आम आदमी सब के पीछे प्रेरणा का स्रोत तो वही रही है। महिलाएं सदियों से विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों और बेड़ियों में जकड़ी हुई थी। धीरे–धीरे जन जागरण के साथ शिक्षा और स्वतंत्र सोच के प्रकाश ने उसमें आत्मविश्वास का संचार किया और निडर बनाकर अपने हक के लिए आवाज उठाने का साहस दिया। बरसों पुरानी रूढ़िवादी बंधनों, रीति–रिवाजों और विचारों के कारण भारतीय समाज में स्त्रियों का विकास अवरुद्ध हो गया था। समाज के किसी भी क्षेत्र में कोई योगदान नहीं था, सिर्फ घर–परिवार और बच्चों की देखभाल और चूल्हे–चौके के काम के लिए काबिल मान लिया गया था। शिक्षा के प्रचार–प्रसार, आत्म निर्भरता, नई सोच ने स्त्री को अपने हक के लिए आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। समकालीन रचनाकारों ने नारी के इस बदलाव को, बदलती विचारधाराओं और उसकी भूमिकाओं को बदलते परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है।

मंजूर एहतेशाम जी ऐसे रचनाकार है जिन्होंने अपने उपन्यास कुछ दिन और, सूखा बरगद, दास्तान–ए–लापता, बशारत मंजिल एवं मदरसा मे नारी जीवन की समस्याओं को व्यापक ढंग से चित्रित कर स्त्री जीवन की विडंबनाओ, समस्याओं और समय के साथ आते परिवर्तनों को गहराई से जांच परख कर नारी की चिर परिचित छवि से हटकर उस में आए परिवर्तन की संभावनाओं का विस्तृत विवेचन किया है। उनकी रचनाओं में नारी के जीवन में आए बदलाव, उनकी सोच एवं परंपरागत रूढ़ियों के बहिष्कार कर, नई चेतना, स्वतंत्र सोच एवं व्यवहार–युक्त नारियों का दर्शन कराया है। मध्यम वर्ग की पढ़ी लिखी नारी से लेकर निम्न वर्ग की गरीब असहाय, पीड़ित, बेरोजगार नारी का चित्रण उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। उनके उपन्यासों के प्रमुख स्त्री–पात्र पुरुष वर्चस्व को चुनौती देती हुई नजर आती हैं। परिवार समाज और स्वयं से जुड़ी कई पहलुओं पर वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम है। पुरातनकाल से किसी भी परिस्थिति में पति के साथ उसकी खामियों और प्रताड़नाओं को सहकर साथ निभाने वाली स्त्री को ही पतिव्रता का दर्जा दिया जाता था लेकिन आज की स्त्री अपने हक, अपने सपने, और परिवार की भलाई के लिए विवाह जैसे पवित्र बंधन को जीवन भर की बेड़ी मानकर आगे बढ़ने के बजाय, उसे तोड़ कर आगे बढ़ जाने में भलाई समझती है। मंजूर जी समाज के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं जिन्होंने अवश्य समाज के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्त्री जीवन में आए बदलाव को, जागरण को देख और महसूस कर

उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से शब्दबद्ध किया है।

मंजूर एहतेशाम जी ने अपने चर्चित उपन्यास 'सूखा बरगद' में नारी के बदलते सोच का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। वर्तमान युग की नारी विवेकशील हो चुकी है, अपने जीवन से जुड़े सभी पहलुओं पर निर्णय लेने में वह सक्षम हो गई है। सूखा बरगद उपन्यास की रशीदा ऐसी ही एक पात्र है जो आत्म निर्भर, सुशिक्षित नारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। वह एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की शिक्षित नारी ह। वह जिस रूढ़ि ग्रस्त समाज में आंखें खोलती है, और उसे हर मोड पर खुली आंखों से देखती है। वह एक बेहद मजबूत पात्र है। बहुत पेचीदा और अनदेखे रास्ते के बीच अपने लिए नई राह का चुनाव करती है। जाहिर है कि उसका रास्ता मुश्किलों से भरा है। एक जकड़े हुए समाज में ऐसी प्रखर सोच वाली औरत के लिए अपना रास्ता चुनना और अपनी बात पर कायम रहना कठिन काम है। तमाम मुश्किलों के जूझते हुए भी रशीदा उच्च शिक्षा पाने के बाद आकाशवाणी में नौकरी करती है और अपने समय और समाज की तार्किक आलोचना करने के साथ–साथ तरक्की के सूत्र भी प्रस्तुत करती है। "रशीदा कहती है यही साल मेरे एम.ए. फाइनल का था पास होने के बाद मैंने बिना अब्बू को बताए रेडियो स्टेशन पर एनाउंसर के लिए अप्लाई कर दिया और मुझे नौकरी मिल गई। यह नौकरी जिसके बारे में सुनकर अब्बू बहुत खुश नहीं हुई घर के घुटन भरे वातावरण में मुझे कुछ दूर रहने में बहुत सहायक हुई"।[1]

रशीदा रेडियो स्टेशन पर नौकरी करने का फैसला स्वयं करती है सही गलत का निर्णय जांच–परख कर निर्णय लेने में सक्षम है। इसके लिए अपने पिता से सलाह मशवरा करना भी जरूरी नहीं समझती है। रशीदा एक ऐसी ही प्रगतिशील विचारों वाली स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो दोस्ती तथा प्रेम के लिए सांप्रदायिक और मजहबी दीवारों को तोड़ देती है। उसका मित्र भाव विजय के साथ है इस रिश्ते को अपने मनचाहे अंजाम तक ले जाती है। रिश्ता कहां तक निभाना है इस समय सीमा का निर्धारण भी वो खुद करती है। विजय को एक मोड़ पर आकर वह अस्वीकार कर देती है तो इसके पीछे दोनों का अलग–अलग धर्मों का होना नहीं है बल्कि इसके कारण मानसिक है। लैंगिक धरातल पर वह तमाम पुरुषवादी रुझानों का विरोध करती है यह एक प्रकार के पुरुष के अनाधिकृत वर्चस्व को नकारना है। रशीदा की मां उस पुरानी पीढ़ी का प्रदर्शित करती है जो अशिक्षा के कारण कई बेमतलब रूढ़ियों से खुद को बांधे रखती है। शोहर मजहब में विश्वास नहीं रखता लेकिन वह खुद मजहब को मानने के बावजूद भी उससे रिश्ते ही बनाए नहीं रखती बल्कि उसके दिखाए रास्ते पर बेशक अनचाहे तरीके से भी चलती है। लेखक व्यक्त करना चाहते हैं कि औरत केवल दासी भाव से पुरुष की हर बात नहीं मान रही बल्कि अपनी बात रखते हुए दोनों के बीच का एक ऐसा रास्ता ढूंढ रही है जो टकराहट के बावजूद रिश्ता और परिवार बचे रह सके।

पढ़ी–लिखी आत्मनिर्भर स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर नहीं होती। इसलिए वह अपने बच्चों और परिवार वालों का पालन पोषण करने की जिम्मेदारी स्वयं उठाती है। पुरुष अपनी पारिवारिक उत्तरदायित्व को निभाने में लापरवाही या उपेक्षा दिखाता है तो स्त्री उसकी परवाह न करते हुए जीवन मे आगे बढ़ना चाहती है। 'दास्तान ए लापता' उपन्यास में राहत ऐसे ही स्त्री है जो अपने पति जमीर अहमद खान के व्यवहार से अत्यधिक परेशान एवं दुःखी है जो परिवार की किसी भी जिम्मेदारी से अपने आपको मुक्त करता है। इस वजह से राहत अपनी जिंदगी का बहुत बड़ा फैसला करती है और अपने पति से कहती है– "मैं आपसे तलाक लेना

चाहती हूं, आगे जो मेरी मर्जी होगी करूंगी। किसी तरह इन बच्चियों की जिम्मेदारियों से सुबुकदोश होने की कोशिश करूंगी। उस के लिए मुझे जो भी मेहनत मशक्कत करना पड़े बुजुर्गों की खिदमत करूंगी और बाकी मानदा जिंदगी के लिए किसी मसरत की तलाश"।[2] मंजूर एहतेशाम जी ने अपने उपन्यासों में ऐसी स्त्रियों का चित्रण किया है जो समझौता करते हुए घुटन और संत्रास की जिंदगी जीने के बजाय स्वतंत्र जिंदगी जीने की पक्षधर हैं। अपने अस्तित्व के प्रति पूरी सजग होकर नारी विवाह जैसे बंधन के बोझ को जीवन भर धोते रहने के बजाय स्वतंत्र जीवन को बेहतर मानती हैं। जमीर अहमद खान राहत को तलाक लेने से मना करता है तब राहत कहती है। "मेरे बर्दाश्त की ताकत जवाब दे चुकी है और मैं अभी मरना नहीं चाहती हूँ। नहीं तो अपनी बेटियों की खातिर ना मैं उस घर में वापस आना चाहती बच्चों की अगर आपको कुछ परवाह है तो मुझे समझने की कोशिश करें, है तो बहरहाल वह आपकी ही औलाद, आपको दुनिया में क्या कमी थी जिस चीज को जब चाहे हासिल कर सकते हैं। असल मजबूरी तो हम जैसों की है"।[3] ऐसी ही एक पात्र है 'कुछ दिन और' की नायिका जो अपने पति की निष्क्रियता और परिस्थितियों से तंग आकर अपने पति से अलग होने का निश्चय करती है। मानसिक शारीरिक रूप से सभी बीड़ाओ और व्यथाओं के बावजूद जीवन में कोई बदलाव ना होते देखकर राजू को छोड़ने का निर्णय करते हुए वह कहती है– "शिकायत वहां होती है जहां कोई समझौता संभव हो मेरा अब तुम से कोई संबंध नहीं तुम चले जाओ यहां से....."।[4] उपन्यास के अंत में वह सजग सशक्त एवं आत्मनिर्भर नारी के रूप में पाठकों के आगे उपस्थित होती है। वह ऐसी नारी है जो अब आगे जीवन में अपने पति के कर्मों के बोझ को सहते, रोते बिलखते उसकी गलतियों को अनदेखा करते आगे बढ़ना नहीं चाहती बल्कि अपने बच्चों की खातिर जीवन से अकेले लड़ने का निर्णय व आगे बढ़ना का जोश इसमें मौजूद है।

'बशारत मंजिल' उपन्यास में सुहासिनी और संजीदा अच्छे दोस्त थे। सुहासिनी साहसी और हिम्मत वाली महिला है। वह उस समय की महिला थी। जब महिलाएं पदों में रहती थी और किसी भी सार्वजनिक जीवन में उनकी कोई हिस्सेदारी नहीं रहती थी। उस समय सुहासिनी सामाजिक कार्यों में सक्रिय रहती थी। "जिसकी कल्पना दिल्ली या भोपाल में तो की ही नहीं जा सकती थी। सुहासिनी ढाके और कलकत्ते में मर्दों के शाना–ब–शाना रहकर जिंदगी गुजारने की हिम्मत रखती थी"।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने बशारत मंजिल उपन्यास के माध्यम से साहसी नारी का वर्णन किया है।

मंजूर जीने अनमेल विवाह की समस्या को 'पहर ढलते' उपन्यास के माध्यम से व्यक्त किया है। निर्धनता एवं मजबूरी के कारण शबनम के माता–पिता अपनी बेटी का विवाह अधेड़ उम्र के व्यक्ति हनीफ मियां से करते है जो उसके पिता रहमान के हमउम्र हैं। उनके आर्थिक संपन्नता के प्रति तो शबनम आकृष्ट है लेकिन सभी सुख एवं ऐशो आराम के बावजूद संतुष्ट जीवन नहीं बिता पाती। वह शहाब नाम के युवक से शारीरिक संबंध बनाती है जिससे परिवार में तनावपूर्ण वातावरण बना रहता है। वह विवाह व्यवस्था के खोखलेपन एवं स्वार्थ संबंधों के दिखावे पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। कई बार चाह कर भी शबनम हनीफ मियां के साथ दांपत्य संबंध को नहीं तोड़ पाती है। शबनम सोचती है "शादी के बाद वह घर के इसी कमरे में दुल्हन बनकर आई थी। शादी के वक्त खुद उसकी उम्र इक्कीस साल थी और हनीफ साहब सैंतालीस के थे। हनीफ साहब की दरअसल अब्बा से दोस्ती थी। हनीफ साहब के अब्बा आजम साहब स्टेटस के सबसे बड़े ओहदेदार रहे थे। वे अब्बा की उम्र में काफी बड़े थे और अब्बा के दोस्ताना तालुकात उनकी औलाद खास तौर पर हनीफ से सब से ज्यादा थे"।[6]

आर्थिक समस्याओं के उत्पन्न होते मध्यवर्गीय नारी भी अनमेल विवाह करने के लिए बाध्य हो जाती है और इस तरह जीवन में सिर्फ धन को महत्व देते हुए वह वैवाहिक बंधन को सिर्फ आर्थिक लाभ के लिए बचा कर रखती है और वह फिर शहाब नामक व्यक्ति से शारीरिक संबंध भी बनाती है जिसमें उसे कोई ग्लानि का भाव नहीं होता है।

मरियम एक संपन्न और शिक्षित परिवार की लड़की थी जो साबर नामक मुसलमान लड़के से प्रेम कर उसके साथ विवाह में बंध जाती है। इस फैसले के साथ ही उसके जीवन में संघर्ष का दौर शुरू हो जाता है। वह आत्मनिर्भर एवं सशक्त महिला है जो जरूरत पड़ने पर अपने परिवार का भार अपने कंधों पर संभालती है। लेकिन विवाह के कुछ वर्षों के बाद दोनों के बीच दूरियां बढ़ने लगती है। इस उपन्यास में मरियम के प्रति साबिर को मरियम से शिकायत थी दूसरी औलाद के लिए रजामंद न होकर बिना उसे बताएं अबोरशन लेने की और उसके बाद साबर की मर्जी के खिलाफ बिटिया की शादी करने की। देखा जाता है कि शादी के बंधन में बंध जाने के बाद पत्नियां पति की कमियों को नजरअंदाज करते हुए रिश्ता निभाती हुई सब कुछ सहते हुए आगे बढ़ती है लेकिन मंजूर जी की उपन्यास में औरतें अपने अस्तित्व के प्रति पूरी तरह सजग हैं। वह किसी भी संबंध में फंसकर अपने व्यक्तित्व को खोना नहीं चाहती हैं। आवश्यकता पड़ने पर पूरे परिवार का संरक्षण अपने हाथों में लेकर अपने बच्चों के हित के लिए वह आगे बढ़ती है जो इस नई सदी की नारी के प्रमुख लक्षण हैं। घुटन और संत्रास की जिंदगी जीने के बजाय वह स्वतंत्र जिंदगी जीने की पक्षधर है।

अनीसा 'दस्तान ए लापता' की एक ऐसी पात्र है। जिसकी असली गलती है कि वह बेसहारा और यतीम है हालांकि उसके मामी और मामा को उसका पालन पोषण करते हैं लेकिन वह लगातार उसके मामी और मामा द्वारा शारीरिक रूप से शोषण का शिकार होती है। अपने पालन पोषण की कीमत उसे अपने शरीर के शोषण से चुकानी पड़ती है। इसी कारण वह शराब और सिगरेट पीने की आदि बन जाती है। जमीर भी उसके प्यार को स्वीकार नहीं कर पता है तो अंत में वह आत्महत्या कर लेती है। लेखक ने अनीसा के माध्यम से ऐसी स्त्रियों की परिस्थितियों का चित्रण करने का प्रयास किया है जिनका लगातार शोषण होते ही रहता है, कभी गैरों द्वारा कभी अपनों के द्वारा। अपने ही घर के संबंधियों के द्वारा भी शारीरिक अत्याचार होता है, जिस कारण से आत्महत्या जैसे गलत कदम उठाने के लिए वह मजबूर हो जाती है। मंजूर एहतेशाम जी के स्त्री पात्र मुखर और बिंदास है। वे अपने साथ घटी घटनाओं का खुलकर बयान करती है। पुरुषों के समक्ष कहीं कमतर नहीं है। अनीसा और जमीर के बीच के संवाद को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है– "यह सारी बातें तो मैं उस पक्ष से कर रही थी तो तुम आज तक मेरे लिए लेते रहे हो अनीशा ठुनका मारकर हंसी थी जो मेरी नजरों में झूठ भी है और मुझे अस्वीकार थी। तुम मुझे मेरे भाई की याद दिलाते हो यह अपनी जगह सही है, लेकिन में ने तुम्हें हमेशा एक दोस्त की हैसियत से समझा है, एक दोस्त जिसे में एक मर्द की हैसियत से जानने की इच्छुक हूं"।[7]

'बशारत मंजिल' उपन्यास में राजनीति के प्रति स्त्री के लगाव को भी दर्शाया गया है। राजनीति में चाहे पुरुष हो या स्त्री हो कोई भी चुनाव लड़ सकते हैं, और इसके लिए संविधान में भी अनुमति प्रदान की गई हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी राजनीति और स्त्री के संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया गया है कि बातों में अंदाजा हुआ था वो की असली दिलचस्पी राजनीति में थी और वह एक दिन इलेक्शन जीतकर वजीर बना चाहती थी। इस

कथन के माध्यम से राजनीति के प्रति स्त्री का लगाव साफ–साफ दिखाई देता है आज स्त्री अन्य क्षेत्रों की भांति राजनीति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान देकर समाज में अपना स्थान और भी समृद्ध बनाना चाहती है।

निष्कर्षतः हम इस कह सकते हैं कि मंजूर एहतेशाम जी ने अपने उपन्यासों में आधुनिक सुशिक्षित जागरूक नारी के साथ–साथ निम्न वर्ग की असहाय पीड़ित एवं अशिक्षित नारी का चित्रण किया है। आधुनिक समाज में मध्यवर्ग की स्त्रियां पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ते हुए पुरुष प्रधान समाज में अपनी एक अलग पहचान बना चुकी है। अपने पैरों पर खड़ी नारी आत्मविश्वास स्वाभिमान और सामाजिक सहभागिता को परिलक्षित करती है। अपने अधिकारों के प्रति वह सजग है। विवाह जैसे बंधनों के खोखलेपन से वाकिफ है। अशिक्षित नारी अंधविश्वास, रूढ़ियों में जकड़ी जीवनभर संघर्ष करने के लिए बाध्य हो जाती है। ऐसी स्त्रियाँ रोजगार एवं आर्थिक समस्याओं से भी जूझती नजर आती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सूखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 104
2. दास्तान–ए–लापता, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 227
3. दास्तान–ए–लापता, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 232
4. कुछ दिन और, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 97
5. बशारत मंजिल, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 116
6. पहर ढलते, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 63
7. दस्तान ए लापता, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं. 116

मोबा. 7356108164

ई–मेल : shameemriyas78@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 237-244

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

HISTORICAL ASPECTS REVEALED IN *ŚRĪNĀRĀYAṆAVIJAYAM* MAHAKAVYAM

Dr. Kiran A.U.
Asst. Professor, Dept. of Sanskrit Sahitya, Sree Sankaracharya University of Sanskrit,Kalady
R. C. Ettumanoor, Kottayam distt., Kerala.

Keralites have made valuable contributions in various branches of Sanskrit literature.Mahakavya is a movement that grew out of the poetic branch of Sanskrit literature. *Śrinārāyaṇavijayam* Mahakavyam written by Professor K Balarama Panicker is the most important epic poem among Kerala Sanskrit epics especially historical epics. Professor K Balarama Panicker is a writer well versed in Sanskrit language and Indian philosophies. He was inspired to compose such a work when the poetic scene had degenerated into a mere platform for laying out densely decorated descriptions. The poet had an indomitable desire to express the life story of Sri Narayana Guru through innovative writing systems so that the soul of Kerala and Keralites could be understood by the outside world. *Śrinārāyaṇavijayam*has been composed by cutting as much as possible the artificial modes of a great poem, avoiding the dryness and boringness of objectivity that a historical book can have. Its theme is to transform the poem into a modern epic full of beauty. Its theme is the growth and struggle of the Kerala Revival movement, as well as the role played by Sree Narayana Guru in the movement and his literary engagements.

Professor K Balarama PanickerLife and works :

Famous as a Vedanta scholar, Sanskrit teacher, poet orator and writer, he was born in 1085 Makarat (1910) in the village of Aivarkala near Mannatikshetra in Pathanamthitta district in Manapalezhamtu family. Father Kochu Kunju Panicker Mother Narayaniamma (Karunagapally The valakkara Kaithakutty Ashantezham family member). Maternal family members were doctors and educators. Famous among them is Dr. who was a doctor in Ayurveda and Allopathy. A. N. Panicker Former Chief Minister R Shankar is the son of father Kochu Kunju Panicker Jesthan (Raman Vaidyar in Puthurvilabuilders.

Education :

Even before the age of five, Balarama Panickers started their education and M. Padmanabhan Ashan (Kollam, Kollurvila), a local man, stayed at home and taught the Panickers. He joined the second class in the recently started primary school. Panicker, who passed class 5, was appointed by his father for Sanskrit education. Chennithala KeralavarmaThirumalpad, who ran a medical clinic near the Mannatikshetra, taught children Sanskrit lessons. At that time Kanchipuram Gopala Sastri lived near the palace and taught Sanskrit to the children. The

Shastris, who received the special favor of Sri Moolam Thirunal by participating in the Navratri Vidya Sadas, were former students of the Sanskrit Vidyalaya conducted in the temple at Kottathala Pana near Kottarakkara. Aruvasseri Kochu Kunju Jyotsyan, Nanu Jyotsyan and Puttur Ji Narayana Shastris were very fond of the Panikaro Sastris who understood them as well. After a year, the Shastris left Kanchipuram. The knowledge of the Sanskrit language acquired from the Sastris at that time contributed to the enthusiasm of the builder's education. Even before the age of five, Balarama Panickers started their education and M. Padmanabhan Ashan (Kollam, Kollurvila), a local man, stayed at home and taught the Panickers. He joined the second class in the recently started primary school. Panicker, who passed class 5, was appointed by his father for Sanskrit education. Chennithala Keralavarma Thirumalpad, who ran a medical clinic near the Mannatikshetra, taught children Sanskrit lessons. At that time Kanchipuram Gopala Sastri lived near the palace and taught Sanskrit to the children. The Shastris, who received the special favour of Sri Moolam Thirunal by participating in the Navratri Vidya Sadas, were former students of the Sanskrit Vidyalaya conducted in the temple at Kottathala Mana near Kottarakkara. Aruvasseri Kochu Kunju Jyotsyan, Nanu Jyotsyan and Puttur G Narayana Shastris were very fond of the Panikaro Sastris who understood them as well. After a year, the Shastris left Kanchipuram. The knowledge of the Sanskrit language acquired from the Sastris at that time contributed to the enthusiasm of the builders.

He looked for work as a teacher in Aluva Advaita Ashram Sanskrit School and Chavara Guhanandapuram Sanskrit School in the same year. In 1935, he became a teacher in the poetry department at Thiruvananthapuram Sanskrit College. During this time he earned "Sahitya Shiromani" and "Vedanta Shiromani" degrees from Madras University. Tolur Raghavendra Acharya, A Parameshwara Shastri and Ravivarma Tampan assisted the Panickers in this regard. Later he became the president of the Vedanta section. Following the temple entry announcement, Panickers were admitted to the Vidya sadass held by the Travancore royal family and Chitra Thirunal Maharaja was favoured. The drama *Annadatruthacharitam* written by Panickar was presented to the Sanskrit college students by VJ. Presented at T Hall. When B.A. and M.A. courses were introduced in Thiruvananthapuram Sanskrit College on the recommendation of the expert committee, it was helpful to the Panickers that Mahapadhyaya graduates were allowed to appear for B.A. and M.A. examinations privately. BA in 1951 and MA in 1953

Activities in the field of Culture :

He worked as the secretary of the Chitrodaya Pandita Examination which was formed in 1947. In 1951, Chitrodaya Pandita Parishad was transformed into the Kerala branch of Sanskrit Vishwapariksham with President Dr. Rajendra Prasad as President, Uttar Pradesh Governor KM Munshi as Chairman and Chitrathirunal as Vice President. Panicker became an active worker of Vishwa Parishad. The working committee of Chitrodaya Pandita Pariksham, consisting of Sreechithira Thirunal (Patron), High Court Judge K Shankara Subyar (President), Sanskrit College Principal N Gopalapilla (Vice President), Kumbalath Shankupilla and Retd. Judge N Govindan, gave full support to the work of the Panikars. As a result of continuous petition of the Parishad, the Travancore Devaswom Board granted free hostel to 90 students of Thiruvananthapuram Sanskrit College and scholarship to 90 others. A part of Poojappura Palace was given to Chitra Thirunal Hostel to run it and the hostel started in 1951.

Participating in the meetings of the Sanskrit Vishwa Parishad held at Kashi, Nagpur, Tirupati, Puri and Kurukshetra, Panicker's discourses in Sanskrit were praised by scholars. In

1964, Panicker gave a Sanskrit lecture and Vakhyarvarnanam at the Vidvatsadas held in Madurai under the chairmanship of Swami Kamakoti Shankaracharya. In 1965, Sringeri Shankaracharya Swami held a three-hour scientific discussion with Panicker on Nyayakusumanjali Siddhants at the large Koical palace in Thiruvananthapuram. Pleased with that, Swamikal congratulated Panicker and visited the Sanskrit College. Panicker's welcome as Principal and Swamikal's lecture was in Sanskrit. Travancore Devaswom Board honored Panicker with Ponnada, Sri Shankara Award and Golden Seal (1973). Kamakoti Shankaracharya Swamikal Ponnadayanich (1974) for holding a scientific discussion in the Vidyasadass. President V.V. Giri presented a certificate of honor, a golden seal and a silk with the Ashoka Chakra to eminent Sanskrit scholars. A lifetime honorarium was also granted. Thus it became possible to carry out research and writing in any university in India. He availed himself of the Kerala University Library for research and writing.

In 1959, Panicker was appointed as a professor of Vedanta branches and later of Nyaya branches. In 1962, he became the principal of the Sanskrit College. 300 scholarships of Rs.450 each per annum were allowed to be given to Sanskrit college students. Children studying in Sanskrit colleges and Sanskrit schools were also allowed complete fee free. As a result of the efforts of the Parishad, the job prospects of Sanskrit MA graduates have increased by making Sanskrit a compulsory subject in KendriyaVidyalayas. MA courses and professorships were introduced in all the four departments of the Sanskrit College. All this happened when he was the principal. Retired in 1965. He was then appointed as Research Professor by the University Grand Commission. Every day except public holidays was devoted to research in the university library. The Mahakavya *Śrinārāyaṇavijayam* was a result of this.Aranmula Narayanapilla Vaidyayan, (the son of the famous physician Kunarakam Parameswarapilla), prepared a commentary on the work *Paramabhattarakasatakam* in Malayalam (1976). For 50 verses only.

He handed over the ancestral house of three acres of coconut grove and two new buildings to the Kerala government with a request to build an Ayurvedic dispensary for the public. Manapalerat Kochu Kunju Panicker Memorial Government Dispensary has been running there for the last 35 years. Panicker lived for a long time on the bank of Parvathi Puthanaar on the east side of Kochuveli railway station in Karikakam village, Thiruvananthapuram. The disease had taken a toll on him. It was difficult to even write. Finally, the ability to speak was also destroyed. Died on 23 July 1978.

Works :

Sanskrit :

Annadatritacharitam, *Kavyamanjari* (Collection of stanzas), *Dhatudeepika*, *Sabtarupavali*, *Sree Narayanavijayam*, *Subantakaumudi.*

Śrinārāyaṇavijayam was given a grand by the central government and the author himself composed the commentary.

Malayalam :

Advaita Vedanta Siddhantangal, Atmopadesakam (vyakhyanam was incomplete), *Kalidasa kadhakal, TulikachalanangalRand bhakangal, Dakshina, Durgananda Vilasavyakhyanam, Paramabhattarakasatakam Vyakhyanam, Bhagavadgitasaram,*

Mahabharata kadhakal, Raghurajacharitam, Raghuvamsa vyakhyanam, Ramayana kadhakal, Vicharavedi. Vyasante Cherukadhakal, Shakuntala, Sri Krishna Vilasa Vyakhyanam, Sri Narayana Gurudevan, Sri Narayanaguru Prabandangalilude, Sree Narayana Siddantangal

English :

A simple survey of important Indian philosophies, Sree Narayana Guru, An inquiry into the relationship between Buddhist and Advaitic metaphysics, Latest development of Advaita philosophy in Kerala after Sree Sankara, India has a traditional philosophy - it is monism or non-duapamatPoetic purpose.

Śrinārāyaṇavijayam Mahakavyam is a work that has earned Professor K Balarama Panicker a respectable position among Sanskrit literature. Its first edition with Sanskrit commentary was published in 1971 and the second edition with Malayalam commentary in 1974. There are 1551 hymns in 21 svargas and three appendices. This poem is composed with the intention to know and inform about Sree Narayana Guru and the cultural realm he represents. The poetic composition has been done by determining the place and form of the doctrines of Sri Narayanaguru among the Indian masters. The purpose of making saffron is to remove direct harm to Sree Narayana Siddhanta through misinterpretations of immature.

AIM OF THE POETRY :

An introduction containing 12 slokas is added before the beginning of the canto. Sri Narayanaguru has interpreted and explained the principles of Sanatanadharma which begin with. Kavya Lord Sree Narayana Guru is seen as the Mahacharya who brought the religious movements of Sri Buddha and Sri Sankara into practical terms. It can be said that the mastery of this synthesis presented in the introduction is the content of Sree Narayana Vijaya.

Sarga one to four narrate the stories from the protagonist's birth to his sacrifice. Subrahmanya Upasana, Features of Sree Narayana Darshan, Siva Pratishta at Aruvipuram, Establishment of Sivagiri Mutt. Things like Sharada Pratishtha are the theme of up to 9 sargas. The interpretation of the Ekajati message, the refutation of the Chaturvarna theory and the stress on the theory that all religions are monoforms are dealt with in the tenth and eleventh Sargams. Along with the history of the Advaita Ashram and Sanskrit Pathshala at Aluva, Sri Shankaracharya Charitam is also included in the twelfth sargam. Part 1 ends with this.

LITERARY ASPECTS :

See the description of Gurudev's entry into Mathurapuri on pilgrimage. In this, the verse beginning with Samagatam says that Madhurya is the happiness with the feeling that melts the mind of the quality of Madhurya. The people worshiped Sree Narayana Guru, who entered the city of Madurai, proclaiming the greatness of Madurai Bhakti, as a whole group of devotees. The verse beginning with an example of the arthaguna of Ardhavyakti. Artha guna is the presentation of the idea in such a way as to create a vivid impression of the object described. Even though Gurudev, who had such supernatural splendor and mahapurusha characteristics, held the status of a monk, the people of Madurai did not make a mistake in thinking and respecting him as the re-incarnated Lakshmi Vallabha, Sri Krishna. Lord Vasudeva is Kamsahantha and Koovalayapeeda is Mathagajadhwasi. Narayanaguru has also destroyed

Kamsa, which is Samsara, and destroyed Madayana, which is desire. The Acharya Swarupa who goes from Madurai to Vrindavan is also presented by the poet as supernatural.

Śrinarāyaṇavijayam is a beautiful Mahākāvya in twentyone cantos. In simple Sanskrit language it deals with the life and activities of Śrīnārāyāṇaguru. This Mahakavya has brought great popularity to Śrinārāyaṇa- guru all over India. It will give an answer to the question; what is the place of Śrinārāyaṇaguru among the social reformers and spiritual leaders?

Title of the work. The title *Śrinārāyaṇavijayam* can be explained asSrinārāyaṇasyavijayam meaning the victory of Srinarayana. The word Śrinārāyana can be further explained as śriyāyuktahnäräyanan meaning narāyaṇa enjoying prosperity. The name narayana denotes God in man, God who lives in constant association with the human being (nara). If we look at the total life and activities of Narayanaguru, in a Vedantic perspective, we can certainly see that be lived a life that fully validated the name Narayana.

Contents : The poem *Śrinārāyaṇavijayam* verifies the great life and notable activities of Narayanaguru. At the outset, in a brief and attractive style, the poet introduces to us the city of Trivandrum, the beautiful and famous village Cempalanti near the city, the temple called Manakkal situated there and the ancestral home of the Guru named "vayalvara". Certain notable facts about the Guru's father and his uncle krişhna, a famous physician, are presented subsequently.

A vivid picture of the birth, education and subsequents in the life of the Guru's follows: It was on the day of catayam star in the month of cingam (1885 A.D.) that Kuṭṭiammā, the housewife of Vayalvārath house gave birth to the Guru.

Attaining youth, the Guru renounced domestic life. His father sent Nila, the son of the priest, to bring the Guru to the path of secular life. Nila conveyed the message he had. On hearing it, the Guru could not control his smile. Nila misunderstood this as his consent to marriage and informed the Guru's father of it. Born after this, the Guru's uncle fixed the muhürtha for the marriage ceremony and made the necessary arrangements for the purpose. On the wedding day, the Guru's sister went to the bride's house accompanied by the relatives, as it was the custom that prevailed in those days.

The bride was brought to the house of the Guru. But the Guru was not there. Those who went in search of him found him in the midst of a forest. The Guru's uncle approached him and begged him to return home. The entreaties proved to be of no avail and the Guru went away from there, renouncing family life.

The pilgrimage of the Guru is described in the fifth canto. On his way he saw Bälabhaṭṭāraka at Trivandrum and through him he obtained spiritual association with Aiyyāvu of Thycaud. At the appropriate time Aiyyavu imparted Brahmavidya to the Guru.

The Guru installed an idol of Śiva at Aruvippuram (on the banks of Maruthvamala). He travelled over many a place in Kerala and reached Varkala. He established a math at Siuagiri and built a temple dedicated to goddess of learning. His discourses with punnasseri Nilakantha Śarma and a Christian the ologist regarding religious principles are described in the tenth and eleventh cantos. He built an Asrama and a Sanskrit Pathaşālā at Alwaye.

The great assembly of scholars representing all the religions of the world is described in the 14th canto. He gave his consent to form sahodarasangha and Ayyappan, a confident of the Guru, became the secretary.

Great men like Tagore and Mahatma Gandhi visited Śivagiri. Tagore was very much impressed by the Guru. The Guru explained the nature of the caste system to Gandhi in a scientific way. He stated that the essence of all religions was one and the same. The Srinarayanadharmaparipalanayoga was registered in the Guru's name. A dharmasanga was also formed to train ascetics. The work concludes with a description of the samadht of the Guru.

Śrinārāyaṇaguru: Śrinäräyanaguru, the hero of the poem, was one among the eminent reformers of the human race. He was born in a small village in Kerala, called cempalanti. In order to draw the attention of the whole world to the achievements of the Guru, Prof. K. Bälarämapanikkar wrote this Mahakavya. The people of Kerala respected the Guru as a great religious teacher and social refor- mer.

As a student the Guru surpassed his companions. On some occasions he excelled even his teacher in clarifying the sense of certain verses. He was very kind towards the poor. He loved all alike.

The Guru was a lover of loneliness. Even in his childhood he spent much of his time in deep meditation. IIe spent his leisure in the forest tending cows and composing stotras. In him there was no touch of the aggressiveness often found among children. His calmness made everyone respect him.

The Guru liked an ascetic life even in his early days. On the day fixed for his wedding by his relatives without his permission, he abandoned his family and relatives forever. He preferred to seek a remedy for the misery of the people, which he considered to be his life-mission.

The Guru was a social reformer. He was all out to find a remedy for the social inequality among the people. He consecrated temples for the common people who had no right to enter the orthodox Hindu temples. The installation of an idol of Śiva at Aruvippuram was his firststep towards the goal. He fought a peaceful battle against untouchability, which prevailed then, he put an end to several improper customs (anācāras) of the Hindus like Tālikettu, Through out his life he was against evils like drunkness, violence, etc. He established several schools and mutts for the uplift of uneducated people.

The Guru was a philosopher who practised what he reached. He taught that all men belonged to one race and one caste. The difference was only in men's creed, dress and language. Like bovinity among cows, humanity marks out the human-kind. Considering the low-caste children as his own, the Guru brought them up and ate food with them. He established an Advaitāśrama for the spiritual uplift of the people.

The Guru was an excellent conversationalist. His conversations with Mahatma Gandhi, Tagore, and others are good examples of this. Without creating the slightest feeling of bitterness, he silenced all opposition with wit and humour.

Besides being an organiser, the Guru was also a Poet and literary genius. He composed several devotional and philosophic poems in Sanskrit, Malayalam and Tamil.

Sentiment : The hero of the poem *Śrinārāyaṇavijayam* is a saintly man. He renounced the worldly life even at an early age. So there is no place for any sentiment like Sringāra or love Vira or heroism except Śānta. Though Santa is the main sentiment the description of the lamentations of the people at the samadhi of the Gura is full of pathos.

Figures of speech : The author uses appropriate figures of speech in keeping with the nature of the description. Upama occurs more frequently. The comparisons of the city of Trivandrum to Parvati and the Guru to Dakşiṇāmürti, etc., are examples of Upama. The other figures of speech used by the author are Svabhāvokti, Rüpeka, utprakşa, Drştānta, etc.

Metres : The poet has employed different metres in this Mahākāvya, Most often the author employs the same metreupto the end of a canto. The important metres used by him are Anuştubh and Upajāti, Malini, Mandākrānta, Prthvi, Sikhariṇi, Vasantalitaka, etc., are also met with in many parts of the poem.

Style : The poem is written in a simple, elegant and graceful style. The author uses the Vaidarbhi style by and large. The description of the Guru as a child, lying near his mother.

"Sulakşaṇamsūryamivajvalanta m suśāntamānandakaramkumāram.

smerānanamtatrasamīkşyabhaktyāvavandiresütigrhasthanaryah-"

is an example. The face of the child is lit with a smile and he shines like the bright sun.

Social Conditions : At the time of the Guru social life in Kerala was marked by casteism and untouchability. The low- caste people were strictly prohibited even to enter temples and only Brahmins had the authority to install and worship the image of God. Most of the people of Kerala were uneducated. Several improper customs like tālikeṭṭu also existed in those days. The presence of the bridegroom was not necessary for the marriage function. His sister presented clothes and jewellery to the girl to be wedded and took her to the bride- groom's house.

CONCLUSION :

In his epic poetry *Śrinārāyaṇavijayam* Prof. K. Balaramapanicker tries toenlighten us with the principles of Sanathanadharama that the Guru upheld, interpreted and explained. It is Gurudev who has distinguished us the dharma and adharma in the light of reason and experience.

The poet sees Sree Narayana Guru as a practical Advaita teacher who synthesized the ethical movements of Sree Buddha and Sree Shankara. It can be said that the mastery of this synthesis presented above is the content of the epic poetry *Śrinārāyaṇavijayam.*Therefore, this poem has a commendable position among the historical epics of kerala and itstheme is very relevant.

REFERENCES :

1. *The Śrinārāyaṇavijayam* with commentary by Prof. K. Balaramapanicker. Valsala press, Trivandrum, 1971.

2. *Mahākāvyaprasthānam* by Sri. T.G. Madhavankutty, Kerala Bhasha institute, Nalanda, Trivandrum, 1982.
3. *Prabandhapoornima*by T.P. Balakrishnan Nair, Sahitya Pravartak Co-operative Society Ltd, Kottayam, 1992.
4. *Historical survey of Sanskrit Mahakavya's* by L. Sulochana Devi, Kanishka publishing House, Delhi, 1992.
5. *Kerala history*- Sreedhara Menon.
6. *Biographies of Guru* by different authors.
7. *ĀtmopadeśaŚataka* with different commentaries.
8. *Darśanamāla* with commentaries.

kiransanskritau@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 245-247

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय संस्कृति पर यूरोपीय प्रभाव

ओटाराम सैन

सहायक आचार्य, इतिहास (VSY), राजकीय महाविद्यालय देवली कला (जिला – ब्यावर)

Abstract (सारांश) :–

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है, जो अपने धर्म, कला, परंपराओं और जीवन शैली के लिए प्रसिद्ध है। हालांकि, इतिहास के विभिन्न चरणों में इसे विदेशी संस्कृतियों के प्रभावों का सामना करना पड़ा, जिनमें यूरोपीय प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। यह शोध पत्र भारत पर यूरोपीय प्रभावों के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करता है, विशेष रूप से औपनिवेशिक शासन, भाषा, शिक्षा, कला, वास्तुकला, भोजन, राजनीति और समाज पर इसके प्रभाव को उजागर करता है।

1. प्रस्तावना (Introduction) :–

भारतीय संस्कृति का विकास विभिन्न सभ्यताओं, आक्रमणों और बाहरी संपर्कों के माध्यम से हुआ है। 16वीं शताब्दी में यूरोपीय शक्तियों 'पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और ब्रिटिश' का आगमन हुआ। 18वीं और 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहने के कारण भारत की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए।

2. भाषा और साहित्य पर प्रभाव :–

यूरोपीय प्रभाव के कारण भारतीय भाषाओं में कई विदेशी शब्द समाहित हुए। अंग्रेजी भाषा का व्यापक प्रसार हुआ और यह प्रशासन, शिक्षा और व्यापार की प्रमुख भाषा बन गई। अंग्रेजी साहित्य और पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आने से आधुनिक भारतीय साहित्य का विकास हुआ।

उदाहरण के लिए :

- राजा राममोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने भारतीय भाषाओं में आधुनिक चिंतन को बढ़ावा दिया।
- बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय और रवींद्रनाथ टैगोर जैसे साहित्यकारों ने पश्चिमी साहित्य से प्रेरणा लेकर नई शैलियों का विकास किया।
- 1835 में लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति के तहत भारतीय शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य बना दिया गया।
- परंपरागत गुरुकुल प्रणाली के स्थान पर स्कूल और कॉलेज आधारित शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा मिला।
- पश्चिमी साहित्य, विज्ञान और दर्शन के संपर्क में आने से भारतीय समाज में आधुनिक विचारों का विकास हुआ।

3. शिक्षा प्रणाली पर प्रभाव :–

यूरोपीय, विशेष रूप से ब्रिटिश, प्रभाव से भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। 1835 में लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति के तहत अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा को बढ़ावा दिया गया।

मुख्य प्रभाव :

– गुरुकुल पद्धति के स्थान पर आधुनिक विद्यालय और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।
– विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान को बढ़ावा मिला।
– प्रेस और समाचार पत्रों का विकास हुआ।

4. कला और वास्तुकला पर प्रभाव :–

भारतीय कला और वास्तुकला पर यूरोपीय प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

वास्तुकला :

ब्रिटिश काल में गॉथिक, इंडो–सारसेनिक और नियोक्लासिकल शैली की इमारतें बनाई गईं, जैसे विक्टोरिया मेमोरियल (कोलकाता), गेटवे ऑफ इंडिया (मुंबई)।

रेलवे स्टेशन, अदालतें और सरकारी इमारतें पश्चिमी स्थापत्य कला से प्रभावित थीं।

चित्रकला और मूर्तिकला :

– राजा रवि वर्मा ने भारतीय विषयों को पश्चिमी शैली में चित्रित किया।
– ब्रिटिश शासन के दौरान यूरोपीय यथार्थवाद भारतीय कला में शामिल हुआ।

5. खान–पान पर प्रभाव :–

– यूरोपीय प्रभाव से भारतीय खान–पान में भी परिवर्तन आया।
– चाय (ब्रिटिश प्रभाव) भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग बन गई।
– आलू, टमाटर, मिर्च, कॉफी जैसी चीजें पुर्तगालियों द्वारा भारत लाई गईं।
– बेकरी और ब्रेड जैसी चीजों का चलन बढ़ा।

6. सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव :–

यूरोपीय शासन के कारण भारतीय समाज और राजनीति में व्यापक परिवर्तन हुए।

सामाजिक सुधार : राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और अन्य समाज सुधारकों ने ब्रिटिश कानूनों और पश्चिमी विचारों से प्रेरित होकर सती प्रथा, बाल विवाह और जातिवाद के खिलाफ आंदोलन किए।

राजनीतिक जागरूकता : यूरोपीय विचारधारा से प्रभावित होकर भारत में लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता संग्राम को बल मिला।

संविधान और प्रशासन : भारतीय संविधान ब्रिटिश संसदीय प्रणाली से प्रभावित हुआ।

7. तकनीकी और वैज्ञानिक प्रभाव :–

– यूरोपीय संपर्क से भारत में विज्ञान और तकनीकी प्रगति को गति मिली।
– रेलवे, टेलीग्राफ, प्रेस और संचार प्रणाली का विकास हुआ।
– चिकित्सा और विज्ञान के अध्ययन को बढ़ावा मिला।
– आधुनिक उद्योगों और कारखानों की स्थापना हुई।

निष्कर्ष (Conclusion) :–

भारतीय संस्कृति पर यूरोपीय प्रभाव गहरा और बहुआयामी रहा है। हालांकि इसने कुछ नकारात्मक प्रभाव भी डाले, जैसे पारंपरिक शिल्प और उद्योगों का ह्रास, लेकिन यह भी सत्य है कि आधुनिक शिक्षा, विज्ञान, लोकतंत्र और सामाजिक सुधारों के रूप में इसके सकारात्मक प्रभाव भी देखे जा सकते हैं। भारत ने इन प्रभावों को आत्मसात् कर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी और आज एक समृद्ध सांस्कृतिक राष्ट्र बना हुआ है।

संदर्भ (References) :–

1. Macaulay, Thomas Babington. *Minute on Indian Education*, 1835.
2. Metcalf, Thomas R. *Ideologies of the Raj*. Cambridge University Press, 1995.
3. Majumdar, R.C. *British Paramountcy and Indian Renaissance*. Bharatiya Vidya Bhavan, 1970.
4. Guha, Ramachandra. *India After Gandhi*. Harper Collins, 2007

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 248-250

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी साहित्य विमर्श

डॉ. अनीता बंसल

सहायक प्राध्यापक हिन्दीं प्री0एम0श्री0 कॉलेज ऑफ एक्सीगलेंस
एम0जे0एस0 शा0 स्नातकोत्तकर महाविद्यालय भिण्डे म0 प्र0।

भारतीय ज्ञान परंपरा की निर्झरणी में यदि हिंदी साहित्य के प्रतिबिंब का दिग्दर्शन किया जाए तो वह भी हीरकमणी के समान द्योतित होता हुआ नजर आता है। ज्ञान परंपरा एक निर्मल, निश्चल, पवित्र निर्झरिणी है। जिसमे सहस्रों ऋषि–मुनियों की आस्था, मूल्य, आदर्श, दर्शन, ज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, पद्धतियाँ, कर्म, भक्ति एवं जीवंत भावनायें समाहित हैं। यह परंपरा किसी एक तत्त्व को लेकर चलने वाली नहीं, वरन एक व्यापक विराट संचेतना है, जिसने अपने अंतस में भारत के कण–कण में समाहित ज्ञान को स्थान प्रदान किया है। यह ज्ञान परंपरा सहस्रों सूर्यो की रश्मियों के समान अनंत प्रकाश बाली है। जिसमें ज्ञान की समस्त धाराये अपने–अपने स्थान पर तो चमत्कृत होती ही हैं, साथ ही एक दूसरे के साथ संपृक्त होकर द्विगुणित हो उठती हैं। यही प्रकाश बिंदु भारतीय ज्ञान परंपरा है।[1]

भारतीय ज्ञान परंपरा है क्या? इस जिज्ञासा के मन में उठते ही कल्पना तत्काल वेदों की और गमन करती है और बेद भारतीय संस्कृति, ज्ञान और सभ्यता का मूल हैं। उन्हीं से समस्त भाषाओं का, ज्ञान के समस्त स्वरूपों का जन्म हुआ है। संस्कृत की पुत्री कही जाने वाली हिन्दी उसी ज्ञान को विभिन्न विधाओं के रूप में प्रत्येक जिज्ञासु तक पहुँचाती है। इसी ज्ञान परंपरा का निर्वहन करते हुए हिन्दी साहित्य अपने कर्म पथ पर अग्रसर होता है। प्राचीन युग में साहित्य के इतिहास से संबंधित स्वतंत्र ग्रंथ लिखने की परंपरा भारत में ही नहीं अपितु पश्चिम में भी नहीं मिलती। फिर भी पूर्ववर्ती कवि एवं साहित्यकारों के नामोल्लेख करने की प्रवृत्ति अनेक भारतीय लेखकों में दृष्टिगोचर होती है। जिससे साहित्य का इतिहास लिखने में सहायता प्राप्त होती है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में अपने से पूर्ववर्ती आचायों के नामों का उल्लेख किया है। पाली, प्राकृत और अपभ्रंश में भी इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है। हिंदी में महाकवि तुलसी ने भी अपने से पहले राम गुणगान करने वाले कवियों के नामों का उल्लेख किया है। रामचरित मानस में वह कहते हैं :–

'बाल्मीकि नारद घट योनी,
निज–निज मुखन कही निज होनी।।'[2]

इस प्रकार तुलसीदास के बाद में भी हिंदी में इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों का वर्णन किया है। यह परंपरा हिंदी साहित्य में आगे तक चली है। सेव्समेरी मैं 16 अगस्त (10–2004) को जा रहा हूं भारतीय ज्ञान परंपराओं में गुरु शिष्य परंपरा का अपना अनूठा ही स्थान है, जो

युगों–युगों में भारत को ही नहीं पूरे विश्व को प्रकाशित करती रही है। यदि गुड़ बिंतन किया जाये तो शिक्षण परंपरा यह परंपरा है जो प्रत्येक क्षेत्र, विषय और पदार्थ के जान से जोड़कर विश्व के कण–कण को आलोकित कर रही है। गुरु–शिष्य प्रणाली के रूप में ऋषि मुनियों ने खुले आसमान के नीचे पने वृक्षों की छाया में प्राकृतिक वातावरण के मध्य अपने शिष्यों को आध्यात्मिक अनुभूतियों के दर्शन कराये हैं। यही नहीं उन्होंने समस्त विद्याओं का दान कर अपने शिष्यों को ज्ञान का आलोक प्रदान किया है और उनके समस्त संशयों को समाप्त किया है जिसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि,

'गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपणी जिन गोविन्द दियो बताय।।'[3]

भारतीयों की यह ज्ञान परंपरा विश्व में अपने बरण पसार चुकी है। आज वैश्विक संस्कृति भारतीय संस्कृति की सराहना करते हुए, प्रकृति की ओर लौटने की बात करती है। विभिन्न दार्शनिकों ने प्रकृति के मध्य शान्त बाताबरण में विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास की महत्वपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण बताया है। बड़े–बड़े पाश्चात्य शिक्षा दार्शनिक भारतीयों की इस प्रणाली का वैज्ञानिक रूप से समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि प्राकृतिक वातावरण पूर्ण स्वच्छ और स्वस्थ होता है। उसका निर्मल शांत स्वरूप विद्यार्थी को न केवल आत्मिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से वरन् शारीरिक रूप से भी स्वस्थ रखता है और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। अतः आज विश्व भारत की इस परंपरा का हृदय से स्वागत करता है और कहता है, कि भारतीयों की परंपरायें वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण प्रासंगिक हैं आज संपूर्ण विश्व वैदिक परंपराओं में समाई भक्ति परंपरा की आचरण शक्ति को अपना रहा है। इन परंपराओं का वैश्विक धरातल पर गहरा प्रभाव पड़ा है। तपोमई भक्ति से युक्त जीवन शैली ने मानव को तनाव मुक्त वातावरण प्रदान किया है। सात्विक आहार–विहार ने उसे सुख पूर्ण जीवन दिया है। आज स्वास्थ्य संजीवनी बनकर भक्ति प्रणाली पूरे विश्व के द्वारा मराही जा रही है। संपूर्ण संसार बड़े–बड़े ऋषि मुनियों, कवियों, संतों, साहित्यकारों के द्वारा बताई गई भक्ति शैलियों को अपना रहा है। यह भारतीय ज्ञान परंपराओं का प्रत्यक्ष प्रभाव है।[4]

प्रेमाभक्ति और साध्यभक्ति में प्रेम को मुख्य आधार बनाया गया है तथा गेय पदों के द्वारा अपनी भक्ति, श्रद्धा और भगवान के प्रति समर्पण की बात प्रमुखतः उल्लेखित है। मीरा और जायमी ने इस भक्ति का सर्वाधिक प्रचार किया। जायसी ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक ईश्वरानुभूति कराई है। मीरा ने तो श्रीकृष्ण की ही मर्वस्व मान लिया था– 'मेरे तो गिरधर गोपाल हैं,
दूसरो न कोय।।

इसी प्रकार भक्ति रस में स्नात कबीर के ब्रह्म भी राम ही है लेकिन उनका कोई आकार नहीं है। कबीरदास इसके स्पष्टीकरण में कहते हैं :–

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।'[5]

कबीर के काव्य में ईश्वर की कोई स्पष्ट रूप रेखा नहीं दिखाई देती। कहीं राम को भक्ति का आलंबन बनाया गया है तो कहीं ध्यान का। संपूर्ण हिंदी साहित्य ज्ञान का वह कल्पवृक्ष है, जिसका एक–एक पल नवीन कलाओं और भावनाओं से मंडित थे। हिंदी साहित्य ने अपने अंतर में 64 कलाओं और 14 विद्याओं को समाया

हुआ है। सात द्वीपों बाली यह पृथ्वी माता चार वेद ऋक. यजु, साम और अथर्व, छह वेदांगी शिक्षा, कल्प, निरुत्ता, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष सहित धर्मशाख, आन्वीक्षकी, मीमांसा और स्मृतियों मिलकर 14 विद्याओं से मण्डित तथा 64 कलाओं से मुशोभित है। जिससे निमृत परंपरायें पूरे विश्व को ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला, कौशल और अनुसंधान से जोड़ रही हैं।

महाकवि कबीरदास स्वयं ज्ञान को महत्त्व देते हैं। उनका मानना है कि, परमात्मा की प्राप्ति ज्ञान और प्रेम के आधार पर ही हो सकती। यह कहते हैं कि,

'पोथी पड़–पड़ जुग भया, भया न पंडित कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पड़े सो पंडित होय।।'[6]

इसी प्रकार एक स्थल पर कबीरदास जी कर्म करने और कथनी करनी में भेद न करने की बात का ज्ञान देते हुए दिखाई देते हैं। उनके ये शब्द समाज को एक नई शिक्षा की ओर से कर जाते हैं। एक ऐसी शिक्षा जो बास्तब में सझे हृदय से प्रारंभ होकर सत्य का ज्ञान कराने में सक्षम होती है :–

"कठनीं काठी तो क्या भया, जे करनी ना थारै।
कालबूत के कोट ज्यू, देषतहीं कहि जाइ।।
जैसी मुख तें नीकसे, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल।।'[7]

भारतीय ज्ञान परंपराओं में निहित संत साहित्य अपने आप में अद्वितीय है। संत किसी के शत्रु नहीं होते बरन् निष्काम होते हैं। ईश्वर लीन होते हैं। प्रेम के उपासक होते हैं। कबीरदास संत महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं :–

'निरवैरी निहकामता, साँई सेती नेह, विषिया मू न्यारा रहे, संतहि का अंग एह।'

वास्तव में मंतों की विशेषता सत्संगति के रूप में परिलक्षित होती है। संत तो मार्ग से भटके हुए व्यक्तियों को सत्य मार्ग पर लाने की क्षमता रखते हैं। इसलिए कबीरदास आगे कहते हैं–

'संत न छाड़े संतई, कोटिक मिले असंत। चंदन भुवंगा बैठिया, तउ मीतलता न तर्जत'।[8]

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित संत साहित्य अपने आप में अद्भुसत क्षमता को धारण करने बाला है। हिंदी साहित्य की ये परंपरा समाज को सदैव से नयी दिशा, आयाम देने में सक्षम रही है और आज भी दे रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ. मीरा, मध्यकालीन हिंदी कृष्ण भक्तिधारा, हिंदुस्तान अकादमी, 1968,
2. डॉ० वासुदेव सिंह–कबीर (साहित्य और साधना), अभिव्यक्ति प्रकाशन, 847, इलाहाबाद, संस्करण 1994 ई0
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2013
4. संपा. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास', मयूर पेपरबैक्स, दिल्ली, 2015
5. संपा. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, 2016.
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौबीसों संस्करण, 2018.
7. वैदिक साहित्य और संस्कृति।
8. योगेन्द्र सिंह– संत रैदास, लोकभारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2019 ई०

मो0 न0 9754756880

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Jan. 2025 Page No. : 251-262

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झारखंड में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और उनके उद्यमशीलता का स्तर के बीच संबंध

कविता कुमारी, शोध प्रज्ञ,
डॉ० आलोक कुमार, सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान, वाई०बी०एन० विश्वविद्यालय, राँची।

'उद्यमिता' शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द 'उद्यम' से हुई है, जिसका अर्थ है 'कार्य आरंभ करना'। 16वीं शताब्दी में, सैन्य अभियानों की व्यवस्था करने वाले और उन्हें आरंभ करने वाले फ्रांसीसी लोगों को अक्सर उद्यमी कहा जाता था।

कैन्टिलन ने कहा कि उद्यमी वह व्यक्ति होता है जो उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल होता है और उत्पादन के बदले वह कारखानों या उत्पादक इकाइयों के मालिकों को भुगतान करती है। वह अनिश्चित प्राप्तियों की अपेक्षा करती है और बीमा योग्य जोखिम नहीं उठाता। मोटे तौर पर उद्यमी वह व्यवसायी होता है जो नवाचारों के बल पर अपने रिटर्न और मुनाफे को बढ़ाने की कोशिश करती है। नवाचार के क्षेत्र में समस्या समाधान और संकट का प्रबंधन भी शामिल होगा।

ऐसे अन्य विद्वान भी हैं जिन्होंने इस शब्द के अर्थ के बारे में अन्य जानकारी दी है। 1934 में शुम्पीटर ने कहा कि 'उद्यमी वह व्यक्ति होता है जो अर्थव्यवस्था में एक नया पैटर्न पेश करती है और कमाई और रोजगार के लिए नए रास्ते बनाता है।' यह बात सिर्फ उद्यमी के लिए ही नहीं बल्कि उसी समाज के दूसरे लोगों के लिए भी सच है। एक अवधारणा के तौर पर, उद्यमिता नवाचार के साथ बहुत जटिल रूप से जुड़ी हुई है। यह एक ऐसी घटना है जो सिर्फ व्यापार के क्षेत्र तक सीमित नहीं है। यह एक ऐसी प्रथा है जिसे किसी भी तरह के आर्थिक पैटर्न, किसी भी उद्योग, सामाजिक कार्य और शिक्षा के क्षेत्र में समान रूप से लाया जा सकता है। इसलिए उद्यमिता एक ऐसा विचार है जो नई चीजें करने या उन्हीं पुरानी चीजों को नए तरीके से करने को बढ़ावा देता है और उद्यमिता एक प्रक्रिया या एक सटीक तरीका है जिसके जरिए नए काम किए जाते हैं।

आर्थिक ढांचे और वाणिज्यिक व्यवसाय की संरचनाएँ बनाई जाती हैं। ये उद्यम ऐसे चौनल हैं जिनके माध्यम से उद्यमी न केवल अपने लिए कमाता है बल्कि दूसरों के लिए भी कमाने के अवसर पैदा करती है। यही कारण है कि उद्यमशीलता के प्रयास देशों, उनकी अर्थव्यवस्थाओं और जनसंख्या के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

वैदिक, उपनिषद, बौद्ध और जैन धर्म जैसे प्राचीन अध्ययन और पौराणिक लेखन से पता चलता है कि

महिलाओं को कैसे शिक्षा, सम्मान और आदर प्राप्त था। बहुविवाह, पर्दा, बाल विवाह, सती और बलपूर्वक विधवा होने की प्रथाएँ महिलाओं की स्थिति को खराब करने का कारण थीं। महिलाओं को अपनी संपत्ति पर जन्मसिद्ध अधिकार भी नहीं था। 19वीं शताब्दी के दौरान हमारे देश में कुरीतियों के विरोध में कई सामाजिक संशोधन हुए। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए लगातार प्रयास किए गए, चाहे वह राम मोहन राय हों या महात्मा गांधी। विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 में बनाया गया था और एक विवाह अधिनियम 1872–20 में पारित किया गया था। वैश्वीकरण और ज्ञान आधारित समाज आजकल पूरी दुनिया में तेजी से फैल रहा है, जिसके कारण मानव विकास में महिलाओं की मौलिक भूमिका को मान्यता मिली है। आज भी महिलाओं को कई तरह की बाधाओं का सामना करना पड़ता है और आने वाले समय में भी ऐसा ही रहेगा। जल्द ही और भी गंभीर तरह की प्रतिस्पर्धा आने वाली है। महिलाओं को नए कौशल और ज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिक समय समर्पित करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

स्वतंत्रता के बाद के समय में हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति में बहुत बड़े बदलाव हुए हैं। संविधान द्वारा लिंग समानता को मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया गया है। यह कहना बिल्कुल सुरक्षित है कि हमारे देश में महिलाओं की स्थिति में हाल ही में किए गए बदलाव विकास नहीं हैं, बल्कि प्राचीन काल में राज्यों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया है। जयपालन ने 2000 में महिलाओं पर शोध के लिए एक किताब लिखी थी, जिसमें बदलती भूमिकाओं को इस प्रकार परिभाषित किया गया था :

आर्थिक भूमिका : प्राचीन काल से ही ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ खेतों और खेतों में काम करती रही हैं और उन्होंने ऐसा इसलिए किया है क्योंकि यह उनके जीने का तरीका है। इसी तरह, महिलाएँ कुटीर उद्योगों में भी अपने पतियों की मदद करती हैं। वे काम करती थीं और अब भी करती हैं और करती रहेंगी। परिवार की आय में महिलाओं की जो भूमिका होती है, वह भोजन, कपड़े और आश्रय जैसी जीवन–यापन की आवश्यकताओं को पूरा करने का स्रोत है। अंत में, महिलाओं की जो भूमिका होती है, वह परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में सुधार लाती है। विवाहित महिलाओं को आमतौर पर जनगणना में गृहिणी के रूप में उल्लेख किया जाता है, जो परिवार में उनकी आर्थिक भूमिका के महत्व को दर्शाता है। आर्थिक रूप से सक्रिय विवाहित महिलाओं की संख्या समग्र स्तर के आंकड़ों की तुलना में बहुत अधिक है। अधिकांश महिलाओं के जीवन में काम आत्म–समता के बारे में नहीं है। महिलाओं के आर्थिक कर्तव्यों और जवाबदेही में उतार–चढ़ाव, विशेष रूप से गरीब महिलाओं में, रोजगार या काम को आर्थिक अस्तित्व के बारे में मानते हैं। पुरुष बेरोजगारी या मजदूरी श्रम और शहरीकरण की उच्च दरों के कारण पुरुषों की कम आय विवाहित महिला कर्मचारियों की वृद्धि को संदर्भित करती है। कम पुरुष वेतन का आमतौर पर मतलब होता है कि विवाहित महिलाओं को दोहरा काम करना पड़ता है क्योंकि उन्हें अतिरिक्त घरेलू उत्पादन करके या अपने घर के बाहर काम करके उस परिवार की कमाई की भरपाई करनी होती है। मशीनों के हर किसी पर हावी होने के साथ, एक महत्वपूर्ण बदलाव का समय आ गया था। महिलाओं ने कारखानों में काम करना शुरू कर दिया। 1901 के दौरान, 38,000 महिलाएँ कारखानों, खदानों और बागानों में कार्यरत थीं और यह कुल रोजगार बल का 14 ।5% था। लेखांकन या प्रबंधकीय कौशल में काम करने वाली मध्यम वर्ग की महिलाओं के रोजगार में जबरदस्त वृद्धि देखी गई। स्टेनोग्राफर, क्लर्क, टेलीफोन ऑपरेटर और रिसेप्शनिस्ट के रूप में कार्यरत महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई। शैक्षिक क्षेत्र पर विचार करते हुए,

प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में 15% शिक्षक महिलाएँ थीं। हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी भूमिका में बदलाव पर जोर देती है और बढ़ती हुई प्रवृति लैंगिक समानता की ओर ले जाती है।

सामाजिक भूमिका : पौराणिक और प्राचीन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा प्राप्त था। 300 ईसा पूर्व के बाद महिलाओं की भूमिका में जबरदस्त बदलाव देखा गया। उस समय, बेटे को बेटी से ज्यादा महत्व दिया जाता था। ऐसी युवतियाँ थीं जो अपना घर छोड़कर बौद्ध और जैन मठों में चली गईं। लड़कियों के बाल विवाह के कारणों में से एक यह भी था कि उन्हें मठों में जाने से रोका जाता था। जैसे ही वे यौवन की अवस्था में पहुँचती थीं, उनका विवाह कर दिया जाता था। विवाह एक महिला के लिए बंधन था। 19वीं शताब्दी में कार्यकर्ता आंदोलनों ने सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति में बदलाव लाया और फिर इसके परिणामस्वरूप 20वीं शताब्दी में भारतीय महिलाओं की जबरदस्त मुक्ति हुई। समाज में लोगों के दृष्टिकोण बदल गए। महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई न्यायिक उपाय किए गए। महिलाओं की शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया गया और इसलिए इसके लिए सेवाएँ स्थापित की गईं। कई महिला नेता थीं जिन्होंने महिलाओं में राजनीतिक ज्ञान का प्रसार किया, जिसके परिणामस्वरूप स्थिति में जबरदस्त बदलाव आया। उस समय महिलाओं ने सामाजिक समस्याओं के खिलाफ भी संघर्ष करना शुरू कर दिया था।

समाज और अर्थव्यवस्था में महिला उद्यमियों का योगदान :

महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन सामाजिक संदर्भ, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक मानकों और मूल्य प्रणालियों से शुरू होना चाहिए जो पुरुषों और महिलाओं के व्यवहार के बारे में सामाजिक प्रत्याशाओं को प्रभावित कर सकते हैं और महिलाओं द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका और समाज में उनकी स्थिति के बारे में जान सकते हैं। समाज में बहुत सारे संगठन शामिल हैं और उचित, परिवार और रिश्ते, विवाह और धार्मिक रीति–रिवाज महत्वपूर्ण हैं। पुरुषों और महिलाओं के लिए विश्वास और नैतिक आधार उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों और उनके कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए प्रदान किए जाते हैं। भारत में महिलाओं की आबादी 50% है, हालांकि उनकी स्थिति आकर्षक नहीं लगती। धर्म और सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाओं के कारण सदियों से महिलाओं को जानबूझकर विकास की संभावनाओं से वंचित रखा गया है। दुनिया के सभी हिस्सों में महिलाएं बच्चों और वृद्ध लोगों की मुख्य देखभाल करने वाली हैं। अंतर्राष्ट्रीय शोधों से यह देखा जा सकता है कि समाज के आर्थिक और राजनीतिक संगठन में परिवर्तन के साथ, महिलाएँ अपने परिवार को नई बाधाओं और निश्चितताओं के साथ समझौता करने में सहायता करने में थोड़ी आगे हैं। यह संभव है कि वे बाहरी सहायता की प्राथमिक लेखक हों और परिवार में परिवर्तनों को आसान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँ। स्थिरता उद्देश्यों को विकसित करने और पूरा करने की क्षमता सरल शिक्षा के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

अध्ययन से यह देखा जा सकता है कि शिक्षा कृषि उत्पादकता में वृद्धि, लड़कियों और महिलाओं की स्थिति में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि दर में कमी, पर्यावरण सुरक्षा में वृद्धि और जीवन स्तर में व्यापक वृद्धि कर सकती है। सभी परिवारों में माँ आमतौर पर अपने बच्चों को शिक्षा के लिए स्कूल भेजने पर जोर देती हैं। महिलाओं की स्थिति सुधारों की श्रृंखला के अग्रिम छोर पर है जिसके परिणामस्वरूप परिवारों की क्षमता बनी रहती है। आजकल दुनिया भर में कार्यबल में महिलाओं का औसत योगदान 45 ।4% है। महिलाओं का औपचारिक और अनौपचारिक श्रम एक समुदाय को एक स्वतंत्र समाज से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भागीदार बनाने में सक्षम है। पिछले कुछ

दशकों में शहरी और ग्रामीण कार्यबल में महिलाओं की स्थिति में तेजी से वृद्धि हुई है। मेजबान देशों में वैश्विक स्वयंसेवकों का सामुदायिक विकास कार्य महिलाओं और बच्चों की क्षमता को मजबूत कर सकता है और स्वास्थ्य और विकास में सहायता कर सकता है। स्थानीय नेताओं के उचित निर्देशन के साथ, स्वयंसेवक शैक्षिक पहुँच सुनिश्चित कर सकते हैं, माता–पिता की भागीदारी को बढ़ावा दे सकते हैं, मनोवैज्ञानिक–सामाजिक सहायता प्रदान कर सकते हैं, पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान कर सकते हैं, लड़कियों के लिए छात्रवृत्ति में धन मुहैया करा सकते हैं, लड़कियों के लिए शौचालय वाले स्कूल बना सकते हैं, शिक्षकों की साक्षरता और दक्षता आदि।

अब यह माना जाता है कि महिलाओं की घरों के आर्थिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पारंपरिक समाजों में महिलाओं की स्थिति पारंपरिक सिद्धांतों, दृष्टिकोणों और परंपराओं के आधार पर परिवार प्रबंधन तक ही सीमित है। पारिवारिक संस्कृति, जहाँ प्रारंभिक समाजीकरण होता है, काफी महत्वपूर्ण है जो महिलाओं को परिवार की आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रेरित या प्रतिबंधित करती है। पारंपरिक समाज में महिलाओं की आर्थिक भूमिका मुख्य रूप से दो महत्वपूर्ण कारकों पर निर्भर करती है।

महिलाओं का व्यवसाय में कदम रखना कोई परम्परागत बात नहीं है, जैसा कि हाल ही में देखा गया है। महिलाएँ छोटे–मोटे व्यवसाय और छोटे कुटीर उद्योगों तक ही सीमित थीं। बाधाओं को पार करके आगे बढ़ने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ रही है, लेकिन उनमें से अधिकांश इसे उद्यमशीलता की गतिविधियों में पूरी तरह से शामिल होना असंभव या अवांछनीय मानती हैं। हमारे देश में अधिकांश महिलाओं के लिए विवाह ही एकमात्र पेशा है। महिलाओं को कार्यालय के काम, नर्सिंग, शिक्षण और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में अपनी गतिविधियों पर काफी प्रतिबंध लगाने पड़ते हैं, साथ ही पेशेवर रूप से भी। आर्थिक ढांचे में उद्यमियों के रूप में महिलाओं का उदय महिलाओं की मुक्ति और हमारे समाज में उनके लिए एक सुरक्षित स्थान बनाए रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रगति के रूप में देखा जा सकता है, जिसकी वे हकदार हैं।

महिलाओं और आर्थिक उद्यमों के बीच संबंध आजकल के संघर्षपूर्ण माहौल में शांति और सद्भाव फैलाने में एक उपचारात्मक स्पर्श प्रदान करती है। कानूनी और संवैधानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो हमारे देश में महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा प्राप्त है। महिलाओं को लोगों को दिए जाने वाले हर अधिकार और विशेषाधिकार का आनंद लेना चाहिए। महिलाओं को पुरुषों की तरह मौलिक अधिकारों का अधिकार है। इसने सरकार को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान करने की अनुमति दी है, विशेष रूप से श्रम कानूनों जैसे कि कारखाना अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम आदि में। भारतीय महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय सांस्कतिक परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारत की कुल जनसंख्या 1027,015,24728 है, जिसमें 531,277078 पुरुष और 495,738,169 महिलाएं हैं। इनमें से 72.2 प्रतिशत ग्रामीण इलाकों में रहते हैं, जबकि 27.78% लोग शहरी इलाकों में रहते हैं। 2001 तक भारत की कुल जनसंख्या 1,21,05,69,573 है, जिसमें 62,31,21,843 पुरुष और 58,74,47,730 महिलाएं शामिल हैं। इस गणना के अनुसार 72.2 प्रतिशत लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं और 27.78% लोग शहरी इलाकों में रहते हैं। श्रम ब्यूरो (2013) के अनुसार, ग्रामीण भारत में WPR 71.77% है, जिसमें 53.00% पुरुष और 30.00% महिलाएँ शामिल हैं। शहरी भारत की बात करें तो, रोजगार में भागीदारी दर 43.63% है, जिसमें 53.8% पुरुष और 15.4% महिला रोजगार भागीदारी दर शामिल है। भारत के सभी श्रमिकों की कालानुक्रमिक प्रवृत्ति स्पष्ट करती

है कि पिछले 40 वर्षों में रोजगार भागीदारी दर में लगातार वृद्धि दर्ज की गई है। भारत देश में संपूर्ण और ग्रामीण रोजगार भागीदारी दर पूरी आबादी का केवल 36.8% है और 1981 में सतर्कतापूर्वक जोरदार थी जो 2011 तक लगभग 39.8% हो गई है। भारत में ग्रामीण और शहरी दोनों व्यक्तियों के लिए पुरुष रोजगार भागीदारी दर की तुलना में महिला रोजगार भागीदारी दर बहुत कम है। यह पता चला कि भारत जैसे प्रगतिशील देशों में, पुरुषों की तुलना में कर्मचारियों में महिलाओं की भागीदारी असामान्य रूप से कम हो गई है। हालांकि, वित्तीय कार्रवाई में महिलाओं की जिम्मेदारी हाल के समय में संचयी रही है। इसलिए, भारत में महिलाओं को दिए गए काम की सीमा और प्रदर्शन का निरीक्षण करना महत्वपूर्ण है। आर्थिक प्रगति पूरी तरह से देश की कार्य–संबंधी संरचना में संशोधन और बढ़ी हुई शैक्षिक संभावनाओं के माध्यम से महिला श्रम योगदान से संबंधित है, जो अक्सर प्रजनन क्षमता और घरेलू कामों में कमी के साथ होती है। परिवर्तन दृष्टिकोण श्रम के लिए बढ़ी हुई मांग, महिलाओं के ज्ञान और भागीदारी की एक सामान्य सांप्रदायिक प्राप्ति, साथ ही कम प्रजनन क्षमता के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। उदारीकरण की वित्तीय रणनीतियाँ सोचती हैं कि श्रम आसानी से स्थानांतरित हो सकता है क्योंकि इन संसाधनों के कारण एक डोमेन से दूसरे डोमेन में बदलाव किया जा सकता है और यह दोनों व्यक्तियों के लिए समान रूप से प्रभावित करती है। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि वित्तीय पुनर्व्यवस्था के परिणामस्वरूप बढ़ी हुई अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता कर्मचारियों के स्त्रैणीकरण को जन्म दे सकती है। लेकिन नारीकरण मुख्य रूप से घर से काम करने के माध्यम से आराम क्षेत्र में होता है, जिससे राजस्व वितरण में गिरावट और प्रत्यक्षता में वृद्धि होती है।

एक महिला उद्यमी वह व्यक्ति है जो प्रतिस्पर्धी भूमिका स्वीकार करते हुए आगे बढ़ती है, जहाँ वह समुदाय में सामुदायिक व्यवस्था, आरक्षण और सहायता के दायरे के साथ लगातार खुद को जोड़ती और नियंत्रित करती है। महिलाओं के लिए मौजूद उद्यमिता सबसे हालिया और आधुनिक परिदृश्य है। ऐसे कई लेखक हैं जिन्होंने महिला उद्यमिता का सटीक अर्थ दिखाने का प्रयास किया है। ब्रैडी के अनुसार, 'भले ही संगठनों को महिलाओं का दान अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रगति का मुख्य चालक है, लेकिन अधिकांश नियमित रूप से, महिलाओं को प्राथमिक व्यावसायिक ज्ञान, बिक्री योग्य ऋण और विज्ञापन के अवसरों तक पहुँच नहीं होगी।।। 'लावोई एक महिला व्यवसायी को' एक कॉर्पोरेट की मुख्य प्रमुख के रूप में वर्णित करते हैं, जहाँ वे एक आधुनिक उद्यम शुरू करने की सरलता होगी, जहाँ उन्हें सभी संबंधित जटिलताओं और वित्तीय, प्रबंधकीय और सामुदायिक कामों को संभालना होगा और जो सभी नियमित गतिविधियों को संभालती हैं'।

विशेष रूप से विकासशील देशों में, वित्तीय बाधाओं को कानूनी और नीतिगत बाधाओं और भेदभाव के साथ जोड़ा जा सकता है – जिसमें विवाहित महिलाओं की पुरुष अनुरक्षक के बिना यात्रा करने में असमर्थता, पहचान पत्र की बाधाएँ और अपने दम पर अनुबंध पर हस्ताक्षर करने, बैंक खातों तक पहुँचने या व्यवसायों को पंजीकृत करने के लिए कानूनी बाधाएँ शामिल हैं। अन्य बाधाओं में व्यवसाय अलगाव, नेटवर्क की कमी और उच्च मूल्य वाले बाजारों से सीमित संबंध शामिल हैं।

झारखंड की महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति समय के साथ सुधरी है, लेकिन अब भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। राज्य की महिलाएं समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभा रही हैं, चाहे वह कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, हस्तशिल्प, खानपान, या स्व–सहायता समूहों में हो। बावजूद इसके, महिलाओं को

कई सामाजिक और आर्थिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जैसे कि लैंगिक असमानता, शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, और आर्थिक असमानता।

झारखंड की महिलाओं के साथ लैंगिक भेदभाव एक गंभीर और व्यापक समस्या है, जो समाज के विभिन्न पहलुओं में देखा जाता है। यह भेदभाव महिलाओं को उनके अधिकारों, अवसरों और सामाजिक स्थिति में पुरुषों से नीचा समझने के रूप में सामने आता है। झारखंड की अधिकांश महिलाएं विशेष रूप से ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में इस भेदभाव का सामना करती हैं। यहां पर लैंगिक भेदभाव के प्रमुख आयामों को विस्तार से देखा गया है :–

झारखंड में शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों के प्रति भेदभाव बहुत सामान्य है। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में लड़कों को शिक्षा में प्राथमिकता दी जाती है, जबकि लड़कियों को घर के कामों में व्यस्त रखा जाता है। परिवारों के लिए लड़कियों की शिक्षा पर खर्च करना आर्थिक दृष्टि से सही नहीं लगता, जिसके कारण कई बार उन्हें स्कूल भेजने में संकोच किया जाता है।

माता–पिता की मानसिकता में भी यह भेदभाव दिखाई देता है, जहां लड़कियों को यह सिखाया जाता है कि उनका मुख्य कार्य घर और परिवार की देखभाल करना है, न कि शिक्षा प्राप्त करना या करियर बनाना।

हालांकि राज्य सरकार ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं, लेकिन फिर भी बहुत सी लड़कियां कक्षा 5 से ऊपर नहीं पढ़ पातीं और प्रारंभिक शिक्षा से आगे नहीं बढ़ पातीं।

कृषि कार्य में महिलाएं सक्रिय रूप से हिस्सा लेती हैं, लेकिन उनका श्रम हमेशा अदृश्य रहता है। झारखंड की महिलाएं खेती–बाड़ी, पशुपालन, और अन्य कृषि संबंधित कार्यों में लगती हैं, लेकिन उन्हें भूमि स्वामित्व और आर्थिक निर्णयों में कोई अधिकार नहीं मिलता।

कृषि कार्य में महिलाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता है, लेकिन वे इसे अधिकार के रूप में नहीं देखतीं और उनका श्रम पुरुषों के श्रम के मुकाबले कमतर माना जाता है।

वेतन समानता का भी मुद्दा है, जहां पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को कम वेतन मिलता है, चाहे उनका काम समान हो। यह भेदभाव खासकर गृहिणियों, कृषि श्रमिकों, और हस्तशिल्प कार्यकर्ताओं के मामले में अधिक देखा जाता है।

झारखंड की महिलाओं को स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीमित पहुंच है। राज्य के ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की भारी कमी है, जो विशेष रूप से महिलाओं के लिए चुनौतीपूर्ण है।

गर्भवती महिलाओं के लिए उचित स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की कमी, सफाई और स्वच्छता की समस्याएं, और टीकाकरण जैसी स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच में असमानता एक प्रमुख मुद्दा है।

इसके अलावा, महिलाओं को अक्सर स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में खुलकर बात करने में संकोच होता है, क्योंकि यह समाज में एक वर्जना के रूप में देखा जाता है।

झारखंड में महिलाओं को आम तौर पर परिवार और समाज में पुरुषों के मुकाबले कमतर अधिकार मिलते हैं। महिलाओं का काम घर की देखभाल, बच्चों की परवरिश और पति की सहायता करना माना जाता है, जबकि पुरुषों को आर्थिक रूप से सशक्त और परिवार के निर्णयों में महत्वपूर्ण भागीदार माना जाता है।

विशेष रूप से आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों में दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी प्रथाएं महिलाओं के

जीवन को प्रभावित करती हैं। इन प्रथाओं में महिलाओं को अपनी इच्छा के खिलाफ जीवन साथी चुनने या अपनी शादी के बारे में निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता।

महिलाओं की संपत्ति और धार्मिक अधिकारों में भी असमानता होती है। बहुत से समुदायों में महिलाओं को संप्रभुता (Property Rights) में पूर्ण अधिकार नहीं होते, और वे अपनी संपत्ति पर नियंत्रण नहीं रख पातीं।

झारखंड में महिलाओं को राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए अवसर तो मिले हैं, जैसे पंचायत और स्थानीय चुनावों में भागीदारी, लेकिन महिलाओं के निर्णय लेने की भूमिका अभी भी सीमित है।

पंचायती राज और स्थानीय निकाय चुनावों में महिलाओं को प्रतिनिधित्व मिलता है, लेकिन पुरुषों के प्रभाव और नियंत्रण के कारण उनका वास्तविक निर्णय बहुत कम होता है। महिलाएं पंचायतों और गांवों के मामलों में समाज के पुरुषों के मुकाबले ज्यादा प्रभावित नहीं होतीं।

झारखंड में महिलाओं को लैंगिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है। चाहे वह घरेलू हिंसा, दुराचार, यौन उत्पीड़न, या यौन तस्करी के रूप में हो, महिलाएं अक्सर हिंसा का शिकार होती हैं।

महिलाएं सुरक्षा की कमी महसूस करती हैं, खासकर रात के समय बाहर जाने में। इसके अलावा, महिलाएं अपनी समस्याओं को लेकर पुलिस और प्रशासन से मदद लेने में संकोच करती हैं क्योंकि उनके खिलाफ समाज में पहले से ही नकारात्मक दृष्टिकोण होता है।

झारखंड में महिलाओं के साथ लैंगिक भेदभाव सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक स्तर पर स्पष्ट रूप से मौजूद है। यह भेदभाव शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर, और राजनीतिक भागीदारी के क्षेत्रों में महिलाओं को सीमित करती है। इसके बावजूद, महिलाएं अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए निरंतर संघर्ष कर रही हैं। अगर समानता, शिक्षा, और सुरक्षा के मुद्दों पर ठोस कदम उठाए जाएं तो महिलाओं को लैंगिक भेदभाव से मुक्ति मिल सकती है और वे सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त हो सकती हैं।

झारखंड की महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में परिवार और समुदाय में उनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। महिलाएं राज्य के ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में समाज की रीढ़ की हड्डी के रूप में कार्य करती हैं। वे न केवल घर के भीतर परिवार की देखभाल करती हैं, बल्कि बाहर के कार्यों में भी सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। इस संदर्भ में, उनकी भूमिका को तीन प्रमुख क्षेत्रों में समझा जा सकता हैरू परिवार में भूमिका, समुदाय में भूमिका, और आर्थिक योगदान।

झारखंड की महिलाओं की पारंपरिक भूमिका मुख्य रूप से घरेलू कार्यों, बच्चों की देखभाल और परिवार की देखरेख तक सीमित रही है, लेकिन समय के साथ यह भूमिका और व्यापक हुई है।

महिलाएं घर के सभी कामों की जिम्मेदारी उठाती हैं। इसमें खाना पकाना, सफाई, बच्चों की देखभाल, और परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल शामिल है। यह भूमिका पारंपरिक रूप से महिलाओं के ऊपर डाल दी जाती है, और इसमें उनके योगदान को अक्सर अनदेखा किया जाता है।

महिलाओं का घर की आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे संचयन और बचत करती हैं और घर के खर्चों को नियंत्रित करती हैं।

महिलाएं बच्चों के पहले शिक्षक के रूप में कार्य करती हैं। वे न केवल बच्चों को बुनियादी शिक्षा देती हैं, बल्कि उन्हें संस्कार, सकारात्मक मूल्य, और समाज में सही भूमिका निभाने के बारे में भी सिखाती हैं।

झारखंड के ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में, महिलाएं पारंपरिक ज्ञान और संस्कृति को बनाए रखती हैं और बच्चों को अपनी जड़ों से जोड़ने में मदद करती हैं।

झारखंड में महिलाएं परिवार की सीमाओं से बाहर भी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं, विशेष रूप से समुदाय की सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक गतिविधियों में।

महिलाएं कृषि श्रमिक के रूप में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वे खेतों में बीज बोने, कटाई करने, फसल की देखभाल, और पशुपालन में भी सक्रिय रहती हैं। खासकर आदिवासी समुदायों में महिलाओं का कृषि में अहम स्थान है।

महिलाएं पारंपरिक कृषि ज्ञान और तकनीकों को बनाए रखती हैं और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। इसके बावजूद, उनकी भूमिका को सामाजिक रूप से हमेशा कम महत्व दिया जाता है, और वे आर्थिक निर्णयों में कम भागीदार होती हैं।

झारखंड में महिलाओं के स्व–सहायता समूहों (SHGs) का योगदान महत्वपूर्ण है। महिलाएं सामूहिक रूप से संचय, लोन और सामूहिक व्यवसायों में भाग लेती हैं। ये समूह महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता, सशक्तिकरण, और सामाजिक नेटवर्क का अवसर प्रदान करते हैं।

ैभ्ळे के माध्यम से महिलाएं हस्तशिल्प, खाद्य उत्पादन, वस्त्र निर्माण, और कुटीर उद्योगों जैसे छोटे व्यापारों में भाग लेती हैं। इसने कई महिलाओं को आर्थिक आत्मनिर्भरता हासिल करने का अवसर प्रदान किया है।

महिलाएं स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में भी सक्रिय होती हैं। वे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, स्वास्थ्य सेविका, और सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में कार्य करती हैं। इन महिलाओं की मदद से ही ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में टीकाकरण, स्वास्थ्य शिक्षा, और मातृ–शिशु स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर जागरूकता फैलती है।

महिलाएं स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जैसे कि गर्भवती महिलाओं की देखभाल, सैनिटेशन, और स्वच्छता के प्रचार में योगदान करना।

महिलाएं बाल विवाह, लैंगिक हिंसा, और दहेज प्रथा जैसे सामाजिक मुद्दों के खिलाफ जागरूकता फैलाने और समाज सुधार में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। वे पंचायतों और अन्य स्थानीय निकायों में निर्णय लेने में हिस्सा लेकर सामाजिक संरचनाओं में बदलाव लाने के प्रयास करती हैं।

महिलाएं सामूहिक रूप से समाज की समस्याओं पर चर्चा करती हैं और समुदाय के विकास के लिए योजनाएं बनाती हैं।

झारखंड की महिलाएं न केवल पारंपरिक घर के कार्यों में योगदान करती हैं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भाग लेती हैं।

महिलाएं खेती के अलावा पशुपालन, मुर्गी पालन, मछली पालन, और मकई व दलहन की फसलें उगाने में भी योगदान करती हैं। इसके साथ–साथ, महिलाएं दूध, घी, और अन्य कृषि उत्पादों को स्थानीय बाजारों में बेचने का काम करती हैं।

महिलाएं स्व–सहायता समूहों के माध्यम से सामूहिक रूप से छोटे–छोटे व्यवसाय चला रही हैं, जैसे कि हस्तशिल्प, बुनाई, सब्जी और फल उगाना, कढ़ाई और सिलाई आदि। इसके माध्यम से वे स्वावलंबी बन रही हैं और अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में मदद कर रही हैं।

महिलाएं अब दुकानें, खाद्य स्टॉल, और अन्य छोटे व्यवसायों के संचालन में भी भाग ले रही हैं, जो उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में मदद करती है।

झारखंड की महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में उनकी परिवार और समुदाय में भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वे घर की देखभाल से लेकर समुदाय के विकास, कृषि, व्यापार, और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अहम योगदान दे रही हैं। हालांकि, समाज में उनकी भूमिका को सम्मानजनक रूप से पहचाना नहीं जाता और उनकी आर्थिक स्थिति को पूर्ण रूप से मान्यता नहीं मिलती, फिर भी महिलाएं अपने साहस और मेहनत से समाज में बदलाव लाने की दिशा में काम कर रही हैं। उन्हें समान अधिकार और आर्थिक अवसर प्रदान करना राज्य के सामाजिक–आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

झारखंड में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर विशेष ध्यान देना महत्वपूर्ण है, क्योंकि राज्य के लगभग 26% लोग आदिवासी समुदाय से आते हैं, और आदिवासी महिलाएं उनके परिवार और समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। आदिवासी महिलाएं न केवल परिवार के भीतर महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, बल्कि समुदाय और आर्थिक गतिविधियों में भी उनकी सक्रिय भागीदारी होती है। हालांकि, आदिवासी महिलाओं को कई सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो उनके जीवन को प्रभावित करती हैं।

आदिवासी महिलाओं का पारंपरिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान होता है, लेकिन यह स्थान पुरुषों के मुकाबले कुछ हद तक सीमित होता है। आदिवासी समाज में महिलाओं को पारंपरिक रूप से सम्मान मिलता है, और उन्हें समुदाय के फैसलों में भागीदार माना जाता है। हालांकि, उनकी भूमिका मुख्य रूप से परिवार और घरेलू कामों तक सीमित रहती है।

आदिवासी समाज में महिलाओं को आमतौर पर अधिक स्वतंत्रता मिलती है, लेकिन फिर भी समाज में पुरुषों द्वारा तय की गई सामाजिक संरचनाओं के कारण महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता सीमित होती है।

आदिवासी समुदायों में महिलाओं को सामाजिक समरसता बनाए रखने में सक्रिय भूमिका निभाने के साथ–साथ पारंपरिक संस्कृतियों और रीति–रिवाजों को संरक्षित करने का जिम्मा भी दिया जाता है।

आदिवासी महिलाओं का अधिकांश समय कृषि कार्य, पशुपालन, मछली पालन, और जंगलों से संसाधन एकत्र करने में व्यतीत होता है। वे कृषि में श्रमिक के रूप में कार्य करती हैं, बीज बोने से लेकर फसल काटने तक सभी कृषि कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं।

आदिवासी महिलाओं का भूमि पर अधिकार आदिवासी समुदायों में परंपरागत रूप से पुरुषों से कम होता है। हालांकि कुछ क्षेत्रों में आदिवासी महिलाएं भूमि स्वामित्व की धारक होती हैं, लेकिन अधिकांश मामलों में पुरुषों का ही भूमि स्वामित्व होता है। इससे उन्हें आर्थिक निर्णयों में सीमित भागीदारी मिलती है।

आदिवासी महिलाएं अक्सर वनोपज के संग्रह और हस्तशिल्प जैसे छोटे–छोटे व्यापारों से अपनी आय का स्रोत प्राप्त करती हैं। वे सहकारी समितियों और स्व–सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से अपना आर्थिक सशक्तिकरण करती हैं। इन समूहों के जरिए महिलाएं सामूहिक रूप से बचत करती हैं, लोन लेती हैं, और हस्तशिल्प और खाद्य प्रसंस्करण के व्यवसायों में सक्रिय रहती हैं।

फिर भी, आदिवासी महिलाओं को अपनी आर्थिक गतिविधियों से होने वाली आय में असमानता का सामना

करना पड़ता है, और उनकी आर्थिक स्थिति मुख्य रूप से गरीबी और संसाधनों की कमी से प्रभावित होती है।

सरकार ने आदिवासी महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए कई योजनाएं लागू की हैं, जैसे कि स्व–सहायता समूहों का गठन, कौशल विकास कार्यक्रम, मुद्रा योजना, और महिला सशक्तिकरण के लिए विभिन्न अन्य योजनाएं।

आदिवासी क्षेत्रों में महिला स्वास्थ्य सेवाओं के लिए भी सरकार ने कई पहल की हैं, जैसे आंगनवाड़ी सेवाएं, मातृ–शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम, और स्वास्थ्य जागरूकता अभियान।

हालांकि इन योजनाओं का असर स्थानीय स्तर पर दिखता है, लेकिन बहुत से सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में इन योजनाओं की पहुंच सीमित है, और समाज में जागरूकता की कमी के कारण इनका पूरी तरह से लाभ नहीं मिल पाता।

आदिवासी महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार के बावजूद, उन्हें अभी भी लैंगिक भेदभाव, आर्थिक असमानता, शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्याएं, और सामाजिक अधिकारों में सीमितता का सामना करना पड़ता है। आदिवासी महिलाओं का जीवन परंपरागत रूप से बहुत कठिन होता है, लेकिन वे सामाजिक बदलाव और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए संघर्ष कर रही हैं। सरकारी योजनाएं, स्व–सहायता समूह, और समाज सुधार के प्रयासों से उनकी स्थिति में सुधार हो सकता है, लेकिन इसके लिए स्थानीय समुदायों और संवेदनशीलता की आवश्यकता है।

झारखंड की महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में कृषि का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि राज्य की अधिकांश आबादी कृषि और उससे जुड़े कार्यों पर निर्भर करती है। महिलाएं झारखंड के ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में कृषि से संबंधित कार्यों में अत्यधिक सक्रिय हैं। हालांकि, उनकी भूमिका को समाज में प्रायः अदृश्य रखा जाता है और उन्हें कृषि में उनके योगदान के हिसाब से मान्यता नहीं मिलती। फिर भी, झारखंड की महिलाएं कृषि कार्यों में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो उनके आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के लिए भी अहम है।

झारखंड की महिलाएं कृषि कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। उनकी भूमिका का दायरा बहुत व्यापक होता है, जिसमें वे खेतों में काम करने से लेकर उत्पादन, संचयन, प्रसंस्करण, और विपणन तक के काम करती हैं।

महिलाएं कृषि कार्यों में अत्यधिक सक्रिय होती हैं, जैसे बीज बोना, कटाई, सिंचाई, खेतों की सफाई और फसल की देखभाल। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं फसल उगाने से लेकर उसे काटने तक, सभी प्रकार के कृषि कार्य करती हैं।

पशुपालन और मुर्गी पालन जैसी गतिविधियों में भी महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो घर की आय का एक अहम स्रोत होते हैं।

आदिवासी समुदायों की महिलाएं अक्सर जंगलों से संसाधन इकट्ठा करती हैं, जैसे लकड़ी, हरी घास, घासफूस, और फल। ये संसाधन न केवल उनके परिवार की जरूरतों को पूरा करते हैं, बल्कि उन्हें आर्थिक आय भी प्रदान करते हैं।

महिलाएं जंगल से मिलने वाले उत्पादों को सामूहिक रूप से संकलित करती हैं और इनका व्यापार भी

करती हैं।

हालांकि महिलाएं कृषि कार्यों में बड़ी भूमिका निभाती हैं, लेकिन झारखंड में भूमि स्वामित्व पर पुरुषों का अधिकार अधिक होता है। पारंपरिक समाज में महिलाओं को भूमि पर नियंत्रण नहीं मिलता और भूमि मालिक केवल पुरुष होते हैं।

इसलिए, कृषि से प्राप्त होने वाली आय और आर्थिक निर्णय भी पुरुषों के हाथों में रहते हैं, जबकि महिलाएं अपने श्रम के बावजूद इन निर्णयों में बराबरी की भागीदार नहीं होतीं।

भूमि स्वामित्व से जुड़ी समस्याएं महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता और संपत्ति अधिकारों में बाधक बनती हैं।

झारखंड की महिलाएं पारंपरिक कृषि पद्धतियों में माहिर हैं, लेकिन अब महिलाएं आधुनिक कृषि तकनीकों का भी उपयोग कर रही हैं। महिला किसान अब नवीनतम कृषि विधियों, जल संरक्षण, और जीवाणुरहित खेती जैसी तकनीकों को अपनाने की ओर अग्रसर हो रही हैं।

कुछ महिलाएं कृषि जागरूकता कार्यक्रमों में भाग लेकर कृषि संबंधित नए ज्ञान प्राप्त करती हैं और इसे अपने खेती के तरीके में लागू करती हैं।

झारखंड में स्व–सहायता समूह (SHGs) का गठन महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण तरीका साबित हुआ है। इन समूहों के जरिए महिलाएं न केवल आधिकारिक तौर पर संगठित होती हैं, बल्कि वे कृषि कार्यों में भी सामूहिक रूप से सहभागिता करती हैं।

महिलाएं SHGs के माध्यम से कृषि उत्पादों जैसे सब्जी, फल, और अनाज का संचयन, प्रसंस्करण, और विपणन करती हैं, जिससे उन्हें अतिरिक्त आय का स्रोत प्राप्त होता है।

इन समूहों द्वारा महिलाओं को संगठित तौर पर किसानों के समूहों में शामिल कर सहकारी खेती के द्वारा अधिक आर्थिक लाभ मिलता है। वे सामूहिक रूप से फसल उत्पादन, बीजों की खरीद और कृषि उपकरणों के उपयोग को बेहतर तरीके से कर सकती हैं।

ग्रंथ सूची :

1. झारखंड की महिलाएँ : एक अध्ययन, लेखक : डॉ. शशि भूषण प्रसाद, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2015
2. कोडरमा की महिलाएँ : एक सामाजिक अध्ययन, लेखक : डॉ. रीता सिंह, प्रकाशक : भारतीय पुस्तक भंडार, प्रकाशन वर्ष 2012
3. झारखंड की महिलाओं की आर्थिक स्थिति, लेखक : डॉ. अरुण कुमार सिंह, प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, प्रकाशन वर्ष 2018
4. कोडरमा में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, लेखक : डॉ. संगीता कुमारी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2016
5. झारखंड की महिलाएँ : एक सामाजिक और आर्थिक अध्ययन, लेखक : डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, प्रकाशक : भारतीय पुस्तक भंडार, प्रकाशन वर्ष 2013

6. कोडरमा की महिलाएँ : एक आर्थिक अध्ययन, लेखक : डॉ. राजेश कुमार सिंह, प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, प्रकाशन वर्ष 2019
7. झारखंड की महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक स्थिति, लेखक : डॉ. सुषमा कुमारी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2017,
8. कोडरमा में महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति, लेखक : डॉ. प्रियंका कुमारी, प्रकाशक : भारतीय पुस्तक भंडार, प्रकाशन वर्ष 2014
9. झारखंड की महिलाएँ : एक राजनीतिक अध्ययन, लेखक : डॉ. अमित कुमार सिंह, प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, प्रकाशन वर्ष 2020
10. कोडरमा की महिलाएँ : एक सांस्कृतिक अध्ययन, लेखक : डॉ. नीलम कुमारी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2018
11. झारखंड की महिलाओं की आर्थिक सशक्तिकरण, लेखक : डॉ. राहुल कुमार सिंह, प्रकाशक : भारतीय पुस्तक भंडार, प्रकाशन वर्ष 2019
12. कोडरमा में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार, लेखक : डॉ. सोनिया कुमारी, प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, प्रकाशन वर्ष 2020
13. झारखंड की महिलाएँ : एक सामाजिक और आर्थिक सर्वेक्षण, लेखक : डॉ. अरविंद कुमार सिंह, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2016
14. कोडरमा की महिलाएँ : एक स्वास्थ्य अध्ययन, लेखक : डॉ. प्रीति कुमारी, प्रकाशक : भारतीय पुस्तक भंडार, प्रकाशन वर्ष 2015
15. कोडरमा की महिलाएँ : एक आर्थिक और सामाजिक अध्ययन, लेखक : डॉ. शशि भूषण प्रसाद, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2015
16. कोडरमा की महिलाएँ : एक सामाजिक और आर्थिक सर्वेक्षण, लेखक : डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2016
17. झारखंड की महिलाएँ : कोडरमा की एक आर्थिक और सामाजिक विश्लेषण, लेखक : डॉ. संगीता कुमारी, प्रकाशक : भारतीय पुस्तक भंडार, प्रकाशन वर्ष 2014
18. बाबू, पीरू "लघु उद्योगपतियों की समाजशास्त्रीय विशेषताओं पर एक अध्ययन," पैन बुक्स लंदन सिडनी, 2018
19. बनर्जी तनिमा (2012 मार्च 11)। यहाँ बताया गया है कि भारत में महिलाओं की स्थिति कैसे बदली है [1950 से लेकर आज तक,। दमवाड : "महिला उद्यमिता – एक नॉर्डिक परिप्रेक्ष्य," नॉर्डिक इनोवेशन सेंटर, 2017
20. दिव्या, बी.एस., और जगदीश, वी.वी. (2015)। मैसूर जिले में महिला उद्यमिता केस स्टडी के माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण। माइक्रो फाइनेंस और समावेशी विकास। कल्पाज प्रकाशन द्वारा प्रकाशित।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395-7115